

आँख और कविगण

१३४५

श्री सुविष्णु गंगरी भण्डार
लीकानेर

सम्पादक

पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी

प्रकाशक

साहित्य-सेवा-सदन, काशी

प्रथम
स्करण

}

यमुना पथी, सवत् १९८९

{ मूल्य
सजि

प्रकाशक
गोपालदास गुजराती 'सेवक'
मैनेजिंग प्रोप्राइटर
साहित्य-सेवा-सदन, काशी

मुद्रक
विजयबहादुर सिंह वी० ए०
महाशक्ति-प्रेस
धुलानाला, काशी

माह्य म० _____



धो

प्रेमोपहार

श्रीयुत _____

हिन्दी व सस्कृत की

सभी प्रकार की पुस्तके मिलाने का एक मात्र पता

साहित्य-सेवा-सदन

बनारस सिटी

[बडा सूचीपत्र मुक्त मँगाइये]

दीर्घ प्रकाशित होने वाला हमारा नया ग्रन्थ रस

उरोज

सम्पादक—प० जवाहरलाल चतुर्वेदी

उक्त पुस्तक के लिये हम कुंठ न कहेंगे, क्योंकि “चतुर्वेदीजी” द्वारा सम्पादित “श्राँख और कविगण” आपके सामने प्रस्तुत है। अस्तु, उक्त पुस्तक में भी “चतुर्वेदी जी” ने संस्कृत, हिन्दी और उर्दू की प्रायः सभी सरस सूक्तियों का, यहाँ ही खुल-खुली भाषा में उरोज की खूबियाँ खचित करते हुए, सकलन कर दिया है, जिसे देखकर आपका हृदय हर्ष से उछलने लग जायगा, उसके भस्ती उपजाने वाले मनमोहक मद् से आपका मन मद्-मत्त होने लगेगा और पुस्तक बिना खतम किये छोड़ने को जी नहीं चाहेगा। मूल्य सुन्दर रेशमी जिल्द के साथ चार सौ पृष्ठ के पोथे का लगभग—ढाई रुपये। अभी से ग्राहक होने पर उक्त ग्रन्थ पौन मूल्य में मिलेगी।

मिलने का पता—

साहित्य-सेवा-सदन

बनारस सिटी

‘सदन’ की विशेषताएँ

(१) हिन्दीके प्राचीन कवियोंकी रचनाओंका शुद्ध सस्करण निकालनेके साथ ही उन विषयोंके ग्रन्थोंका प्रकारान भी होता है जिनका हिन्दीमें अभाव है ।

(२) ‘सदन’ की सभी पुस्तकें ख्यातिलब्ध विद्वानों द्वारा ही लिखाई और सम्पादित कराई जाती हैं । इस कारण भाषा, भाषणभी-रता, लेखन तथा प्रतिपादनशैली के लिहाजसे वे अनुपमहोते हैं ।

(३) इसमें अस्थायी, अनुपयोगी तथा साररूप्य ग्रन्थोंका प्रकाशन नहीं किया जाता । ग्रन्थों के चुनाव के समय इन बातों पर पूरा ध्यान रखा जाता है कि ‘सदन’ की सभी पुस्तकें हिन्दी-साहित्य की स्थायी सम्पत्ति हों ।

(४) ‘सदन’ की पुस्तकें प्रत्येक शिष्ट-समाज, लाहोरी, स्कूल, कालेज आदि में समग्र करने तथा विद्यार्थियों को उपहार में देने योग्य होती हैं ।

(५) स्थायी ग्राहकों को अन्य पुस्तकमालाओं की तरह सभी प्रकाशित पुस्तकें लेनी पड़ेंगी, ऐसा कोई बंधन नहीं है ।

(६) प्राचीन-कवियोंकी अलभ्य रचनाओंको प्राप्त करने तथा विद्वानों द्वारा उनका सशोधन और सम्पादन आदि करानेमें अत्यधिक व्यय पड़ जाता है, फिर भी सदन की पुस्तकें अन्य प्रकाशकों की पुस्तकों की अपेक्षा बहुत सस्ती होती हैं ।

(७) सदन की पुस्तकों का लोकप्रिय होना ही उसकी सग्रे वड़ी विशेषता है । इसकी पुस्तकों की ५० महावीरप्रसाद द्विवेदी, वियोगी हरि, श्यामसुन्दर दास, रामचन्द्र शुक्ल, मैथिलीशरण गुप्त, सत्यदेव परि-वाजक जैसे विद्वानों ने तथा सरस्वती, प्रभा, लक्ष्मी, माधुरी, सौरभ, शारदा, सम्मेलन, पत्रिका, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, चित्रमय-जगत्, मतवाला आदि पत्र-पत्रिकाओं ने मुक्तकठ से प्रशंसा की है ।

(८) बारह आने देकर स्थायी ग्राहक बननेसे ग्रन्थेक पुस्तककी एक-एक प्रति पीने मूल्य में मिलती है ।

प्रकाशक का वक्तव्य



प्रकाशक का वक्तव्य

कानपुर की कांग्रेस के समय श्रीमान् वियोगी हरिजी की कृपा से 'सदन' को यह पुस्तक प्राप्त हुई थी। किन्तु उस समय यह प्रकाशित न हो सकी। कारण, मनमोहन-पुस्तकालय (काशी) के अध्यक्ष श्रीपन्नारालजी बड़े उत्साह से सस्ती-साहित्य-पुस्तक-माला प्रकाशित कर रहे थे, और कई कारणों से उन्होंने उस कार्य में हमारा सहयोग प्राप्त करना चाहा, इसलिये हमने उनसे सहयोग करके, जनता में राष्ट्रभाषा का अधिकाधिक प्रचार करने के विचार से प्रेरित होकर, "सस्ती-साहित्य-पुस्तक-माला" और "अखिल-भारतवर्षीय हिन्दी-रेलवे-टाइम-टेब्ल" का प्रकाशन आरम्भ कर दिया, क्योंकि ये दोनों काम बड़े महत्त्वपूर्ण समझे गये और अनेक प्रकाशक हतोत्साह हो इनका प्रकाशन स्थगित

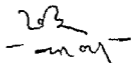
कर चुके थे । इसलिये इन महत्वपूर्ण कार्यों को सम्पन्न करने में व्यस्त रहने के कारण यह पुस्तक पड़ी रह गई । आज, इतने दिनों के बाद, नूतन वर्ष के दिन, सहृदय साहित्य-प्रेमियों की सेवा में, यह नूतन उपहार लेकर उपस्थित होते हुए हमें अपार आनन्द हो रहा है ।

× × × ×

बहने की आवश्यकता नहीं कि यह पुस्तक हिन्दी-साहित्य-भण्डार की शोभा बढ़ाने वाली एक उज्ज्वल मणि है और इसके समहकर्ता तथा सम्पादक श्रीमान् "चतुर्वेदीजी" ने इसका सकलन करके हिन्दी-साहित्य की बड़ी सराहनीय सेवा की है । निस्सन्देह उन्होंने इस पुस्तक द्वारा हिन्दी-साहित्य के एक महान् आवश्यक कार्य की पूर्ति की है । हमें विश्वास है कि श्रीमान् चतुर्वेदीजी के इस मत्कार्य से साहित्यानुरागियों को यथोचित सन्तोष होगा ।

× × × ×

इस गृह्य समह में संस्कृत, हिन्दी और उर्दू के प्राचीन तथा प्रसिद्ध कवियों की नेत्र-सम्बन्धी कविताओं का समह बड़े ही परिश्रम, भावुकता और सहृदयता से किया गया है । कविताओं के चुनाव में रसज्ञ समहकर्ता ने जिस सहृदयता का परिचय दिया है, वह सर्वथा अभिनन्दनीय है । नेत्र-सम्बन्धी उत्तमोत्तम सूक्तियों के सकलन में मननशील समहकर्ता ने जो परिश्रम किया है, साहित्य-सागर का मन्थन करके जो नयन-नवनीत निकालने का सदुद्योग



किया है, उसकी सफलता को सिद्ध करने के लिये यह पुस्तक पर्याप्त है। हिन्दी में एक ऐसे ग्रन्थ का सर्वथा अभाव देखकर और इस पुस्तक की अपूर्वता पर रीक कर ही हमने इसे प्रकाशित करने का साहस किया है। आशा है, हिन्दी-प्रेमी हमारे इस शुभ उद्योग को सफल करके हमें उपकृत करेंगे।

× × × × ×

यदि पुस्तक में भ्रूष की गलतियाँ रह गई हों, तो उदार पाठकों से नम्र निवेदन है कि आगामी संस्करण में उन्हें सुधार देने के उद्देश्य से हमें सूचना देने की कृपा करें, जिसके लिये हम उनके विशेष कृतज्ञ होंगे।

× × × × ×

बड़े हर्ष की बात है कि कई विश्वविद्यालयों तथा साहित्य-सम्मेलन ने हमारे 'सदन' से प्रकाशित कुछ ग्रन्थों को उच्च कक्षा के पाठ्यक्रम में सम्मिलित करके तथा यू० पी० और सी० पी० के शिक्षा-विभाग ने स्कूल-कालेज की लाइब्रेरियों के लिये स्वीकृत करके हमें विशेष प्रोत्साहन प्रदान किया है। अतएव हम इन सस्थाओं के गुणग्राही सचालकों के प्रति अपनी आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट करते हुए आशा करते हैं कि वे हमारे अन्य उत्तम ग्रन्थों को भी अपना कर हमें हिन्दी साहित्य की सेवा करने का सुअवसर देंगे।

अन्त में काव्य-ग्रन्थ-रत्नमाला के उदार प्राहकों से भी हमारे
 वेनय है कि वे भी इस काव्य-रत्न-मजूपा से अपने नयन-भन-
 गण को हम करके हमारे साथ-साथ समहकर्त्ता को भी सफल-
 भ्रम करें ।

गोपाल-मन्दिर
 काशी
 नूतन वर्ष, १९८९ वि० }
 }
 }
 }

साहित्यानुष्ठानियों का कृपाकांक्षी
 'सेवक'

भूमिका

शरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रियों—त्वचा, रसना, नासिका, कर्ण, और नेत्र—हैं। ये पाँचों इन्द्रियों शरीर-देश के राजा 'मन' की दूती हैं। ये अपने कार्यों की रिपोर्ट मन को देती हैं। यह जैसी आज्ञा इन्हें देता है, वैसा ही कार्य ये करती हैं। इनमें से प्रत्येक का कार्य एक दूसरे से भिन्न है। जैसे—दुर्गंध का ज्ञान नासिका को है, जिह्वा पदरसों के स्वाद जानने में, कर्ण शब्द सुनने में, त्वचा स्पर्श करने में और नेत्र देखने में समर्थ है।

नेत्र के अतिरिक्त अन्य इन्द्रियों की सामर्थ्य केवल अपने निश्चित कार्य करने की ही है। किन्तु नेत्र मन के भाव प्रगट करने में पूर्ण समर्थ होते हैं। उन्हें किसी अन्य इन्द्रिय के साहाय्य की आवश्यकता नहीं होती। जैसे—त्वचा अपने-आपमें तो स्पर्श-ज्ञान कर सकती है, लेकिन दूसरे में ऐसा नहीं कर पाती। नाक स्वयं सूँघ सकती है, पर सम्मुख आये हुए पदार्थ की दुर्गंध से बचा नहीं सकती। कान अपनी और दूसरे की भी बात सुनने में समर्थ हैं, पर अपनी श्रवण-सीमा के भीतर ही, उसके परे की शब्द-क्रिया के विषय में वे नितान्त अनभिज्ञ हैं। जिह्वा रस चराने में तेज है, लेकिन सड़े-गले का ज्ञान खाने के पहिले नहीं कर पाती। परन्तु नेत्र देखते, हँसते, रोते, क्रोध प्रगट करते, डाँटते, मारते, वेधते, मोह लेते, सकेत करते, लज्जा करते, मान करते, गभीर बनते और चंचलता व्यक्त करते हैं—इनके अतिरिक्त अन्य इन्द्रियों की सहायता भी करते हैं।

‘नेत्र’ बाह्य इन्द्रियों में से एक है। किन्तु नेत्र का प्रभाव अधिकतर अन्तःकरण में पड़ता है। यहाँ तक कि जब मनुष्य नेत्र मूँद लेता है, तब मन उन पदार्थों पर धूमता है, जिनको नेत्र पूर्व देख चुके हैं। एक प्रकार से हृदय में नेत्रों ही के द्वारा विविध वासनाओं की सृष्टि होती है।

प्रश्न उठ सकता है कि क्या जन्मानुभव अपने मन में किसी विषय पर विचार नहीं कर सकता? यदि विचार कर सकता है, तो क्या नेत्रों की विशेषता मन के साथ नहीं रह जाती?

उत्तर में निरोदन है कि अध्यात्म मनुष्य कर्ण और त्वचा द्वारा अपना निश्चय निर्धारित करता है, और वह पदार्थों के आकार तथा गुण के आधार पर अवलंबित है। उसमें उनके भिन्न-भिन्न रूपों के जानने की सामर्थ्य नहीं है। वह यह नहीं जान सकता कि हरा, पीला एवं लाल रंग किस रूप के हैं। अस्तु, अध्यात्म में रूप सम्बन्धी ज्ञान की न्यूनता है। वह दूरियों के कहने से जान सकेगा कि जल का श्वेत वर्ण है, पर श्वेतता के रूप को नहीं जान सकता। उर्मा के साथ वह भी हृदय-चक्षुओं द्वारा निश्चयानुसार पदार्थों का अनुभव करता है। यदि उर्मा अनुभव न करता, तो उनपर विचार भी न कर पाता, क्योंकि जो पदार्थ देखे और सुने नहीं गये, उनपर विचार भी नहीं किया जा सकता।

वेदात-शास्त्र में पञ्च-तत्वों के सम्पर्क से निम्न लिखित रूप में इन्द्रियों की उत्पत्ति बताई गई है—

सत्वाशौ पञ्चभिस्तेषां क्रमाद्धिन्द्रियपञ्चकम् ।
 श्रोत्रत्वगक्षरसन घ्राणारयमुपजायते ॥
 तैरन्त करण सर्वैर्बुद्धिभेदेन तद्विधा ।
 मनो विमर्शरूप स्याद्बुद्धि स्यान्निश्चयात्मिका ॥

आकाशादि पच सूक्ष्म भूतों के पृथक्-पृथक् सत्वाश से पच ज्ञानेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। जैसे—आकाश के सत्वाश से श्रवणेन्द्रिय, वायु के सत्वाश से त्वगिन्द्रिय, अग्नि के सत्वाश से चक्षुरिन्द्रिय, जल के सत्वाश से रसनेन्द्रिय और पृथ्वी के सत्वाश से घ्राणेन्द्रिय और पच-सूक्ष्म-तत्वों के मिश्रित सत्वाश से अन्त-करण की उत्पत्ति होती है। उसमें 'मन' सकल्प-विकल्पात्मक और 'बुद्धि' निश्चयात्मिका है।

इन पच बाह्य इन्द्रियों में से 'नेत्र' सर्वोपरि है। जो कोई अन्य इन्द्रिय अपने गुणानुसार किया करता है, उसके निश्चय करने में 'नेत्र' प्रधान कारण है। उदाहरणार्थ—कानों ने घरघर शब्द सुना, मन के पास सूचना पहुँची, जिह्वा बोल उठी कि हवाई-जहाज का शब्द है, पर 'मन' ने सकल्प-विकल्प किया कि ऐसा शब्द तो मोटर के चलने में भी होता है। ऐसा संदेह होने पर जब नेत्रों ने स्वयं वायु-यान को देखा, तब ही बुद्धि ने निश्चय किया कि वह शब्द गगनचारी विमान का है। अतः 'नेत्र' ही ज्ञानेन्द्रियों में प्रधान है।

हठ-योग में तो "मन" को, एक प्रकार से, नेत्रों का अनु-गामी माना है—

“यत्र-यत्र गता दृष्टिर्मनस्तत्र प्रगच्छति”

जहाँ जहाँ दृष्टि जाती है, वहाँ-वहाँ मन भी जाता है ।

योगी लोगों के लिये नेत्र बड़े-उपादेय हैं । महाभारत के अनुशासन पर्व में लिखा है—

नेत्राभ्यां नेत्रयोरस्य रश्मि सयोज्य रश्मिभि ।

विशेष विपुल कायामाकाश पवनो यथा ॥

गुरु-पत्नी के सतीत्व-रक्षार्थ 'विपुल' नामक ऋषि ने अपनी नेत्र-रश्मि द्वारा गुरु-पत्नी को नेत्र-रश्मि को सयुक्त किया और जैसे पवन आकाश में प्रवेश करता है उसी प्रकार गुरु-पत्नी के शरीर में उसने प्रवेश किया ।

हठ योग के षट्-कर्मान्तर्गत पञ्चम कर्म का नाम 'त्राटक' है उसमें भी योगी को 'नेत्रो' का ही सहारा लेना पड़ता है—

निमेपोन्मेपको त्यक्त्वा सूक्ष्म हृदय निरीक्षयेत् ।

यावदश्रुणि मुञ्चन्ति त्राटक प्रोच्यते युधे ॥

एव माया सयोगेन शम्भवी जायते ध्रुवम् ।

नेत्ररोग विनश्यन्ति दिव्य दृष्टि प्रजायते ॥

जब तक दोनों नेत्रों से अश्रुपात न हो, तब तक निमेप-उन्मेप-त्याग-पूर्वक किसी सूक्ष्म वस्तु पर दृष्टि स्थिर रखने का नाम 'त्राटक' है । त्राटक-योग के अभ्यास द्वारा शम्भवी-मुद्रा को सहायता मिलती है, उससे 'नेत्र-रोग' नष्ट होते और 'दिव्य-दृष्टि' उत्पन्न होती है ।

यह सब तो बाह्य चक्षुओं का प्रभाव है । अन्तर में हृदय-चक्षुषों के बिना बुद्धि एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकती । योगी

अधिकतर अन्तर्चक्षु से काम लेते हैं। उनके ध्यान का अवलम्ब केवल एक प्रकार की ज्योति होती है, जिसे वे नितात ध्यानस्थ हो देखते हैं। ज्योति देखी जाती है और देखना सम्भव है केवल नेत्रों से। अस्तु, पारमार्थिकता के पथ में भी नेत्र सहायक हैं। वेदात-दर्शन में स्वयं ब्रह्म का वर्णन ज्योति स्वरूप किया है—

“ज्योतिश्चरणाभिधानात्”

इसके अतिरिक्त छान्दोग्य-उपनिषद् में ब्रह्म का वर्णन ‘ज्योतिर्दीप्यते’ के समान किया है। अस्तु, स्थूल रूप से लेकर सूक्ष्मातिमूक्ष्म दशा तक नेत्र की प्रधानता है। यही कारण है कि कवियों ने जितना नेत्र का वर्णन किया है, उतना शरीर के किसी अंग का नहीं।

परिहतराज जगन्नाथ ने अपने ‘भामिनी विलास’ नामक ग्रंथ में लिखा है—

श्याम सित सुदृशो न दृशो स्वरूप ।
किन्तु स्फुट गरलमेतदयामृतञ्च ॥
नोचेत्कथं निपतनादनयोस्तदैव ।
मोह मुदञ्च नितरां दधते युवान ॥

नायिका के नेत्रों का रूप श्याम और श्वेत नहीं, किन्तु यह स्फुट अमृत तथा विष है। यदि ऐसा न होता, तो इनके दृष्टिपात-मात्र से कैसे युवा पुरुष अत्यन्त मोह अथवा आनन्द को प्राप्त होते ?

श्यामता से विष और श्वेतता से अमृत का तात्पर्य है। जिस पुरुष की ओर स्नेह-स्निग्ध दृष्टि से नायिका ने देखा, उसे आनन्द

प्राप्त होता है और जिसकी ओर क्रुद्ध होकर देखा, वह निराश होकर दुःखी हो जाता है ।

देखिये, पदार्थ एक और गुण दो—वे भी एक दूसरे के विरुद्ध । कैसी विचित्रता है । आँसे जिसे जिलाना चाहती हैं, जिलाती हैं और जिसे मारना चाहती हैं, मारती हैं । किसी पदार्थ में, एक दूसरे के विरुद्ध—एक साथ और एक ही काल में, दोनो गुण नहीं मिलते । पर यह नेत्रों ही की सामर्थ्य है कि वे उल्लिखित विरुद्ध क्रियाओं के करने में समर्थ हैं ।

यदि हृदय के भावों को कोई इन्द्रिय समुचित रूप से प्रगट करने में समर्थ है, तो केवल नेत्र ही ।

एक चिडचिडे स्वभाव के सज्जन थे । जो कुछ मुँह में आता, बक डालते थे । भाग्य से उन्हें उत्तम स्त्री मिली थी । पर उसे भी वाग्प्रहार से झकझोर डालते थे । एक दिन, जब वह शांत चित्त थे, एक मित्र से अपनी स्त्री की प्रशंसा करने लगे—

न द्रूते परुषा गिर वितनुते न भ्रूयुग भद्गुर ।

नोतस क्षिपति क्षितौ श्रवणत सा मे स्फुटेऽप्यागसि ॥

कान्ता गर्भगृहे गवाक्षधिवरव्यापारिताद्या घहि ।

सखया घक्त्रमभिप्रयच्छति घर पर्यथ्रुणी लोचने ॥

मेरा अपराध प्रगट होने पर मेरी स्त्री परुष वचन नहीं कहती, न भ्रुकुटी टेढ़ी करती है, और न कानों के भ्रूपणों को उतार कर पृथ्वी पर फेंकती है । केवल भीतर के घर में झरोखे से बाहर की ओर भाँकती हुई सखी के मुँह की ओर वह आँसू-भरी दृष्टि डालती है ।

इसमें उसके दुःखित हृदय के भावों को आँसू भरी दृष्टि द्वारा ही दिखलाया है। अतः यह स्वयंसिद्ध है कि नेत्रों द्वारा हृद्गत भाव सहज ही जाने जा सकते हैं।

काम-कला-कुशल कामिनी-कुल का काम नयन-कमल में बहुत निकलता है। किसी नायिका का पति विदेश से लौट कर घर आ रहा था। उसकी सखी ने उसके पास उस समय समाचार पहुँचाया, जब उसका प्रियतम उसके द्वार में थोड़ी ही दूर पर था। अब वह निचारी क्या करे ? इतना समय नहीं कि पति के स्वागतार्थ मङ्गल-सूचक वन्दनवारादि की सामग्री प्रस्तुत कर सके। पर उसी समय उसका वाम नेत्र फड़फड़ा, मानों उसने संकेत किया कि हमी से मन्त्र कार्यों की पूर्ति हो जायगी। चतुर नायिका ने प्रसन्नतापूर्वक पतिदेव का स्वागत जिन सरस घटों और उत्तम वन्दनवारों से किया था, उसका वर्णन एक कवि ने यों किया है—

अत्युन्नतस्तनयुगा तरलायताक्षी ।
 द्वारिस्थिता तदुपयानमहोत्सवाय ॥
 सा पूर्णकुम्भनवनीरजतोरणाम्बु—
 सम्भार मङ्गलमयत्नकृत विधत्ते ॥

पीन स्तनों से सुशोभित, सुदीर्घ एवं चञ्चल नेत्रों वाली, वह कामिनी, अपने प्रियतम के उपयान-महोत्सव (परन्तु से आने की सुशी) में, द्वार पर खड़ी होकर, माङ्गलिक पूर्ण कलश और नवीन कमलों के वन्दनवार का कार्य, बिना थक के ही सम्पन्न कर रही है।

कैसे ? अपने उन्नत स्तनों को कलश और सुदीर्घ कमल-नेत्रों की दृष्टि-परम्परा को वन्दनवार बना कर प्रियतम का स्वागत किया।

नेत्र का दृष्टि-दान हृदय में एक दूमरे के लिये प्रेम उत्पन्न करता है। यह आँखों ही का काम है कि कठोर चित्त को, मधुर चितवन ही से, मृदुल बना देती है। साथ ही, इनकी दृष्टि में इतनी ज्वाला है कि बड़े-बड़े जितेन्द्रिय और मनस्वी तथा त्याग पुरुष भी व्याकुल हो जाते हैं।

क्यों न हो। नव रसों के रूप को प्रगट करने की सामर्थ्य जो इनमें है। ये नेत्र शृंगार-रस का प्रदर्शन मधुर तिरछी चितवन से करते हैं, हास्य-रस का परिपाक गोलक के निचले भाग को कुछ ऊपर उठा कर किनारे की ओर आकर्षित करके करते हैं, करुण रस का प्रकाश अश्रु से करते हैं, वीर-रस का प्रादुर्भाव पलक न मार कर तीव्रतापूर्वक दृष्टिपात द्वारा करते हैं, अद्भुत रस का सृष्टि काली पुतलियों को ऊपर चढ़ाकर देखने से करते हैं, भय का रूप काली पुतलियों को गोलक के बीच में स्थिर रखने और पलक न मारने से प्रगट करते हैं, वीभत्त-रस एक कोने को कुछ सिकोड़ कर दूसरी ओर देखते हुए व्यक्त करते हैं, रौद्र-रस का विकाम अरुण होकर पूर्ण शक्ति से सीधे देखते हुए करते हैं।

क्या ऐसी शक्ति किसी अन्य इन्द्रिय में भी है कि विभाव, अनुभाव और संचारी भावों का संयोजन कर रस उत्पन्न करे ? फिर कथियों ने यदि नेत्रों का निराद एव विस्तीर्ण वर्णन किया, तो आश्चर्य ही क्या ?

घड़े में घड़े के परिमाणानुसार ही जल समा सकता है। उसमें और अधिक नहीं थँट सकता। पर टकी में सैकड़ों घड़े जल

भर जाता है। जिसकी जितनी सामर्थ्य है, उसमें उतनी ही वस्तु समा सकती है। किन्तु, नेत्रों के पास प्रशसा रखने का इतना बड़ा पात्र है कि प्राचीन काल से लेकर आज तक के कवियों ने इनके इतने गुण गाये हैं कि कोई ऐसा ग्रन्थ नहीं, जिसमें इनका जिक्र किसी-न-किसी रूप में न हो। फिर भी वह प्रशसा-पात्र भरा नहीं। और, कवियों ने भी प्रशसा करना छोड़ा नहीं।

आँखों की प्रशसा में क्या-क्या कहा गया है, वही इस पुस्तक में दिखाया गया है। पंडित जवाहरलालजी चतुर्वेदी ने हिन्दी, संस्कृत, उर्दू तथा फारसी के प्रसिद्ध कवियों की नेत्र-सम्बन्धी उक्तियों को एकत्र कर—तथा अनेक अज्ञात कवियों की सूक्तियों का भी सकलन कर—उन्हे क्रमानुसार भिन्न-भिन्न शीर्षकों में सजाया है। जैसे—दीर्घ नयन, कटाक्ष, कटाक्ष-शर, मदभरी आँखें, कुटिल कटाक्ष-शर—तलवार, वेगा, छुरी, कटारी, बन्दूक—सेत, स्याम, रतनार—तिल, कोये, पलक, बरुनी इत्यादि। और, उसीके साथ, कुरग, तुरग, मतग, मीन, कमल, खजन, चकोर, काग और मधुमक्खी की उपमाएँ भी पृथक्-पृथक् शीर्षक-कुञ्जों में रखी गई हैं।

इतना ही नहीं, कहीं आँखों को नवाब, कहीं बादशाह, कहीं सिपाही और कहीं बजाज भी बनाया है। पर किसी किसी कवि ने—न मालूम क्यों—दिवालिया, दरजी, फिरगी और मजदूर तक बना डाला है। किसी ने उन्हें नाट्यशाला और किसी ने कामदेव की नौका तक कह डाला है। मालूम होता है, अधम पात्र बनाने

वाले कवियों को नेत्र द्वारा कष्ट मिला है अथवा उनके कारण ऐसे कार्यों का उन्हें व्यावहारिक अनुभव करना पडा है ।

रत्न-लोभी कवियों को नेत्रों में चौदहों रत्न ही देख पड़े ।
उन्होंने नेत्रों को रत्न ही कह डाला है ।

कवियों ने नेत्रों की प्रत्येक दशा का भी वर्णन किया है । जैसे अलसौंहीं आँरें, अधखुली आँरें, लडैते लोचन, लगौहें लोचन । क्या-क्या कहा जाय ? जिसे जो रुचा, उसने वही कहा । विचारी आँरें कहीं योगिनी बनाई गई और कहीं इनमें दशावतार दिखाये गये । कहीं अश्रुवर्षा और कहीं आनन्दाम्बु-वर्षा । भला कवियों की लगाम पर कौन काबू करे ?

कथय किञ्चजल्पन्ति !

—कवि लोग क्या नहीं कहते, पर कवियों का कहना है कि जो कुछ हम कहते हैं, सप्रमाण कहते हैं, मजाल क्या कि पढ़ने-वाला उसे स्वीकार न कर ले ।

चतुर्वेदीजी ने सर्वप्रथम 'आलम' कवि से जो कहलाया है, उसे हम, इसी पुस्तक से, नीचे उद्धृत करते हैं—

आँखिन में प्रीति रस गीति सप्र आँखिन में
आँखिन में अन्धर लिखे हें सुघराई के ॥
आँखिन में काम और दिठारसय आँखिन में,
आँखिन में सोल वसै सुरिसरनार के ।
'आलम' सुकवि कहैं अमृत है आँखिन में
आँखिन में जग-जोति दोर हें सुहार के ।

काम के ततच्छिन सव लच्छिन हँ अँखिन मैं ।

अँखिन मैं भेद हँ भलाई औ बुराई के ॥

अवस्था के अनुसार आँखें, अपने मे दृष्टि-भाव को बदलती रहती हैं । बाल्यावस्था में सरलता के साथ रहती हैं । युवावस्था के आते ही तिरछी हो जाती हैं । इसी समय ये कानों की ओर बढ़ जाती हैं, मानों उनसे कुछ कहना चाहती हैं । फिर वृद्धावस्था में पृथ्वी की ओर देखने लगती हैं । इसी आशय को लेकर रघुनाथ कवि ने कहा है—

“जोवन आइये की महिमा

अँखियाँ मनी वानन सों कहती हैं ॥”

आँखों के गुणों का वर्णन या तो अनेक कवियों ने किया है, लेकिन ‘रहीम’ ने केवल एक दोहे में जो कुछ कहा, उससे उनके (नेत्रों के) औदार्य-गुण को इतना बढ़ा दिया कि वह दोहा लोगों की जवान पर हो गया—

✓ “सबही का सुख होत है, निरखि आपनों गोत ।

ज्यों बडरी अँखियानि लखि, अँखिन कौं सुख होत ॥

पर ‘रसनिधि’ जी ‘रहीम’ से सहमत न हुए । उन्होंने ठीक ‘रहीम’ के प्रतिकूल दोहा बनाया—

बहुधा वैरी गोत के, सही गोतियन जानि ।

बडे नैन खटकन लगे, नैन हियन में आनि ॥

हमें तो ‘रसनिधि’ की सीनाजोरी ही मालूम होती है । यदि अपने स्नेही को कोई बारम्बार देखे, तो क्या उसे ‘खटवना’

कहेंगे ? यदि सटकता, तो यह देख कैसे सकता ? एक महा सूक्ष्म कण का न्यूनांश भी आँसों में पड़ जाता है, तो वे किंचित नहीं देख पातीं, फिर सटकने पर दीर्घ नेत्रों को कैसे धारम्बार देख सकती हैं ?

‘कटाक्ष’ — ग्रीकी चितवन का नाम धवियों ने ‘कटाक्ष’ रक्खा है और उसका यों गुण-वर्णन किया है—उसकी इतनी घड़ी तेज धार है कि उसके उद्गम स्थान ‘नेत्र’ में अँगुली लग जाने से अँगुली के कट जाने का भय रहता है । इतना ही नहीं, यदि इसे कोई देख भी ले, तो उसे चोट पहुँच जाय । यह इसमें विशेषता है ।

यशोदाजी श्रीराधिकाजी से कहती हैं—ऐ राधे ! जब तक मेरा लाल एक हाथ पर पर्वत को थामे खड़ा है, तब तक तुम जरा अपनी आँसों तो मूँद रक्जो, ऐसा न हो कि उनको देख कर मेरे गोविंद का मन विचल जाय और उसके कारण कहीं हाथ हिल उठे, तो पहाड़ के नीचे हम सब दन कर मर जायें ।

इसी भाव को लेकर किसी कवि ने यशोदाजी से कहलाया है—

चञ्चल चपल ललचाहे-दग मूँदि राखि ।

जौ ला गिरिधारी गिरि नख पै धरै है री ॥

अभी तक तो कविगण आँस और उमड़े उत्पन्न चितवन की तेज धार का यों वर्णन करते आये कि उसके छू जाने ही से अँगुली अथवा हृदय को चोट पहुँच जाती है । लेकिन अब उसी कटाक्ष को शर माने लेते हैं । अत आँसों भू धनुष से कटाक्ष-शर चलाती हैं । उनकी प्रशंसा में एक प्रगल्भ नायिका कहती है—

भीखम करन कृपा अभिमन्यु
दुजोधन सौम श्री भूरिस्त्रया के ।
अर्जुन भीम जुधिष्ठिर धृष्ट
विराट वली सहदेव प्रभाके ॥
सो सर बिरथ किए इन नैननि
कहा कहिण निगदर्द न दया के ।
मेरे कटाच्छ बचै न 'मुनीस' हू
कैसें कहीं सर की समता के ॥

शम्भु कवि इससे भी आगे बढ़ गये । उन्होंने इनकी बड़ाई
में बहुत कुछ कह डाला—

काल कौ फेरौ बचै घड़ी ड्रैकु
पै बचै नहि नैन चितोनि के मारे ।

जितने सहारकारी अख-शख हैं, उन सब की उपमा नेत्रों
के कटाक्ष से करियों ने दी है । 'गोकुल' कवि ने आँखों के साथ
तलवार का कैसा रूपक बाँधा है—

भ्रकुटी कुटिल राजे मूठ सी विराजै बर
पलक मियान पुज पानिप रसाल है ।
कज्जल कलित दोऊ कोर मैं दुधार धार
डोरे रतनारे जेव जौहर के जाल हे ॥
'गोकुल' बिलोकि निज नाह के सनेह सर्नी,
स्वच्छ है कटाच्छ काट करत कराल है ।
कमनीय-कामिनी के रमनीय नैन किधौं
कामिन के मारिये कौ काम करवाल है ॥

किसी ने तेग, किसी ने छुरी-कटारी और किसी ने बन्दूक
कह कर चितवन को अभिघातिनी साबित किया है । जैसे—

तेगा तिय दृग धिप भरे, पानिप दार सुफाट ।
अजन-याद सु दिप धिनु, करति चौगुनी फाट ॥



“यह आँख बपुरी है कै छुरी है हाथरस की ।”



“प्यारी अँखियाँ तिहारी किर्याँ काम की कटारी हैं ।”



प्रथमहिं दारु खाइकें, पीछें गोली खाँइ ।
चित्तघनि चारु घन्दुक प, चोटहि चूरुति नाँइ ।

यहाँ तक आँख की चितवन का वर्णन किया गया, अब उनके रूप का वर्णन भिन्न भिन्न कवियों के मुख से भिन्न भिन्न भावों के साथ सुनिये । साथ ही, इस बात का भी ध्यान रखने की कृपा कीजिये कि हम ऊपर जितने उदाहरण दे आये हैं, और आगे भी हमने जितने उदाहरण दिये हैं, सब इन्हीं पुस्तक में से सकलित किये हैं । इस लिये हम चाहते हैं कि हमारे साथ-साथ आप भी चतुर्वेदीजी की रसज्ञता और भावकुता पर दाद दें ।

खैर, देखिये, आँखों में मुख्यत तीन रंग माने गये हैं—श्वेत, श्याम और रतनार (लाल) । ‘रसिक’ कवि ने नेत्रों को त्रिवेणी ठहराया है । संभव है, यह उपमा यथार्थ हो । प्रयाग की त्रिवेणी का माहात्म्य है कि जो मनुष्य उसमें मज्जन करता है, वह जन्म-मृत्यु से मुक्त हो जाता है, और इस त्रिवेणी का एक जल-क्षण पड़ जाने से मनुष्य की बुद्धि संसार के सब कार्यों से मुक्त हो जाती है । अतएव उपमा यथार्थ है—

“प्यारी मेरी प्यारी मैं तीरथ न जानीं कटू
प्यारी तेरे दृगन बीच प्रगट त्रिबेनी हैं”

श्वेत भाग को गंगा, काली पुतली को यमुना और ललाई को सरस्वती माना है। ऐसी त्रिवेणों में रसिक जन नित्य मज्जन करते हैं। अब प्रत्येक के गुण पृथक्-पृथक् वर्णन किये जाते हैं।

किसी कवि ने लाल आँसु के लाल डोरों की चमकीली ललाई देखकर शका की कि श्वेत के बीच लाल धारी कैसी, इमे तो श्वेत ही होना चाहिये, बिना रंगे ऐसा रग आ नहीं सकता। अस्तु, एक गोपी से कहला ही डाला कि—हे घनश्याम, तुम्हारी आँसुओं में ऐसी ललाई मालूम होती है कि वे गुलाबी रग से रंगी गई हैं और वास्तव में ऐसी रंगई प्रशंसा करने योग्य है। अस्तु मैं पूछती हूँ—

नूतन पै इतनी गहिरा रंग
घनि है रंगरेजिन की चतुराई।
साँची कही इन नैननि रंग की
दीनी कहा तुम लाल रंगई ॥

जो कुछ हो, पर इस कवित्त को जब ‘शेरर’ नाम की रंगरेजिन ने पढा, तब उक्त कवि के पास अपना बनाया निम्न-लिखित कवित्त भेजा—

रात के उर्नादि अलसाते मदमाते राते
राजँ फज्जारे दृग तेरे यौ सुहात हैं।
तीखी तीखी फोरन अंधोरि लेति काढें जिय
बेते भय घाइल औ बेते तलफात हैं ॥

ज्यों ज्यों लै सलिल चख "सेख" धीवै धार-धार
 त्यों त्यों घल घुदन सी धार भुकि जात हैं ॥
 कैयर के भाले किधौं नाहर नहन घाले
 छोद के पियासे कहँ पानी सीं अघात है ॥

वह रग नहीं है और न किसी रंगरेजिन ने उन्हें रंगा है। ये तो सिंह के नाखून अथवा भाले हैं। ये जिस किसी के शरीर में घुस गये हैं, उसे घायल करने का स्यूत मिलता है इनमें लगे हुए रक्त से, अर्थात् वह ललाई नहीं है, वरन् घायल के शरीर का रक्त है, जिसे चितवन-रूपी भाले से घायल कर डाला है। और इसी भाले से 'शेख' ने उन कविजी को भी घायल कर डाला था।

इसी प्रकार नेत्रों के श्याम भाग के वर्णन में शालग्राम-मूर्ति की उपमा सबसे ठीक जँचती है। पर कनिगण एक उपमा से, वह चाहे जैसी उत्तम हो, सतुष्ट नहीं होते। उपमाओं की लड़ी लाकर रखते हैं। देखिये, श्रीनिधिजी कहते हैं—

यों कानन के तीर, नैन कोर कज्जल कलित ।
 कढ़ी कलक लकीर, श्रीनिधि मानों चन्द बिच ॥

श्यामता को कलक मान लिया। जिससे किसी को दुःख मिले, वह अवश्य कलकित कहा जा सकता है। और, इसी भाव को किसी अन्य कवि ने भी पुष्ट किया है—

रवि कीं तजि चद सीं नेह कियौ
 अरविन्दहि मानों कलक लग्यौ ।

‘रसनिधि’ जी ने कहा कि यह कुछ नहीं। इन नेत्रों ने ठगाई बहुत की। इस निंदनीय कार्य से इनको स्वय घृणा हुई, और उसका प्रायश्चित्त करने के लिये स्वय विष पी लिया है। विष का रंग काला है, और नेत्रों के एक भाग में जो श्यामता है, वह विष का द्योतक है—

रूप ठगोरी डारि कैं मौहन गौ वितचोर।

अजन मिस जनु नैन ए पियत हलाहल घोर ॥

आँस की सफेदी के लिये क्या उपमा दी जाय ? उसपर ‘ब्रह्म’ कवि को यह उपमा सूझी—

कानन साँ तौ फटाच्छु लगे

कलघौत फटोरन दूध अचैयतु।

यहाँ पर गोरे मुख को सोने का कटोरा और नेत्र की श्वेतता को दूध माना है।

पुतली की उपमा में ‘रहीम’ कवि सत्रसे आगे बढ़ गये और त्रिवस्तु-युक्त नेत्र के सम्पूर्ण भाग का वर्णन कर डाला—

रहिमन पुतरी स्याम, मनहुँ जलज मधुकर लसै
कैधौँ सालिगराम, रूपे के अरघा धरे

‘जलज’ शब्द के प्रयोग से अरुणता लाई गई। बाँदी के अरघे से श्वेतता और शालग्राम तथा भ्रमर के वर्णन से श्यामता दिखाई गई। हमें तो ‘रहीम’ जी का यह सोरठा बहुत पसंद आया।

‘रसलान’ जी का भी एक दोहा बहुत उत्तम है। उसमें

उन्होंने दिखाया है कि शरीर-रूपी स्वर्ण की जाँच के लिये कसौटी रूपी काली पूतरी स्फटिक मणि में रक्खी है। इससे उत्तम क्या कोई ऋहेगा ? अब, आज-कल के लोग—अपने को कवि कहलाने वाले—“आँखों के प्रति” “कानों के प्रति” लिखकर न मालूम कितनी लम्बी कहानी गा जाते हैं, जिसमें कठिनतापूर्वक वर्णित विषय में सम्बन्ध रहता है। फिर उसमें प्रतिपादकत्व गुण कहाँ से आयेगा ? पर ‘रसलीन’ जी ने अपनी प्रतिभा का परिचय केवल एक दोहे से दे दिया—

तन सुररन के कसति यों, लसति पूतरी स्याम । ✓
मनों नगीना फटिक में, जरी कसौटी काम ॥

किसी-किसी की आँख में तिल होता है, उसे कोई भला कहे, पर एक कवि महाशय ने तो उसे पातक का निशान मान रक्खा है—

नाँहरु चतुर-मन दीन छीन लेत नैन
तिलन-सरूप लम्बी पातक निस्तान हँ ॥

सग का दोष अथवा गुण सगी को अवश्य प्राप्त होता है। आँखों के साथ पलकों अभिन्न रूप में रहती हैं। आँखों की बुराई अथवा भलाई का जब वर्णन होगा, तो एक छीटा इनकी ओर भी फेंका जायगा। ‘दत्त’ कवि कहते हैं—

विष घरे भारे नाग करे नैन कामिनी के
फाटि छिपि जात हाइ पलक पिटारे में ॥

पलकों के किनारे किनारे जो बाल होते हैं, उन्हें बरुनी कहते

(३३)

हैं। कवियों ने उनको भी नहीं छोड़ा। और, कवि 'कालिदास' ने आँसु के सारे दोष या गुण को बरुनी ही की करामात माना है—

चखन में एकाहि गुन भेदति भुराई भरे,
बरुनी में बारुनी में नाहि कहु भेद है ॥

'सुरत' कवि का वर्णन इससे भी बड़ा-चड़ा है—

जेई जे निहारें मन तिनके पकरिबे कौं।
देखौ इन नैननि हजार हाथ काढ़े ह ॥

यहाँ बरुनी के खड़े बालों की उपमा हाथ बढ़ाने में दी गई है। यह ऐसी चुभती हुई है कि पढ़ कर मन उछल पड़ता है।

कविता में यथार्थ उपमा का मिल जाना कवि की प्रतिभा का परिचायक है। 'चिरजीवी' कवि ने बरुनी के बालों को सुई बनाया है। सुई का काम कपड़े के दो टुकड़ों को सीकर एक में मिलाना है और यहाँ दो दिलों को बरुनी-रूपी सुइयों ने मिला दिया है। खूब। —

दिल दोइ के पकु करै कौं मनीं।
इहि सुइयाँ हैं मन भौं दरजी की ॥

उपमा— अर्थालंकारों में "उपमा" सर्वोत्तम अलंकार माना गया है, और इसकी सहायता से अनेक अन्य अलंकार की सृष्टि होती है। जिसका वर्णन किया जाय, वह उपमेय कहा जाता है और जिस पदार्थ के साथ वर्णित वस्तु की उपमा दी जाय, वह उपमान कहलाता है। यहाँ मनुष्य की आँसुओं का

वर्णन किया जाता है, और उपमा दी जाती है मृग के नेत्रों से । प्रथम तो उपमेय और पिछला उपमान है । जैसे—

मेरे नैन कुरग भए ।

जोयन-ग्रन तँ निकसि चले ए मुरली नाँद एए ॥
रूप व्याध, कुडल दुति ज्वाला, किंकिनि घटा घोष ।
व्याकुल है इक टक ही देखति, गुरुजन तजि सतोष ॥
भौंह कमान, नैन सर साधन मारन चितवन चारु ॥
ठौर रहे नहिँ टरे 'सूर' वे मद हँसनि सर धारु ॥



खेलनि सिखए अलि भले, चतुर अहेरी मार ।
काननचारी नैन-मृग नागर नरन सिकार ॥

प्रश्न किया जा सकता है कि मनुष्य की आँसु की उपमा मृग के नेत्रों से क्यों दी । उत्तर है कि जिसमें गुण, रूप एवं शील समान हो, उसी वस्तु के साथ उपमा दी जाती है । मृग के नेत्र सुंदर, कानों की ओर फैले हुए, श्वेत-श्याम-रतनार रंगों से युक्त और भोली चितवन तथा प्राकृतिक मद चंचलता से युक्त होते हैं । इधर मनुष्य के सुन्दर नेत्रों में भी यही सब गुण विद्यमान हैं । अस्तु, सुन्दर नेत्र वाली स्त्री को "हरिणाक्षी" के नाम से पुकारते हैं ।

जहाँ तक देखा जाता है, कवियों ने किसी पदार्थ में किंचित भी गुण मनुष्य के सुंदर नेत्रों का देखा, अट उसे उपमान ठहरा अपनी प्रतिभा द्वारा उसके साथ पूर्णोपमा लाने का प्रयत्न किया ।

एक कवि ने सुदरी के सुदर नेत्रों को कामदेव के घोड़े माने हैं । मानों कामदेव को जिसपर चढाई करनी होती है, इन्हीं पर सवार हो उसको जीतने जाते हैं—

अबलक अग-अग सुदरना-जीन तापै
साज खर पाखर सुआप हाथ साजी हैं ।
लाज है लगाम, चितवन ही चारु चाल मानो
भ्रुकुटी-कुटिल तापै कलगी छाजी हैं ॥
पूतरी सवार सुभ लिपें चाह चातुक कौं
देखि कौं कटाच्छ-खुरी भय लाल राजी हैं ।
नाचें मुख-कचन की यारी मैं सुभारी अति
सुप्यारी के दोऊ दग मैं न-भूप वाजी हैं ॥



मैं न आतुरी से उड्यौ चाहै चातुरी से वीर ?
करत खुदी सै प तुरी से नैन तेरे हे ।



लाज लगाम न मान हौं नैन मो बस नाहिँ
ये मुँह जोर तुरग लाँ पँचत हू चलि जाहिँ ॥

इस प्रकार से अनेक कवियों ने तुरग की चपलता के साथ नेत्रों की चंचलता की समानता दिखाई है । घोड़े के साथ हाथी को भी रहना चाहिये, लेकिन इसमें घोड़े की-सी चपलता तो होती नहीं । फिर इसमें कौन ऐसा गुण है कि जिसके आधार पर वह आँखों का उपमान बनाया जाय ? “जहाँ न जाय रवि, तहाँ जाय कवि” की कहावत ठीक चरितार्थ होती है ।

उन्होंने विचार किया कि चचलता तो नेत्रों में अवश्य है, पर इसके होत हुए भी लज्जा से इतने दब जाते हैं कि फिर उठायें नहीं उठते और नेत्रों के मारे हजारों गली-गली मारे-मारे फिरते हैं। फिर कौन ऐसा पदार्थ है कि जिसमें नेत्रों के इन गुणों की अनुरूपता मिले। ढूँढते-ढूँढते पाया हाथी को, फिर क्या था। कवियों ने नेत्र को हाथी बना लज्जा का आँदू (बेड़ी) डाल दिया। देखिये 'आलम' कवि कैसा हृदयस्पर्शी वर्णन करते हैं—

भूमें भुकेँ उभकेँ फिर भूमि महा-भद-भाँते खरेई रहे ।
 टारे टरें न मदाघ भए फिर ठौर ही ठौर अरेई रहें ॥
 कुजर से दग तेरे भट्ट ? गुन के गुनमाल गरेई रहें ।
 खून करै सत्र 'आलम' कौ फिर लाज के आँदू परेई रहें ॥

“देव” जी ने नेत्रों को सजा हुआ हाथी कहा है—

लाज के निगाड-गडदार अडदार चहूँ
 चौंकि चितघन चरखान चमकारे हैं ।
 यरुनी अरुन लीक पटक भटक-भूल
 भूमत सघन-यन धूमत घूमारे हैं ॥
 रजित-रजोगुन सिँगार पुज कुजरत
 अजन सीं सोहति मन-भोहक दँतारे हैं ।
 “देव” दुख-भोचनसँकोचन सकति चलि
 लोचन अचल प मतग मतघारे हैं ॥

भृग, तुरग और मीन की उपमाएँ नेत्रों की चचलता के लिये दी गई हैं। अथ प्रश्न होता है कि जय नेत्र एक ही पदार्थ था

तो उसकी उपमा को एक ही पदार्थ पर्याप्त था, फिर एक ही वस्तु के लिये तीन भिन्न पदार्थों की क्या आवश्यकता थी ? उत्तर में निवेदन है कि जिन नेत्रों में भोलेपन की मूलक देख पड़ती है, उनकी उपमा मृग के नेत्रों से दी गई, क्योंकि इनमें चंचलता की मद्धता रहती है और जिन नेत्रों में मन की चंचल गति के साथ चंचलता का प्रादुर्भाव अधिक होता है, उनकी उपमा तुरग के साथ मौजू है और चंचल चपलागताओं के कुटिल कटावों की समता मछली ही करती है, क्योंकि वह प्रत्येक पल में इधर-से उधर चमकती फिरती है, इससे कुछ कम खजन की गति है। प्रत्येक उपमान में विशेष गुण नेत्र उपमेय के लिये हैं। जैसे कमल में नेत्रों के समान चंचलता नहीं है, किंतु वह भी उनका उपमान माना गया है, क्योंकि उसमें प्रफुल्लता तथा कोमलता है, और ये दोनों गुण नेत्रों में भी हैं। अस्तु यह कहना यथार्थ है—

साँचे कमल से नैना निसि दिन फ़ल ।
बिना ताल के लौने, झुतहि दुकूल ॥

एक हो, दो हो, तो उनका वर्णन किया जाय। अनेक प्रकार की उपमाएँ नेत्रों के लिये कवियों ने निर्मित की हैं। जैसे— चकोर, काग, मधुमक्खी इत्यादि। हर्ष का विषय है कि रागभग सत्रही प्रचलित उपमाएँ इस पुस्तक में सम्प्रहीत की गई हैं।

सैर, उपमा में तो समानता दिखाई जाती है, पर किसी किसी कवि ने तो नेत्रों को नवाव और बादशाह तक बना डाला है—

उन्होंने विचार किया कि चचलता तो नेत्रों में अवश्य है, पर इसके होते हुए भी लज्जा से इतने दब जाते हैं कि फिर उठायें नहीं उठते और नेत्रों के मारे हजारों गली-गली मारे-मारे फिरते हैं। फिर कौन ऐसा पदार्थ है कि जिसमें नेत्रों के इन गुणों की अनुरूपता मिले। ढूँढते-ढूँढते पाया हाथी को, फिर क्या था। कनियों ने नेत्रों को हाथी बना लज्जा का आँसू (बेड़ी) डाल दिया। देखिये 'आलम' कवि कैसा हृदयस्पर्शी वर्णन करते हैं—

भूमें भुक्कें उभकें फिर भूमि महा-भद-भाँते खरेई रहें ।
 टारे टरें न मदाँध भए फिर ठौर ही ठौर अरेई रहें ॥
 कुजर से दग तेरे भट्ट ? गुन के गुनमाल गरेई रहें ।
 खून करै सत्र 'आलम' कौ फिर लाज के आँसू परेई रहें ॥

“देव” जी ने नेत्रों को सजा हुआ हाथी कहा है—

लाज के निगाड-गडदार अडदार चहूँ
 चोंकि चितघन चरखान चमकारे है ।
 बरुनी अरुन लीक पलक मलक-भूल
 भूमत सघन-यन घूमत घूमारे हैं ॥
 रजित-रजोगुन सिँगार पुज कुजरत
 अजन सौँ सोहति मन-मोहक दँतारे है ।
 “देव” दुख-मोचन सँकोचन सकति चलि
 लोचन अचल ए मतग मतघारे हैं ॥

मृग, तुरग और मीन की उपमाएँ नेत्रों की चचलता के लिये दी गई हैं। अथ प्रश्न होता है कि जब नेत्र एक ही पदार्थ था

तो उसकी उपमा को एक ही पदार्थ पर्याप्त था, फिर एक ही वस्तु के लिये तीन भिन्न पदार्थों की क्या आवश्यकता थी ? उत्तर में निवेदन है कि जिन नेत्रों में भोलेपन की झलक देख पड़ती है, उनकी उपमा मृग के नेत्रों से दी गई, क्योंकि इनमें चंचलता की मदत रहती है और जिन नेत्रों में मन की चंचल गति के साथ चंचलता का प्रादुर्भाव अधिक होता है, उनकी उपमा तुरग के साथ मौजू है और चंचल चपलागताओं के कुटिल कटावों की समता मछली ही करती है, क्योंकि वह प्रत्येक पल में इधर-से उधर चमकती फिरती है, इससे कुछ कम राजन की गति है। प्रत्येक उपमान में विशेष गुण नेत्र उपमेय के लिये हैं। जैसे कमल में नेत्रों के समान चंचलता नहीं है, किंतु वह भी उनका उपमान माना गया है, क्योंकि उसमें प्रफुल्लता तथा कोमलता है, और ये दोनों गुण नेत्रों में भी हैं। अस्तु यह कहना यथार्थ है—

साँचे कमल से नैना निसि दिन फूल ।
बिना ताल के लौने, स्रुतहि दुकूल ॥

एक हो, दो हो, तो उनका वर्णन किया जाय। अनेक प्रकार की उपमाएँ नेत्रों के लिये कवियों ने निर्मित की हैं। जैसे— चफोर, काग, मधुमन्त्री इत्यादि। हर्ष का विषय है कि रागभग सब ही प्रचलित उपमाएँ इस पुस्तक में सप्रहीत की गई हैं।

रैर, उपमा में तो समानता दिखाई जाती है, पर किसी-किसी कवि ने तो नेत्रों को नगाव और चादशाह तक घना डाला है—

उन्होंने विचार किया कि चचलता तो नेत्रों में श्रवण है, पर इसके होते हुए भी लज्जा से इतने दब जाते हैं कि फिर उठायें नहीं उठते और नेत्रों के मारे हजारों गली-गली मारे-मारे फिरते हैं। फिर कौन ऐसा पदार्थ है कि जिसमें नेत्रों के इन गुणों की अनुरूपता मिले। ढूँढते-ढूँढते पाया हाथी को, फिर क्या था। कवियों ने नेत्रों को हाथी बना लज्जा का आँदू (बेड़ी) डाल दिया। देखिये 'आलम' कवि कैसा हृदयस्पर्शी वर्णन करते हैं—

भूमें भुक्तें उभक्तें फिर भूमि महा-भद-भाँते खरेई रहें ।
 टारे टरें न मदाध भय फिर ठौर ही ठौर अरेई रहें ॥
 कुजर से दग तेरे भट्ट ? गुन के गुनमाल गरेई रहें ।
 खून करैं सर 'आलम' कौ फिर लाज के आँदू परेई रहें ॥

“देव” जी ने नेत्रों को सजा हुआ हाथी कहा है—

लाज के निगाड-गाडदार अडदार चहूँ
 चौंकि चितवन चरखान चमकारे है ।
 धरुनी अरुन लीक पलक झलक-भूल
 भूमत सघन-वन घूमत घूमारे हैं ॥
 रजित-रजोगुन सिंगार पुज कुजरत
 अजन सौं सोहति मन-मोहक दँतारे हैं ।
 “देव” दुख-मोचन सँकोचन सकति चलि
 लोचन अचल ए मतग मतघारे हैं ॥

मृग, तुरग और मीन की उपमाएँ नेत्रों की चचलता के लिये दी गई हैं। अब प्रश्न होता है कि जब नेत्र एक ही पदार्थ था

तो उसकी उपमा को एक ही पदार्थ पर्याप्त था, फिर एक ही वस्तु के लिये तीन भिन्न पदार्थों की क्या आवश्यकता थी ? उत्तर में निवेदन है कि जिन नेत्रों में भोलेपन की झलक देखा पड़ती है, उनकी उपमा मृग के नेत्रों से दी गई, क्योंकि इनमें चंचलता की मदता रहती है और जिन नेत्रों में मन की चंचल गति के साथ चंचलता का प्रादुर्भाव अधिक होता है, उनकी उपमा तुरग के साथ मौजू है और चंचल चपलागनाओं के कुटिल कटाक्षों की समता मछली ही करती है, क्योंकि वह प्रत्येक पल में इधर-से उधर चमकती फिरती है, इससे कुछ कम राजन की गति है। प्रत्येक उपमान में विशेष गुण नेत्र उपमेय के लिये हैं। जैसे कमल में नेत्रों के समान चंचलता नहीं है, किंतु वह भी उनका उपमान माना गया है, क्योंकि उसमें प्रफुल्लता तथा कोमलता है, और ये दोनों गुण नेत्रों में भी हैं। अस्तु यह कहना यथार्थ है—

साँचे कमल से नैना निसि दिन फूल ।
बिना ताल के लौने, झुतहि डुकूल ॥

एक हों, दो हों, तो उनका वर्णन किया जाय। अनेक प्रकार की उपमाएँ नेत्रों के लिये कवियों ने निर्मित की हैं। जैसे— चकोर, काग, मधुमक्खी इत्यादि। हर्ष का विषय है कि रागभग सत्र ही प्रचलित उपमाएँ इस पुस्तक में समर्पित की गई हैं।

तैर, उपमा में तो समानता दिखाई जाती है, पर किसी-किसी कवि ने तो नेत्रों को नवाव और नादशाह तरु बना डाला है—

सुजनी चिकन की बिछापें डोरे लाल-लाल
 तकिया महातम कौ मोभा अपार है ।
 चञ्चल चित्तोंन अरज येगि-येगि आरें जाँइ
 पलकें दुआर ठाढे घरनी-चोपदार है ॥
 यकसी दिवान दोऊ कोए कान लागत हें
 अजन के दसखत सा सिद्ध कारवार है ।
 लाज औ सकुच ही हजूर के खवास खासे
 प्यारी के नवल-नैन नवाय नामदार हें ॥

उसी के साथ जिनको इनसे तरुलीफ हुई, उन लोगों ने
 इन्हे दरजी, दिवालिया, ठीकरे आदि भी कह डाला । जैसे—
 दग दरजी, गहि मन घसन, व्यौतति हट के हाट ।
 कतर व्यौत जानति नहीं, सीखे सूरी-काट ॥

❁

साहु कहायत फिरत हे, चित सगसाए चाप ।
 तेरे नैन दिवालिया, मन लै देति न पाव ॥

❁

✓ अरिं नहों हें चेहरे पर, तेरे फकीर के ।
 दो ठीमडे हें भीख के, दीदार के लिये ॥

दूसरी ओर, जिनको इनसे सुख प्राप्त हुआ है उन्होंने
 इन्हे रत्न कहा है—

सेत सख, जोति त्रिधु, अजन जहर-
 सज, यक धनु अरुनि सुमन सग लाये है ।
 प्रेम सुरा सूरे धैनु, सुदर समान रभा
 "शालम" चपल हय काम के सघाये हें ॥

प्रीति^{११} मधु^{१२} पूतरी^{१३} कल्प^{१४} लच्छी^{१५} पूरन
 धनतरि^{१६} सुदिष्ट^{१७} गज-गति^{१८} लपटाये^{१९} हैं ।
 काहे को समुद्र मथ^{२०} देरतान^{२१} फीनी^{२२} छम
 चौदहरतन^{२३} तिय नैननि^{२४} में पाये^{२५} हैं ॥

इसी प्रकार इस मर्गाङ्गसुन्दर-समग्र में चतुर्वदीजी ने जितना कुञ्ज ममाला जुटाया है, सत्र मजेदार ही है। एक ही चीज पर इतनी अधिक सख्या में ऐसी उत्तमोत्तम उक्तियों का समग्र करके उन्हें यथास्थान सजाना वास्तव में बड़े कौशल का काम है। भाव-भेद के अनुसार सिलसिलेवार सत्र को सजाने में चतुर्वदीजी ने सराहनीय श्रम किया है। इसी के साथ-साथ इतना और निवेदन है कि यद्यपि जगह-जगह इस पुस्तक में संस्कृत की सूक्तियाँ बड़े सुन्दर ढंग से सजाई गई हैं, तथापि इसके अतिरिक्त भी संस्कृत-कृतियों की कविता "नैन त्रिकुञ्ज" में सजाई गई हैं। संस्कृत-कवियों की कविता-कानन से भव्य-भाव-रूपी गज मुक्ता बड़ी प्रचुरता में प्राप्त करने का सुअवसर मिला था, क्योंकि उनके पूर्व उस काव्य कान्तार में कोई न गया था। इससे उनके हाथ बहुत-कुछ लग गया। अत्र तो वहाँ सैकड़ों सिर पर टोकरी रखते घूमते हैं और गजमुक्ता के स्थान में सूर्ये गोत्र के टीकड़े धीन कर सतुष्ट होते हैं और उन्हीं को वे कहते हैं 'गजमुक्ता'।

जिन संस्कृत-कवियों की कविताएँ इस पुस्तक में समर्पित हुई हैं, उनमें से एक, नेत्रों को कुरुक्षेत्र का रूपक देकर, अपनी प्रतिभा का अपूर्व परिचय देता है। इस पर जितना ही अधिक विचार किया जाय, उतना ही उत्तम भाव का विकास हृदय में होता है—

अर्जुन. कृष्ण सयुक्त कर्ण यजानुधावति ।
तन्नेत्र तु कुरुक्षेत्रमिति मुग्धे मृशामहे ॥

हे मुग्धे ! कृष्ण से सयुक्त (अर्जुन) काजल से सरसाई कार्त्ती पुतली, जत्र कर्ण (कान) के पास जाती है, तब मैं ऐमा प्रिचारता हूँ कि तेरे नेत्र अवश्य कुरुक्षेत्र हैं !

हमारे विचार में तो कुरुक्षेत्र की उपमा देने में कवि ने कुछ फसर रस्खी, क्योंकि कुरुक्षेत्र तो कौरव-पांडव के युद्ध से प्रसिद्ध है, और वह रहा अठारह ही दिन तक, फिर उसमे कटे कुछ ही कोटि मनुष्य, और अब तो वह रण-क्षेत्र भी न रह गया । दूसरी ओर, सृष्टि के आरभ से आज तक, न मालूम कितने ही जीवों के गले इन नेत्रों के कारण कटे और आगे भी कटेंगे । अस्तु, यदि इन्हें "नित्य-समर-स्थल" कहें, तो कोई अत्युक्ति न होगी ।

जो कवि तार्किक होता है, उसकी कविता कल्पना के साथ प्रमाण-सयुक्त होती है, और तत्र उसमें सोना और सुगंध का गुण आ जाता है । एक कवि कहता है कि नेत्र दो हैं, और हैं वे दोनों निकट, फिर ये दोनों परस्पर मिलते क्यों नहीं ? इस शका का समाधान इस तरह किया जाता है कि आगे की ओर तो नाक का ऐसा ऊँचा पर्वत है कि उस ओर से मार्ग मिल ही नहीं सकता, यहाँ तक कि चल करने पर भी एक दूसरे को देख भी नहीं पाता । रहा पीछे की ओर, सो इस ओर तो मिताने के लिये मैदान जरूर है, किन्तु हरएक नेत्र के पीछे की ओर भान रूपी कुएँ मौजूद हैं । यदि ये उस ओर बढ़े, तो कुएँ में गिर जायँ । अस्तु,

यही कारण है कि निकट रहते हुए भी उभय नेत्र परस्पर नहीं मिल पाते ।

“विघ्न श्रव कूप निपात्य भीत्या”

इसे कहते हैं कविता ।

आगे चल कर एक बुद्धि-विलासी कवि ने लज्जा, प्रेम और प्रीतम—तीनों का प्रभाव एक कामिनी में दिखाया है । लज्जा तो प्रेम को अपने पाम से हिलाने नहीं देती, पर प्रेम प्रीतम को देखकर आगे बढ़ता है । किन्तु लज्जा उसे फिर चिपटा लेती है और दूसरी ओर नहीं जाने देती ।

इस रसिकतामयी कल्पना को भला आधुनिक तुरुवद कैसे जान सकते हैं ?

यान्ती गुरुजनै साधुं स्मयमान मुखाम्बुजा ।
तीर्यग्ग्रीष यदद्राज्ञात्तन्निपघ्नात् फरोजगत् ॥

गुरुजनों के साथ मार्ग में जाती हुई नायिका ने मद मुसकान के साथ टेढ़ी प्रीवा करके जो देखा, तो सारे जगत् को व्यथित कर दिया ।

इसी तरह अनेक संस्कृत कवियों की रचना का ध्यान इस पुस्तकमें किया गया है ।

चतुर्वेदीजी ने “निकुज” के अन्तर कुजों के पुज सजाये हैं । जैसे—पदावली-कुज, कवित्त-कुज, सवैया-कुज, दोहा-कुज, सौरठा-कुज, कुडलिया-कुज, धरवै-कुज, शेर-कुज, ममस्या-कुज, परिशिष्ट-

कुज, नैन-केस-कुज, इत्यादि प्रत्येक कुज में बेला, चमेली, चम्पा, गुलाब, केतकी, निवारी आदि सुगंधित पुष्प-रूपी कवि-तरुणर लगे हैं। वहाँ सुगंधित समीर भी बह रही है। जिस तरु के पास कोई रसिक जाता है, वही उसे अपना रस पिलाते-पिलाते सतुष्ट नहीं होता और इसी लिये उसे आगे बढ़ने नहीं देता। यदि वह किसी प्रकार अनुनय-विनय कर आगे बढ़ा, तो नैन-केस-कुज में बाकायदा अदालत लगी देगता है। वहाँ जज हैं मुरली-मनोहर मदन-मोहन, मुद्दई श्रीराधारानी और मुद्दालेह हैं ब्रजेश्वर के नैन, वकील और गवाह भी मौजूद हैं। मुद्दई और मुद्दालेह का बयान होता है। वकील की बहस और गवाहों के बयान सुनकर फर्द-जुर्म भी लगा दिया जाता है। अत में ब्रजराज के नैन को सजा दी जाती है कि श्रीराधारानी उनको अपने नयन रूपा कैदखाने में कैद रखें यह मुकद्दमा आदि से अत तक पढने-योग्य है। जब फैसला सुना दिया गया, तो समाचार-पत्रों ने उसकी जो समालोचना की सो सुनिये—

नैन नैन कुचकर मुसी अक्रिन् वर,
 विसद कचहरी सेज सुख पालकी ।
 जुगुल रसिक-भन मुद्दई मुद्दाली दोऊ,
 अरजी गुजारें पास प्रेम अहवाल की ।
 रति रस रग दोऊ और तैं वकील लडें,
 फारे तरफेन तै यहस इन्द्रजाल की ।
 मुनसिफ मदन की अनोखी तजधीज देखी,
 बालमपै डिगरी भई है आज बालकी ।

पुष्पों की प्रशंसा का कारण उनका रूप, सुगंध और रंग है। पर यह हस्तकौशल मालाकार का है कि वह उनको माला में यथास्थान विरोता है। यदि वह निपुणता से माला न तैयार करे, तो केवल त्रिररे फूलों से आराध्य देव के कंठ की शोभा नहीं बढ़ सकती। भले ही जणमात्र के लिये हाथ में पुष्प रखे जा सकें, पर माला धारण करने वाले की जो शोभा होती है, वह केवल त्रिररे पुष्पों द्वारा नहीं प्राप्त हो सकती। अस्तु, मालारूप में पुष्पों के सजाने का श्रेय मालाकार ही को है। इस पुस्तक के संप्रहकार प० जवाहरलाल चतुर्वेदीजी ने भिन्न-भिन्न कवियों के सरम कवित्तों की ऐसी उत्तम व्याख्या की है कि भिन्न-भिन्न भाव के कवित्तों की लड़ी-सी बन गई है। एक से एक बढ़िया उक्ति-युक्तियों ऐसे अच्छे ढंग से पेश की गई हैं कि पढ़ने वाले की समझ में आजाती हैं। हैं तो सब कवित्त नाना प्रकार के और उनका एक दूसरे से कुछ सम्बन्ध भी नहीं है, पर चतुर्वेदी जी ने उत्तम टिप्पणियों की शृंखला से एक दूसरे को ऐसा मिला दिया है कि उनकी आन्तरिक शोभा निखर गई है। जैसे सान पर चढा हुआ हीरा चमकने लगता है वैसे ही चतुर्वेदीजी की व्याख्या से भिन्न भिन्न कवियों के भिन्न-भिन्न भाव भली भाँति प्रस्फुटित हो गये हैं।

यदि ये टिप्पणियाँ न होतीं तो पाठकों को कुछ कठिनाता जरूर होती।

मथुरा जी के चौथे तो स्वभावतः परिहास-कुशल होते ही हैं। अतः इसी से चतुर्वेदीजी की टिप्पणियों में यत्र-तत्र परिहास का

पुट भी आ गया है । इस कारण टिप्पणियों में पाठको की स्वभावतः दिलचस्पी हो जाती है और कवित्त का अर्थ भी सहज ही समझ में आ जाता है । विनोदशीलता और सहृदयता से व्याख्या करने के कारण ही पाठको को भावार्थ समझने के लिये माथापच्ची नहीं करनी पड़ती । हमें विश्वास है कि काव्यानुसारी सज्जनों को इस समग्र से यथेष्ट आनन्द उपलब्ध होगा ।

काशी
श्रीरामनवमी,
स० १९८९ वि० }

—शिवरत्नशुक्ल

निवेदन

श्री

निवेदन



चित, चितघन काँ दीनी विनु-तफ़्फ़ार,
सहितो काँन तगादी, धारदार ।

जब से श्री वियोगी-हरि जी की अनूठी-आँखें (साहित्य-प्रिहार की, और नहीं) हृदय में अँटकीं, तब से मैं उधर ही टक-टकाया मिया, ज़रा भी इधर से उधर नटला—तनिक भी टस से मस न हुआ। इधर मित्रमण्डली का “ठोक पीट कर बैद्यराज” बनाने वाला प्रबल प्रयास प्रचुर-परिमाण में प्रस्तुत होता रहा और इधर मुझे “नीम हकीम खतरे जान” का खयाल हर-समय खलने लगा। आखिर एक भी पेशान पा और पराभव की प्रमुता पाने के अनन्तर अपने तुच्छ-विचारों के साथ कुछ रमणीय-रत्नों को सजा कर यह छोटा सा “उपहार” ले उपस्थित होना ही पडा।

इन्द, प्रबन्ध एकु नहिँ मोरे;
सत्य कहीं लिखि कामद-कोरे ।

यद्यपि इस पुस्तक में “श्री गोखामी तुलसी दास जी” के वचनानुसार मेरा कुछ भी नहीं है, पराये माल पर ही “हाथ-साफ़” किया है, साहित्य-रत्नाकर से ही घुरा-घुरा कर कुछ चमकते हुए “हीरे” हाजिर किये हैं—उन्हीं को अपनाने की अजूना-आजमा यश की है, तथापि आजकल कुछ ऐसी चाल चल गयी है कि उक्त “डाकेजनी” को भी मुचतुर “सम्रह” रूप में प्रकाशित कर अपने ही प्रयत्न-प्रयास का प्रतिफल समझते हैं, अपनी ही कम नीय-कृतियाँ कल्पित करते हैं। अतः इसी पुनीत-पथ का पथिक मुझे भी बनना पड़ा और इस अल्प-उपहार के साथ “दिल्ली के पाँचवें सवारों में” अपना नाम भी “नोमिनेट” (Nominate) कराता हुआ आशा करता हूँ कि सुहृद-जन मेरी इस उलझलता से अलकृत “मदाखलत-वेजा” को वेजा न समझेंगे तो पुनः कुछ ऐसे ही रुचिर-रत्नों को अपने हुलसाये हृदय की झोली में भर कर आप के सन्मुख उपस्थित करूँगा। क्योंकि—

आज यह मौका मिला है सरत-मुश्किल से मुझे,
दिल के घस दो-हफ्तें कहने थे तेरे दिल से मुझे।

यद्यपि पूर्ण-प्रकाशित “सम्रह” भी सौन्दर्य के शरर से लवालब भरे हुए हैं—तनिक भी फसर नहीं है, तथापि वे कुछ “धंतरतीवी” की बहार से विलुलित हैं—विश्व-द्वलता की माना के मनोहर

मनियों से मुकुलित हो रहे हैं । मलमल-मलमल मलमला रहे हैं, अपनी अनौंसी आभा को प्रस्फुटित कर रहे हैं, पर चाह रहे हैं, “सर्रावत” के शरर से शरसार सरस-सुवर्ण को—मचल रहे हैं, किसी कमनीय कारीगर के कोमल-कर मे कमाये हुए कुन्दन को । फुटकल की “कँफुदन” से फनते हुए भी कुछ छरू से गये हैं । अत विद्वज्जन यदि उन्हें तनीयतदारी के साथ “तरतीर” से मिमल-वन्दो की किलो चढा कर सग्रह-रूपी स्वर्ण के डवने मे सरर दें तो साहित्य-ससार के ये रमणीय-रत्न काल की कुटिल-गति से बचते हुए बुद्ध निराली ही अदा से फिर चमकने लगे और सरस-हृदयों के हिय-हार होने लगे । अतएव कुछ ऐसी ही धृष्टता मे धूसरित-बुद्धि के अनुसार व शरारत के शरर से सरामोर (प्लावित) हो यह विविध-रत्नों से रजित “सयाली-सोमचा” सरस हृदयों के सन्मुख पेश करते हुए सकुचा रहा हूँ—शरम से शरमा रहा हूँ कि विद्वद्-वृन्द । इस “त्रेवक्त की शहनाई” पर घासलेटी-साहित्य शरद के सृजेता “चतुर्वेदी जी” और गवई-गीतों के गाहक “त्रिपाठी जी” की तरह बरस न पड़े,—ददें-दिल की इस नाजूक-शदा पर तड़प न पड़ें । क्योंकि आजकल तो—

बाल
किं
नेह

नैर्गुण्यमेव साधीयो, धिगस्तुगुणगौरवम्,
शाखिनोऽन्ये धिराजन्ते, छियन्ते चन्दनदुभा ।

मैं पहिले ही निवेदन कर चुका हूँ कि उक्त-कार्य किन्ही सम्माननीय विद्वद्वरों का था, परन्तु जगतक उन की दया-दृष्टि इधर आये-आये तत्रतः ये साहित्याकाश के चमकते हुए, "सितारे" कुछ दिन अपनी यत्र-तत्र प्रभा को प्रगट करते हुए "अदर्शनलोप" के लीला-निकेत होते जा रहे हैं—सुन्दरता की मदिरा से "मख मूर" कवि-हृदय के ये मनचले "मिनमुकरे" (अल्पवयस्क-बालक) सदाश्रय न पा अकाल ही काल के कौर होते जा रहे हैं। अस्तु, इनके उद्धार का कमनीय-कार्य हरे हरे मुझ जैसे—

‘साहित्य, सङ्गीत-कलाविहीन’

—के हाथ से हो, यह नितान्त असम्भव है—अश्रुत व्यापार है, पर उक्त दुःसाध्य भी साध्य हो रहा है। कुँए की "भेड़की" भी सात-समन्दर की थाह थरपने लगी है—अब उसके भी "नाल" डुलने लगी है। इस के लिये विद्वज्जन क्षमा करें।

किस तरह फर्याद करते हैं धता दो कायदा,
ये असीराने—कफस ? मैं नौ गिरपतारों में हूँ।

विद्वद्-वृन्द के सन्मुख एक अर्ज और है, वह यह कि प्राचीन काव्य को लिपि-उद्ध करते समय मैंने "रत्नाकर-स्टायल" का इस्तेमाल नहीं किया है—उसे कृत्रिमता की कलौंछी से कलुषित नहीं किया है, (रत्नाकर जी इन शब्दों के लिये क्षमा करेंगे)

अपितु प्राचीन-परिपाटी का ही प्रश्रय लिया है और “नई आई
 इरानी को दूर करो रे”—का दुस्साहस नहीं दिग्याया है। क्योंकि
 हम तो प्राचीनता के पुजारी हैं—उसी मजुन-मूर्ति पर “मायल”
 हैं, उसी स्टायल के कायल हैं, नूतनता के नहीं। जैसे कि—

हुनियाँ के तगथपुर का नहीं हिस, शैदाप-जमाले-वारी को,
 परवाने को मतलय शमा से है, क्या काम है रगे महफिल से। †

अस्तु, मैंने—मैं, पै, तैं, तौ, कौ, कौं, ज्यों, त्यों, मोहन,
 मोहन आदि को मैं, पर, तै, को कौं, ज्यो, ज्येँ, त्यो, त्येँ, मोहन,
 मोहन, सोहन, सेहन, नहीं किया है। जैसा स्वरूप प्राचीन-
 परिपाटी के अनुसार और आजकल के ‘मनचले-कवि-कोविदों के
 शब्दों में “नीम-उदनाम बुढ़िया-प्रजभापा” के हस्त-निरिखित ग्रन्थों में
 सुमज्जित था उसे वैसा ही रहने दिया है। उसपर नवीन फैशन की
 ‘रहनुमाई’ नहीं रपटाई—उसे हृदय-हार बनाने के वहाने बलात्कार
 नहा किया, उसकी सरसता का “गुलेआम” महार नहीं किया
 और इसी प्रकार उसके क्रिया-वाचक शब्दों को भी विकृतता की

† इधर के अनन्य प्रेमी की दृष्टि, सप्तर के परिवर्तन पर नहीं पडती,
 अपितु अपने ही लक्ष्य पर रहती है। पतंग को सिफ दीप शिखा से ही
 प्रचल्य है, महफिल के रग से, फरनीचर की सजावट से, तस्वीरों और
 रंगों से—उसे क्या काम।

बहार से बढावा नहीं दिया । कारण उक्त-कार्य भी बड़ा-दुस्त था, क्योंकि किसी किसी कवि-कोविद ने तो किसी शब्द-क्रिया का अकारान्त माना है और किसी ने इकारान्त वा किसी ने उकारान्त । इन्हें सुसंस्कृत करने का किसी ने भी सत्साहस नहीं दिखलाया किसी ने भी इनको सराद पर सराद कर उतारने को कोशिश नहीं की, सत्र ने ही—

“अपनी-अपनी ढपली और अपना-अपना राम”

—अलापा है । उर्दू-शायरो की तरह इन्हें चुस्त-दुरुस्त कर का किसी ने भी दुस्साहस नहीं किया । अत इससे जो फ का फजीता हुआ है—उन्मत्तता का जो आविष्कार हुआ है, “अन्दाजा अँकना” अतीव-भयावह है, परन्तु इससे जो की बहार बिलेर कर—शब्दों को तोड़-भरोड़ कर, जो मजुल मुकुलित किया है वह अकथनीय हैं, अवर्णनीय है । और महानुभाव उन्हें चाहे जो कहें, पर “अपने राम” तो “चार-चाँद” लगाना ही कहेंगे । क्योंकि—

“निरङ्कुशा कथय ”

—किसी प्रकार की “कैद” की कल्पना नहीं करते, वे दुस्सह-दुस्सन्दाजी को दूर ही से ‘सात-सलाम’ किया करते हैं । तो स्वन्तत्र-सत्ता के उपासक हैं, उसी अनिर्वचनीय-आनन्द

आशिर हैं। इस लिये हमने भी जिस “क्रिया” वा “शब्द” का
 जैसा स्वरूप पाया उसे उसी तरह विराजमान कर दिया—उसे
 उसी रूप में रहने दिया, अथवा यों कहिये कि—

“मल्लिका स्थाने मल्लिका पात

—कर दिया है। अत यह मेरी ही धृष्टता है, मेरे ही

मतिभ्रम का फल है और “गर ये भी गुनाह हो तो गुनहगार ”
 में ही हूँ, दूसरा नहीं।

रखियो “गालिव” मुझे इस तरह नयायी में मुआफ ,
 आज कुछ दर्द मेरे दिछ में सिवा होता है।

प्राइवेट-प्रपच को प्रगट तो न करना चाहिये पर जी नहीं
 मानता, अपितु सात-वर्ष के बाद प्रकाशक जी का एकाएक पत्र
 पहुँचा कि हम उक्त ग्रथ प्रकाशित कर रहे हैं, इस लिये आप
 (मैं) ननारस आ जाँय तो बहतर हो। पत्र पढ कर यद्यपि मन
 में विचार हुआ कि आह। “प्रकाशक जी को” यह असमय
 में ही प्रमव-पीडा क्यों उठा, नवम के पहले ही आप (प्रकाशकजी)
 यो तडफड़ाने लगे, ऐसा क्या मौका महनूस कर लिया, पर परम-
 ता परमात्मा की यह भी विचित्र लीला समझ, हौनहार जच्चा
 र बच्चा की कुशल-कामना मनाता हुआ “वनारस” आ ही

पहुँचा और उक्त पुस्तक-प्रकाशन का कार्य सँभाल लिया, अतः इस पर्दे-फाश पर प्रकाशक-महोदय सधन्यवाद क्षमा करेंगे ।

कुछ भी न चली इशक में तदधीर किसी की,
तदधीर पै हँसती रही तकधीर किसी की ।

त्रिद्वन्द्व-चन्द्र । इस संग्रह की “रामकहानी” लिखने की इस समय इच्छा होते हुए भी नहीं लिखी जा रही है क्योंकि माननीय प० पद्मसिंह जी के शब्दों में ये दिल के टुकड़े, जिगर के पाए आज जुदा हो रहे हैं और साथ ही किसी कवि का यह “शाब्दिक नश्वर” आँसुओं में अटक-अटक कर कह रहा है कि—

१ घक मुझ पर दो-कठिन गुजरे हे सारी उम्र में,
उन के आ जाने से पहिले और चले जाने के बाद ।

—पर आह । दिल को थाम कर यह सब कुछ सहना ही पडा, जी मसोस कर रहना ही पडा और इतने ही पर सन्न करना पडा कि प्रकाशक जी के क्रोध से निकल कर ये “मिनमुकुरे” अवश्य ही सुहृद-समाज की गोद में लालित-पालित होंगे—दुलराये दुलराये जायेंगे ।

यद्यपि आजकल “परस्पर प्रशसन्ति अहोरूपमहोर्ध्वनि” का कुछ रुचिर रिवाज सा चल गया है, इस ‘मज्जार’ पर भी “चन्द्र

कलमे" लिखना कुछ जरूरी सा समझा जाने लगा है। इस लिये इस पुस्तक की भूमिका के लेखक विद्वद्वर और कविवर "प० शिवरत्नजी शुक्ल" साहित्य-रत्न को अनेक धन्यवाद है, क्योंकि आपने अपने उदार-हृदय का परिचय देते हुए इस नाचीज़-ग्रन्थ की भूमिका लिख कर मुझे विशेष कृतज्ञ किया है। इसी तरह "महाशक्ति-प्रेस" के स्वनामधन्य मालिक "श्रीहनुमानप्रसादजी शर्मा, वैद्यशास्त्री" के प्रति भी मेरा हार्दिक धन्यवाद है क्योंकि मैं आप की ही परम-अनुकम्पासे (जी ऊरते रहने पर भी) इस ग्रन्थ का सुचारु रूप से कार्य सम्पूर्ण कर सका। आपने जो-जो समयोचित सुशिक्षाओं से मुझे समय असमय नम्रानित किया है उसका मैं हृदय से आभारी हूँ। साथ ही साथ पुनः प० पद्मसिंह जी के ही शब्दों में—

अन्ये चापि महा-भागा सहाया ग्रन्थनिर्मितौ,

येते सय प्रसोदन्तु नामतो न स्मृता इह ।

—का भी मैं अनुग्रहीत हूँ जिन्होंने समय-समय पर अपनी बहुमूल्य-मम्मति दी थी।

अन्तिम प्रार्थना एक और है, वह यह कि इस पुस्तक में जो कुछ त्रुटियों व कमी रह गयी है उसका मुझे विशेष ध्यान है, पर एक तो साव-अर्प तक उसे पुनः मुझे देखने का सौभाग्य ही

नहीं मिला और मिला भी तो एकाएक मैं कुछ कर नहीं सकता था। अस्तु दूसरे-सस्करण की "मुँह-नुमाई" के लिये वह सब कुछ छोड़ना पड़ा। इसी तरह प्रथम फार्म छपते-छपते मुझे "कलकत्ते" जाना पड़ा। अस्तु, वहाँ से शीघ्र फुर्सत न मिलने का कारण यहाँ जो फार्मों की फजीहत हुई वह यत्र-तत्र दृष्टि-गोचर है, उसके लिये सहृदय-जन मुझे ही क्षमा करेंगे। क्योंकि—

“इस दिले-चेताब की साहब खता थीं मैं न था”

मथुरा }
१९८६ }

निवेदक—
जवाहर लाल चतुर्वेदी

विषय-सूची

पुतली वा तारे	५५
आँख का तिल	५६
कोप	६०
कोयों की लाली	६१
पलक	"
चरनी	६३
उपमा:—	
मृग	६८
तुरग	७२
मतग अर्थात् हाथी	८०
मीन	८३
फमल	८८
खंजन	९३
चकोर	९८
काग	९९
मधु-मक्खी	१००
सम्मिलित-उपमाये	१०१
रूपक और उत्प्रेक्षाये	१०६
षादशाह	
नयाय	१०९

सिपाही (प्रसंग व्रत)	१११
बजाज	११४
(तिलगी) टिप्पणी में	"
दरजी	११५
(फिरगी) टिप्पणी में	"
दिवालिया	११६
मजदूर	११७
(ब्राह्मण) टिप्पणी में	,
ठीकडा	"
नाट्यशाला	११८
काम नौका	११९
आँख और चौदह-रत्न	१२०
अलसोही आँखें	१२३
अधखुली आँखें	१२७
लडैते-लोचन	१३०
लगाँवे लोचन	१३५
उरुमीली आँखें (प्रसंग-व्रत)	१३६
बिगरेल आँखें	"
वियोगिनी-योगिनी आँखें	१३९
अधु धारि घर्षा	१५०
आनन्दाश्रु	१७१
नेत्र रूपी दशावतार	१७५

नैन-निकुजः—

श्लोका

पद

कवित्त

सवैया

दोहा

सोरठा

कुण्डलिया

बरखे

शेर

समस्या-पूर्ति —

कवित्त—

लोचन तिहारे ह

लोचन तिहारे दुल मोचन हमारे ह

नैन थाँके राधिका के हँ

मैन भूप बाजी ह

तीरथ के तीर, काहू तीर मारियतु है

मारै नैन-थाँन जैसेँ चोट लगे गोली की

राज भरे लोचन सँभोचन मुरे परँ

उनीदि नैन नीकदार

नमीले-नैन तेरे हँ

१७६

१६७

२१७

२६५

२८७

३०३

३०७

३११

३१७

३२६

३३१

३३३

३३४

३३५

३३८

३४२

३४७

३५४

३५७

३६६

करति कजाकी फजरारे-नेँन कोरदार	३७२
~पक पक आँख तेरी लाख लाख तोड़ा की	३७४
खूबी सजरीदन की खाम करियतु हे	३७५
मँन के खिलौना हँ	३७६
✓जहाँ जहाँ देखें तहाँ जीति जीति डारे हँ	३७८
फजरारे तेरे नैँन हँ	३७८

सचैया—

आँख लगें नहीं आँख जो लागें	३८१
आँखियाँ दुखियाँ नहीं मानती हँ	"
लाज की आँख जहाज तँ भारी	३८२
खुले खूट करैँ दस-बोसन के	३८३
आँखियाँ रिक्तारन पैँड परी हँ	३८६

परिशिष्टः—

गणेश जी के नेत्र	३९१
विष्णुमगधा के नेत्र	"
लक्ष्मी जी के नेत्र	३९२
रामचन्द्र जी के नेत्र	३९३
जाकी जी के नेत्र	३९५
सयुक्त-नेत्र धर्षन	...
एष्य-बमलास धर्षन	३९७
गधिषा जी के नेत्र	४००

कूयरी के नेत्र	४०१
महादेव जी के नेत्र	४०६
काली जी के नेत्र	"
धिध्ययासनी जी के नेत्र	४०७
हनूमान जी के नेत्र	"
" की सुदृष्टि	४०
" की कुदृष्टि	"
नेत्र और नव ग्रह	४०९
नेत्र और मंगल ग्रह	"
विक्रम नरेश की दृष्टि	"
नेत्रों के सब उपमान	४१०
कवि-चन्द्र नेत्र	"
जज-चन्द्र नेत्र	४११
जोहरी चन्द्र नेत्र	"
पत्नी-चन्द्र-नेत्र	"
बिना मात्रा का नैन निरूपण	४१२

नैन-केश.—

कवि-नामावली	४१३
सहायक-ग्रन्थ	
शब्दार्थ	

आँख और कवि-गण

ब्रह्मा बरुनी मैं, विराजै सिव स्यामता मे,
 धिस्तु हैं विलासता मैं प्रकास उमगति है,
 कोर मे कुबेर हू के कोस की न धाह लगै,
 इन्दीवर रन्द्र हू ता अधि सौ लगति है ।
 मॉन मैं सुनीन हू के घान हरै "महावीर"
 रंग मैं रिपीन के उन्नंग से ठगति है,
 रिद्ध-सिद्ध संतन की सत्प्र-गिरा मेरे जान,
 कैधौं ब्रह्म-जोति तिघ-र्जन मैं जगति है ॥

—रवि महावीर

॥ श्री ॥

आँख और कवि-गण



आँखिन में प्रीति, रम-रीति, सन आँखिन में,
आँखिन में अन्धर लिखे हैं सुघराई के,
आँखिन में काम औं डिटाई सव आँखिन में,
आँखिन में सील वसै सुरिसरनाई के ।
“आलम सु कवि” कहैं अमृत है आँखिन में,
आँखिन में जग-जोति दोई हैं सुहाई के,
काम के तवच्छिन सन लच्छिन हैं आँखिन में,
आँखिन में भेद हैं भलाई औं बुराई के ॥

—भाष्य

विश्वरूपा-आँखों को केवल कवि-गण ही देख सके । भला और आँखों की पहुँच उन आँखों तक कहाँ ? कि जिनके सहज ही किंचि-मात्र देखने से मीत का पैगाम आजाय ।

उनकी सहज सुभाउ, और कौं बुध, बल, नासा ।

—परान मुल्तान

नेत्रानन्द के आगे क्या कोई दूसरा सुख है । कोई नहीं, क्योंकि जो रस कवियों की रसाम्बादनी रचना के रसों में भी न पाया, वही रस —

अमो हला-हल मद-भरे, सेत, स्याम, रतनार,

—मैं पाया। प्रेमी-जन यही मनाया करते हैं कि, किसी का अनियारी अनियारी अनोरी आँखें हमारी आँखों में अटकें। कमल समान सुचारु और काजर से कलित कजरारी-कोरें बलेजे में कसकें। लाल लाल लोयों से ललित लज्जिले लोचन की दीर्घ धीठ बनी खटका करे। आँख में आँख अटकते ही फिर भते हा टरु-टकाया करो, अन्धे की तरह भले ही इधर-उधर टटोला बग, फिर क्या होता है?, क्योंकि जब आँख में आँख समायों कि पर दम मुक्त।

कवि-कल्पना की करनूतों से आँख महरानी, मन-महीप का मन मानी पट-पाना के रूप में भी दिखाई देती है। यहाँ स्नेह का सुहाग, लज का लहंगा, शील की साडी, करुणा की कञ्चुकी, कल्पना का केलि कुञ्ज, घासनाओं का विशाल भवन, सोन्दर्य का सिंहासन, सब ही साजो-सागान सुसज्जित है। कुछ कसर नहीं।

आँखों के मन्चे-जौहरी पेघल कवि-गण ही होते हैं। वे ही इन अनमोल-रत्नों के जौहर और पानी के पारखी प्रचुर-परिमाण में होते हैं। भला आँखों के पास वे आँखें कहाँ? क्योंकि -

अनियारे, दीरघ, धनत, रिता न चतुर जहान,

किंतु—

वा चित्तमनि आँरें पुट्ट, जिदि वम होति मुजान । †

—कवि-र निहाली ला

† कवियर अभियादत्त जीन्दान ने जिहारी के इस अनमोल हारे को अपनी रूपपूर्ण प्रति ना के सहारे यों सुसज्जित किया है यथा -

सुजान को ही बश करना जरा टेढ़ी-खीर है। अजान की तो बात ही क्या, वह तो जरा से इसारे में ही बश हो जाते हैं। बस हरना तो सुजान का है। अच्छा तो वे आँखें कैसी होती हैं? जिनके कि बश में सुजान हो जाते हैं, यह भी कवि-गण ही कह सकते हैं। ओरों की क्या ताकत । अस्तु, वे आँखें कैसी होती हैं, उसे "ठाकुर-कवि" कहते हैं। यथा —

डीलदार, सील दार, लाज कौ अहार जिन्हें,
तीछन मृगा से देखि-देखि रहियतु हैं,
मान औ रजन से अलसे अनौरे देखे,
कज-दल हू तैं निसेस चहियतु हैं ।
ललित-ललौहे, कसकौहे, चसकौहे जान,
"ठाकुर" कहति सुख पाइ रहियतु हैं,
औरन के नैनि कहा इन नैननि के लेखें आवें,
ऐसे नैनि होंइ तव नैनि कहियतु हैं ॥

—ठाकुर

समझे साहय ? , ऐसे नैन (आँख) हों तो नैन (आँख) हैं, नहीं तो नहीं। क्योंकि आँख तो सय के ही होती हैं।

सय से पहिले उनका डीलदार होना जरूरी है, क्योंकि खूबी तो बड़ी आँखों में ही होती है और बड़ों की बात भी बड़े ही जान सकते हैं। छोटे मुँह से बड़ी-बड़ी बातें शोभा भी नहीं लगतीं।

जिहि बस होति सुजान, अहं नैना यह औरें,
बनत बनाए नहिं किण नाबरे के तारें ।
भाह मयाइ लपेटहु क्यों नहिं काजर कारे,
अहं 'सुकवि' बस करन तऊ कोऊ इग अनिपारे ॥

आँख और कविगण

तब आँखें कब बड़ी मानी जाँय ? जब कि वो कानों को छूती रहें।
आँखों का कानों के छूने में क्या रमणीय-रहस्य है, यह रघुनाथ
जी से सुनिये । यथा —

✓ देखुरी ? देखु ये ग्वालिन-गवारिनु, नैकु नहीं। धिरता गहती हैं।
आँद सौं "रघुनाथ" पगी, पगी-रगन सौं फिरती रहती हैं।
छोर सौं छोर तरौना कौं छवै करि, ऐसी बडी छवि कौं लहती हैं।
जोवन आइवे की महिमा, आँखियाँ मनौं कानन सौं बहती हैं ॥

—रघुनाथ

धत्तरे कानोंकी ? , अरे जरा-आँखों का शुक्रिया तो अर्दा
करनाथा, भला तुझे क्या खबर थी कि जोवन मन-मोहन आरहा
है । यह शुभ-सवाद तो उन्होंने ही चार-कदम आगे बढ़कर दिया है।

हों तो ? सबसे पहिले डीलदार (बडी) हों । क्या हाथी
जेसी, अजी यहाँ हाथी की क्या हकीकत हे । यह तो बहुत छोटा
हे । दीरघ-दृगों की यह समता या सामना क्या खाक करेगा । ये
तो उससे भी बडी हैं । कुछ भूठ थोडे ही हे । न मानें तो दास
जी से दाद दिलायें । यथा —

✓ होति भृगदिक तैं बडे वारनु, वारनु तैं सु पहारनु हेरे,
सिन्धु में केते पहार परे, धरती में किते परे सिन्धु घनेरे ।
लोकन में धरती कितनी, हरि-उद्र(उदर) में केते हैं लोक बसेरे,
ते हरि "दास" वसैं इनमें, सन भौंति बडे-दृग राधिका तेरे ॥

—भिखारीदास

नृगों से हाथी बडे होते हैं और हाथियों से बडे पहाड होते
हैं और न जाने कितने पहाड समुद्र के पेट में पडे हैं और
कितने ही समुद्र इस पृथ्वी पर प्रख्यात हैं और पृथ्वी भी न

मालूम कितने लोकों की लीला निवेदन है और लोकानुलोक सब हरिभगवान के उदर में अगिष्टित हैं और वे, जिनके उदर में सब लोक, तल, चितल, सुतल, तलातल समा रहे हैं वही हरि आप की आँखों में बस रहे हैं। इससे समस्त प्रकार से हे श्रीराधे महारानीजी ! , आपके नेत्र ही सबसे बड़े ह।

देखी ! आपने आँखों की विपुलता-मयी दास जी की दाद, चखा आपने उनकी सरस-रचना का रस ।

कभी, रसिक शिरोमणि श्रीरुप्य महाराज को अपने कम-आदों की विपुलता पर घमड होगया होगा, अस्तु उस घमड पर घुडकती हुई एक सखी आपसे कहती है कि, धीमान् —
 १ फारे महा-अनियारे, अमोल हैं, कौल जिन्हें लसि लागत फीके,
 २ विप-भरे नौहक कहति सु आप, हमारे तो राखन हारु हैं जीके ।
 ३ आरसीतौ तुम दोऊ इकन्त है, देखति क्यों न धौं कौन के हैं नीके,
 ४ ऐसे बड़े पदौं नैनि विहारे हैं, जैसे बड़े हैं हमारी-सग्यो के ॥

—सोई कवि

जी हाँ ! ठीक है, भला इनकेपेसे बड़े-बड़े नेत्र वहाँ से आर्य, जैसे कि आपकी मखी (श्रीराधिका महारानी) के हैं। ये क्या देखेंगे, हे तो पाहिले ही चित्त घुराने वाली चचल-चगों पर मय कुद्ध सीढ़ापर बिये धंटे हैं, मोल लिये दाम हैं, दीन हो रहे हैं, लोयों की पापों में सन्पूर्ण शरीर समा दिया है। देखिये न —

१ वीन-सैइ जाके अहो, त्रिगुवा में न समोहि,
 २ धनि राधे, गरति तिन्हें, लोयन पोयन भौंति । ८

—सोई कवि

० कुछ इन्हीं भाष पर कवि पर, रस निधि जी के दोहे अत्यन्त सूक्त के परिचायक हैं। यथा —

आँस और वरिगण

आँसों जय डील-दार (घड़ी) हों तब सील दार भी हों,
सील अर्थात् लजा तो घड़ों ही में होती है न ? , मला -
शील-सकोच क्या जानें, और जो बडे होते हैं, वे ही
(भागी भएकम) होते हैं, उन्हीं को जाति अभिमान भी
है। वे स्वजाति की उन्नति देखकर फूले नहीं समाते। जैसे कि

सयही कौं सुख होती है, निरसि आपुनों गोत,
ज्यों नडरी-अंसियॉनि तसि, आंसिन कौं सुख होत । ६

किन्तु कभी कभी सगोती-जनों को बडे, बडे दुखदायी
जाते हैं। यथा —

बहुधा वैरी गोत के, सही गोतियन जानि,
बडे नैन सटफन लगे, नैन हियन में आनि ।

घड़ों को टगना भी कुछ हँसी खेल नहीं है और न कोई ।

तुम गिरि लै तब पै धर्यौ , हम तुम नैं दग-कोर,
इन द्वे में तुमहं तही , अधिक प्रियौ को जोर ।
घट-बड इनमें कौन है , तुही साँवरे नैन,
तुन गिरि लै तब पै धर्यौ , इन गिर धर लै नैन ।

एक और —

भरी अमित छवि तो दगन , सय जग बोलति सागि,
मेरे ह नाहे-भनहि , कोषन दग निच रासि ।

७ माननीय कवि, नवनीत जी चतुर्वेदी ने रहीम के उक्त दो
पर क्या ही अपनी सरस सूक्त उपजायी है, चाह—यथा —
आंसिन कौं सुख होत , देगि तन मन त रंनै,
रसि कुल की दद दारि , अताहि अनंद तस भीजै ।

श्रॉर और कविगण

कर सकता है, क्योंकि यह कार्य भी बड़ा ही कठिन है। एक श्रॉर श्री कृष्णचन्द्र, श्री राधिका जी के साथ श्रॉर मिचौनी खेलने में। राधिका जी की श्रॉर ऐसी वैसी नहीं थी, वे थीं कानों से श्रॉरित करने वाली। कृष्ण के कर-कर्मलों से, कमलाक्षों का बन्द श्रॉरना सहज न था। लान्चार हार मान कर बोले कि —

गनन लौं श्रॉरियाँ हैं तिहारी, हथेरी हमारी कहाँ तक पैलि हैं,
दुदु तैं तुम देखती हो, यह कोर तिहारी कहाँ लौं सकेलि हैं।
कान्हर” हू कह रयाल यह, तिनकों हम हाथन ही पर भेलि हैं,
धेजू मानों भलौ या बुरौ, श्रॉरमूँदनों सग तिहारे न खेलि हैं ॥ १

जय श्रॉरें नूँ दो पर भी आप देखती ही रहती हैं, तय भला
लना कैसा। , हम न खेलेंगे। अच्छा साहव न खेलिये,
मै श्रॉरि। , हम न खेलेंगे। अच्छा साहव न खेलिये,
श्रॉरन का। , कहीं ये ही बड़ी उड़ी

कई नीन, कविराज, चतुर राखत सब कौ रूप,
सन घटिन कौ, होत, हाए विच शान महासुख ॥
† इसी श्रॉर मिचौनी की घटना पर कोर कवि इन कररे
टाकों से श्रॉर मूँदने पर हाथ ही न कट जाय, इस पर प्रियतमा
ग प्रियतम को कैसा मधुर मना करना करेगे को मसल रहा है
के वह सद्गुहदय रत्नजन ही जान सन्ते हैं। यथा —
श्रॉर मिहीचनी खेलत माहि, दुहू विधि सोच कह नट जाँइ न,
चोर है चोर सु नद किसोर री?, जाइ छिपे औ कहू बदिजाँइ न।
नीन मिहीचें छुपे उनके तजि, एत सनह कहू हट जाँइ न,
नाय हा। हाथ सरोन से आपु के, कररे कटाएट कहू कट जाँइ न ॥

—साद कवि

कटाक्ष

आँखों की तीक्ष्णता भी सराहनीय मानी गयी है। तीक्ष्णता तीक्ष्ण नहीं होती, बल्कि घड़ी-मीठी और मृदुल है। सीधे-सादे विचारे मुखारक को तो यहाँ तफ गया कि, कटाक्षमयी-मनोरम-आँखें, घड़ी ही तेज-तल इस से आप किसी नवेली-नायिका को आँख में काजल डेल, अतीव दयार्द्र हो बरज रहे हैं कि —

पान्ह कैं बाँकी-नियतौन खुमी, मुफि फाँ की न्नारिन भाँकी ग
देखि अनोखी सी, चोखी सी कोरि, अनोखी परै निहावि
मारैई जात निहारै "मुखारक" ए सहजै कजरारे-भूग
काजर दैरी न एरी सुहागिन !, आँगुरी तेरी कटैगी कटाच्छित्त

अरी धायली ! , उगली से आँखों में अजन न आँख,
तो करेरे-कटाक्षों से उँगली कट ही जायगी, क्योंकि फल ही
के यह तेरे फटीले-कमलाक्षों से संचालित कुटिल करेरे
फलेजे को काढ़ चुके हैं, क्या यह नहीं जानती ? ।

ठीक है, नायिका को मुखारक-महोदय का हजार-घार

करेरे-कजरारे-कटाक्षों की कोरों से, उँगली कटने
कल्पना पर कविवर "देव जी" भी अनोखी-उक्ति कहते हैं।

कोरन ही डग काजर देति ही, कारी घटा उभडी घन घोरन,
घोरन आली घडी मनौ सुन्दर, यागन ही कुहुँ देतु हे मोरन ।
मोरन की धुनि बादति है, अरु मैं बरनी-बरनोरन जोरन,
जोरन "देव" सखी पलकै, अगुरी कटि जै है कटाच्छ ही कोरन ॥

आँस और कविगण

दो करना चाहिये। देखिये न, स्वकटाक्षो से उँगली कटती हुई
चा ही तो दी। , नहीं तो उँगली का "विस्मिता" ही था।
कटाक्ष न ठहरे, तेज-चाकू ठहरे।

चाहे नाथिकायें मानै या न मानै, पर इन कुटिल-करेरे-
कटाक्षों के कपेटों ही कायल है। देखिये न एक दूसरे कवि भी
हैं कुटिल-कटाक्षों से मायल हो इसी भाव पर यों सरस-सूक्ति
इते ह। यथा —

कहा करै जो आँगुरी, अनी-धनी चुभि जाइ,
अनियारे-चर लखि सर्सी, काजर देति डराइ।

तीसरे इनसे भी बढ़ा-चढ़ा गजब ढाते हुए, फमाते ह कि —
चतुर-चितेरे तुव सर्सी ? लिखत नहीं ठहराँइ,
कलम छुवति कर-आँगुरी, कटी कटाच्छिन जाँइ।

—कोइ कवि

चतुर चितेरा (चित्रकार) तेरा चित्र लिखने कैसे ठहरे, अरे
इसकी उँगलियाँ तो कलम के दूते ही तेरे कटाक्षो से कटी जाती
। कहिये हँ न करेरे-कटाक्ष ! , चितेरा चित्र लिखने क्या गया,
ते उँगलियों का शिकार कराने गया। चलो उँगलियों पर हँ
कटती, यही गनीमत गिनिये—सकुशल घर तो लौटा—यही बहुत है।
हँ।
कवि केशव भी इन करेरे-कटाक्षों की फाली-फरवूत से दिल
मेलते हुए कहते हैं। कि —

"केसव" बाकी चितौन की कौन कला कहिजात कही कछु नाँहीं,
जद्यपि सूधी सुधा-रस पागी, निफार निधरजित सो हँ सदाँहीं।

आँस और कविगण

तद्यपि जाइ परै जहँ औचरु, सूधे-सुभाव हतै उहि छाँहँ
चेतन होतु जडै, जड चेतन, केननि कौँ निररै दृग मँहँ

केशुज जी की करतूत के बाद, पद्माकर जी का
परखने लायक है। आप सारे कविजगत को ही पलट
देखिये न —

आछे निण कुच-रुचुकी मै, घट मै नट के से बटा करिये कौ
भो दृग हू पै किए “पद्माकर” तो दृग छटि-छटा करिये
कीजै कहा विधि की विधि कौ, नियो दाड न लौट पटा करिये कौ
मेरो हियौ कटिये कौँ नियो निय ? तेरे कटान्छ कटा करिये कौ

कामनी के करेरे-रुटात तो काट करने के लिये हँ आर
हृदय फटने के लिये, फिर इस बात का क्या रोना ?
भी नैर थी, पर एक कवि आँर आगे बढ कर कहते है कि
हिरन निहारि जकि रहे हिय हार मान,
वाग्-चर वारिज की वनिक बनाती हैं,
हाती होति निय पछताती कर छाती दै दै,
धीर-मन-रजन के मजन जमाती हैं।
दीपे कौँ समान उपमान इन नैननि की,
कविन के मन की उक्ति अधिगती हैं,
प्यारी के अनैरि, अनियारे ईछ द्रवै-द्रवै करि,
सौदन-रुटान्द्रन हैं फेदि-फेदि जाती हैं ॥

—कॉह

तेरे नैनो को देख कर हरिन ऊफ (धय) दग धन

श्रीर और कविगण

गो । मल्लियाँ और कमल इन नैनों की समता न पाकर बाजार
 विकने लगे और अन्य स्त्रियाँ भी इन नैनों की सूर्यी के
 प्रगाडी अपनी दाल न गलती देख छाती कूट-कूट कर रह जाती
 । अस्तु, यहाँ तक तो ठीक था, पर तेरे इन कररे-कमलाओं की
 नमता केलिये कवि-गण अनेक-उपमायें उपजाते ह, निन्तु वे-इन
 तेल-स्माती तीक्ष्ण-कटाओं की बदीलत पहिते ही अर्थात् हृदय में
 उठते ही (इनकी बदौलत) (करपनायें) कट जाती हैं । अर्थात्
 खिण्ड-खण्ड हो जाती हैं ।

करपना का हृदय में उठने के पहले ही (उनका) कट जाना,
 राज की सूक्त है—अनोखी-उक्ति है—अतुल अनुमान है ।
 सुनिये । एक और शिकायत इन कुटिलों की याद आगराँ,

यह यह कि जब श्रीअनन्द-कन्द, ब्रज चन्द ने अपने फोमल-दमल
 समान कर की कनिष्ठका पर, इन्द्र की उदूदण्डता उखाटने को
 गिरि उठाया था, तो उस समय श्रीपाधिका जी वहाँ उपस्थित
 थीं, अस्तु उनके ललचाँहे लोचनों की कुटिल करवत से कहीं
 लाल !, स्वेद-बम्प होकर गिरि न गिरा दें इस से यशोदा-भैया
 उन्हें—श्रीपाधिका जी—को सुशिक्षा के साथ मीठा-उलहना
 देती हुई कहती हैं कि —

शुद्धी-नमान-दान फिरति अकेली बधू ।
 ता पै ए निमित्त-कोर-नजल भरे हैं री
 तोहि देखि मेरे हू गोविन्द-मन डोलि उठै ,
 मधना-निगोड़ौ उठै रोप पकरै हैं री ।
 बलि-बलि जाउं शृण-भावु काँ किनोरी तेरी,
 नैकु बघौ मौनि तेरी कहा निगरे है री ।

ऑस और कविगण

घचल-चपल-ललचैहि-दृग मूदि रासि ,
जौ लौं गिरिधारी गिरि नस पै धरें है री ॥
—कोई

इसी भाव को कोई दूसरा—कवि यों अपना कर
है कि —

जाउ जिन या समें तू राधे ? सुनि स्याम पास ,
धार-धार तोहि कर-जोरि करि हारि री ।
भारी-गिरि-भार कर-कठिन लै उठायौ हरि ,
तातर दुरे हैं गाय, गोपिका विचारी री ।
तेरे नैन, तेरे बस नाहि कहीं सौंची मैं,
लाल । ललिचैहैं लसि रूप की उजारी री,
स्वेद-कम्प है है, गिरि गिर है अस्मि आजु ,
लगि है री । कलक, लोग दै हैं तोहि गारी री ॥
—कोई

संस्कृत-साहित्य-सृजेता कवि-कोविद भी इन फरें
को कल्प-कल्प कर कोस रहे हैं । यथा —

रे रे घरदट्ट ? भारोदी क क न भ्रामयन्त्यमू,
कटाक्षवीक्षणदेव कराकृष्टस्य का कथा ।

—सुभार्ति

अरे भाई घरदट्ट अर्थात् चकी !, इन स्त्रियों ने केवल कटाक्षमय
कमलाक्षों से किस किस को नहीं घुमा दिया और फिर हाथ से
हथियाने की क्या हकीकत । इस लिये मत रो भाई, मत रो।
मालुम नहीं इस उक्ति को सुनकर उस जमाने में चक्रीयों चला
पद हुई या नहीं, पर इस समय तो ये मशीनों से चलना और

लिख गयीं। शायद इन्हें अद्भुतता दिखाने को और फोड़ न
 देला, वस चक्री पर ही खुलार उतार कर रह गये।

किसी तरह से समझता नहीं डिले नाशाह,
 वही-रोना, वही-चीखना, वही-फरियाद।

—रोहं शायर

कटाक्ष-शर

लोचन-चंपल कटाच्छ-सर, अनियारे-विष-पूरि,
 मन-मृग धेधै मुनिन के, जग-जन महित निसूरि।

—कृपाराम

लोग-भाग कहते हैं कि, क्या कामनी के कुटिल-कटाक्ष, शर
 (तीर) के समान शूलदायी होने हैं, क्या हृदय को हनन करने
 की हकीकत हमारे हैं, निन्तु उन्हें कवि-जगत की जोस-भरी,
 स सुक के विष-भय-भाग का पताही नहीं कि कमनाय-शामिनी
 के कटाक्ष-शर (याण) अन्य शरों से कितने भयावह होते हैं।
 कितना जुलम गुजारते हैं। शर विचार क्या खाकर इनकी
 नमता करेगा। ये तो कामदेव के भी तीरों को बरबस तरकस में ही
 देने को धाध्य करते हैं। उन की भी हकीकत इन के आगे कुछ
 नहीं। यथा —

कज सकोच गड़े रहैं कीचनु, मीनत धोरि दए दह-नीरन,
 “दास” कहैं मृग हू कौं उदास कै, वास दियौ है अनन्य-भँभीरन।
 आपुस में उपमा उपमेय है, नैननि निन्दति हैं कति-धीरन,
 राजन हू कौं उडाइ द्यौ, हलुके कर दीन्ह अनग के तीरन ॥

—भिखातीदास

मुबारक की मुखरता भी देख लीजिये, कुछ इसी भाव पर।
चचल, चोखेसे, चीकनेसे, चटकारेसे, चौगुने रूप-अभिराम के
साँन-सगेसे, विपान लगेसे, सयान-पगेसे, रँगेसे ललाम के।
माँजे “मुबारक” दै विप-अजन, सीधेसे धींधै हृद-घनस्याम के,
वान चित्तै दग तेरे पियारी, रहे सर काम के, न एकहु काम के।

घाह मुबारक जी, आपने तो दास जी की दूरन्देशी को भी
दरियाये गरक कर दिया। दास जी ने तो अनंग (काम) महा
राज के तीरों को हलके (कुछ उतरे हुये) ही किये थे, पर आपने तो
उन्हें काम का ही न रखा। तभी तो कोई गर्वीली-राजनी
नायिका कह रही है, कि —

भीखम, करन, कृपा, अभिमन्यु, दुयोधन, सौम औ भूरिसना के।
अरजुन, भीम, जुधिष्ठिर, धृष्ट, विराट-बली सहदेव प्रभा के।
सो सर विरथ किए इन नैननि, कहा कहिये निरदर्ई न दया के।
मेरे फटाच्छ, वचै न मूनीम हु, कैमै कहौसर की समता के।
— कोई कवि

फभी नहीं, भला ये ‘शर’ के समता के कैसे हो सकते हैं,
उन में ये खूबी कहाँ जो आप के फटाक्ष शरों में है। इन में ही
अनोखी अद्भुतता है औरों में नहीं। जैसे कि —

घान-येधि सब विधे कौ, रोज करति हैं जाइ,
अद्भुत-घान-फटाच्छ जिहि, मिथ्यौ लगै मँग आइ ॥

—रसलील

देखिये कौसी अजय अद्भुतता है। घान से घेध कर विधे
(अधमी) की सब कोई खबर लेता है, पर फटाक्ष-शर की बिबि

श्रौंय का जटा विश्लेषण कीजिये कि यहाँ मिथा हुआ (जरम खाया हुआ) स्वयं सग (साथ) लगा चला श्रौंय है, यह भी गनीमत है। कवि शम्भु और ही कहते हैं। यथा —

भूत, परेत कौ फेरौ बचै, पै नैनि कौ फेरौ हियो तुरि डारै,
तीर बचै, तरवार बचै अरु सम्भु कौ वान बचै है न्यारै ।
बज्र कौ फेरौ बचै पै बचै, पै प्राण बचै नरसिंघ हुंकारै,
काल कौ फेरौ बचै घडी डैकु, पै बचै नहि नैनि-चितौन के मारै ॥

—कविशम्भु

पियूष-वर्षा-विहारीलाल जी भी कामनी के कटाक्ष शर की यह अद्भुत-शरपना देखकर पूछते हैं कि —

तिय । कित कमनैती पडी, निनु जिहि भौंह-कमान,
चल-चित बेमै चुकति नहि, रक-विलोकन-बान ॥ †

—विहारीलाल

अग्रे तिय ! , ऐसी अपूर्व धनुर्बिद्या तू कहाँ पडी कि यिला
रौंदे गली तो भौंह रूपी कमान और फिर बान, जो भी टेढ़ा, देखना

† रसिकेश जी इस भाग पर यो अपनी रसिकता दिखाते हैं कि —

को गुरु ऐसा प्रथीन मिलरै जिनि, तोहि दई सिंगरी निपुनाई,
परी । यिनो धनु तीर अधीर, करै इहि बैस इती मरिभाई ।
बेधनि है चल चित न चुकति, बर मिलोकनि-बान चलाई,
सौंकी बही "रसिकेश" तिया तू यह कमनैती कइँ पाई आई ॥

ध्यासजी की यहादुरी भी देखिये । यथा —

बध विलोकन-बान, पंचि धौं कव बरसावति,
करति अभमारे जीय, पिय हि पुनि पुनि तरसावति ।
मारि जियावति पुनि मारति बस करन पीय जिय,
"सुकवि" बौंन स गुरु निरुट इहि रीत पडी तिय ॥

भी टेढ़ा, तिस पर लक्ष्य क्या कि चचल चित्त—निमित्त-मात्र भी जिसकी गति नहीं रुकती, ससार-भर के चचल पदार्थ जिसके सामने पगु हैं। तिस पर भी धार खाली न जाय—जरा भी न चूक, बेकरार दिल मिथ ही जाय, घाह अनोखी-कमनैती पढ़ी है।

संस्कृत साहित्य के सरस-सुमन अमरक जी को इसी भाव पर अपूर्व उक्ति है। आप कहते हैं कि —

मुग्धे । धातुष्कता केयमपूर्वात्वयि दृश्यते,
यया विध्यमि चेत्तासि, गुणै रैव न सायकै ।

—अमरशतक

मुग्धे ! तुझे यह कैसी अपूर्व धनुर्विद्या आती है कि जो गुण (डोरी) से ही (चचल चित्त को) बेध लेती है, बाणों से नहीं।

यद्यपि अमरकजी ने सब कुछ कहा—संस्कृत-साहित्य का यह अनूठा अलंकार है, पर “तिय कित कमनैती” का कुछ मजा ही निपला है—यह फाट ही कुछ और है।

✓ ऑरों क्या है, मोहनी हैं, सेह हैं, ऐजाज हैं

इक-निगाहे-लुक में, सारा गिला जाता रहा।

—कोई शायर

एक और धानगी देखिये। यथा —

हत्वा लोचन-विशिरै गत्वा कतिचित्पटानि पद्मार्त्ता ,

जोवति युवा न वा किं भूयो-भूयो विलोकयति । †

—सुभाषित

† इसी भाव से मिलता एक उर्दू-शायर का शेर देखिये यथा—

अँलि धुराने वाले, जरा मुँके देख तो ,

ये कौन कुन्तये निगह यार हो गया।

—कोई शायर

वह पद्माक्षी (कमल समान नेत्र वाली) लोचन-वाण मार कर और जरा आगे बढ़ कर धार-धार पीछे फिर कर देखती है कि (वह) युवा जीता है वा नहीं, जिस पर कि मेरे ये प्रबल-प्रहार हुए हैं।

उक्त आर्या भी लाजगाव है, भाव भी भूरि भूरि प्रशस्तनीय है। पर भाषा-साहित्य की कुछ सृक्तियों निराली ही अर्द्ध से अलक्ष्य हैं। देखिये कुछ इसी भाव पर कैसी अनोखी-उक्ति है कि सुन कर दिल भी दिल में मचलने लग जाय। यथा —

श्रमी, हला-हल, मद-भरे, सेत, स्याम, रतनार,
नियति, मरति, मुक्ति-मुक्ति परति, जिहि चितवति इकरार। ‡

रसिक-हृदयो !, देखी आपने कविता-कामिनी-कान्त कवि-
कोविदों की मयुर-वास्य रचना। वाह जी "रसलीन" क्या
त्रिगुणात्मक तीर मारा है—कुछ कहना है। सफेद, श्याम और
—रसलीन

‡ इस भाव पर भी परु कवि की कल्पना देखिये यथा —
लोचन अनूप होने लगति सु होय अति, सेत भर स्याम, रतनारे मुख दें ते,
अमृत, हरा हल और मद सौ भरे हैं खरे, रसिक विहारी बिलमात गुन सैन ते,
वह मधुरार्ह, करुभार्ह और तिखाइ घनो "रसिक" सुजान जन जानें मति षंन ते,
जीवति, मरति, मुक्ति मुक्ति के परति सोती, चितवति जाहि इकरार भरि नैन ते ॥
—रसिक

इसी निशाने पर किसी परु उर्दू शायर ने भी अच्छा तीर
मारा है। यथा —

आँखों में मोत हस्तियों, मस्तीका लुफ है,
सामों है जहरो आवे हयाती शराय का।

रतनार को अमृत, जहर और मद से समानता देकर रस-ग्रसाया है—जो अमृत सिंचन किया है, वह आप जैसे रसज्ञों का ही कार्य था, औरों का नहीं।

मद-भरे नैनों पर, एक पद प्रेम पीयूष के प्रबल पिवैया
नागरीदास (किशन-गढ नरेश) जी का बडा ही अपूर्व है। यथा

मद-भरी, आँखियाँ लाल । तिहारी ।

तिन सौँ तकि-तकि तीर चलावति, वेधति छतियाँ आँनि हमारी ।

❀

❀

❀

❀

❀

❀

उर्दू साहित्य के सुरसिक शायरों ने भी मद भरी आँखों बहुत कुछ कहा है, बल्कि आवे हयाती शराब से भी माशक चुलतुली-चश्मों को बहुत कुछ बडा-बडा कर माना है। यथा—

देखा किया वो मस्त-निगाहो से धार-धार,
जब तक कि जाम आये, कई दौर हो गये ॥

सौदा का शरर भी देखने लायक है। यथा—

कैफियते-चरम उसकी मुझे याद है सौदा,
सागर को मेरे हाथ से लीजो कि चला मैं ॥

—सं।

पंडित पद्मसिंह जी ने एक निहायत ही नुकीला किसी शायर का कहा हुआ हारिद्वार में एक शेर कहा था, उसे देने का लोभ सपरण न कर सके। यथा—

उमकी कुत्त देखात हूँ तेरी आँखें देगसर,
दो-पियालों में भरी है, कैसे लागो-मन शराब ।

तत्रशयुक साहय का तराना भी कुछ-कुछ इसी सर-जमीन से
मिला-जुला सा है। यथा —

हमने देखीं हैं किमी शोर की मस्ती-भरी-आँसों,
मिलती जुलती है (बहुत) छलकते हुए पैमाने से।

कुटिल कटाक्ष-शर

—तभनशुक

लागत कुटिल-कटाक्ष-सर, क्या न हैइ बेहाल,
कदति जुहियौ दुसार करि, तऊ रहति नट साल।

—बिहारी लाल

कुटिल-कटाक्ष शर अर्थात् तिरछी-चितवन की तिलस्माती
तासीर और भी भया वह होती है। इसका दुखद दुःख, दीन-
दुनिया का भी नहीं रहने देता। पीर, पिराया ही करती है।
अधीरता अधिकार किये ही रहती है। देखिये तिरछी-चितवन के
चोट खाये हुए "घन-आँनद" जी क्या सुरस रस को बरसवाने
की लीं लगाये कह रहे हैं कि —

रमहि पिवाइ प्यासे-प्राणन जिवाइ राखैं

लाज सौं लपेटि लसैं उघर हितौन की,

निपट नवेली, नेह भेली, लाड-अलयेली,

मोहैं-मन डारी भरी विरह हितौन की।

लौनै-लौनै कौनै छवै छविली अँरियौन सौं,

सु रचको न चूकै घाव औसर नितौन की,

परी- "घन-आँनद" बरस मेरी जान तेरी,

दियौ मुख-साँच गति तिरछी-चितौन की ॥

—पद भूँ

आँस और कविगण

तिरछी चितवन की तीरन्दाजी पर "नासिख" का भरा निनाद भी क्या सुन्दर है--साइस्तगी का कैसा सिंहावलोकन हे। यथा —

तिरछी नजरों से न देखो, आशिके दिलगीर को,
कैसे तीरन्दाज हों सीधा तो करलो तीर को।

आतिश भी इसी अन्दाज पर तडफडा कर चिल्ला कि —

तिरछी नजर से तायरे-दिल हो चुका शिकार,
जब तीर ही कज पडेगा, तो देगा निशाना क्या।

तीसरे भी (तिरछे ही) तीरे-नजर के मजरूह यूँ फर्माने कि —

खता करते हैं टेढे-तीर यह कहने की बातें हैं,
वो देखे तिरछी-नजरों से ये सीधे दिल पै आते हैं।

—फौई

तीसरे तीरे नजर के मजरूह की तीरन्दाजी तो देख ही है
अब जरा कुछ इसी भाव पर रसनधि जी का रस भी चाखिए
यथा —

भौंह कुटिल, घरुनी कुटिल, नैनहुँ कुटिल दिखात,
घेघन फौं नेही हियौ, क्या सूधे है जात।

—रसनिधि

न मालूम क्या बात है, जब सब कुछ कुटिल है, तो पि
सीधेपन की साधना कैसी ? , कुछ आप ही घतायें तो घतायें
किन्तु यलमद्रजी कुछ और ही यहादुरी दिखा कर कहते हैं कि-

नैंकु ही निहारें नैंनि, नाइका नवेली नव,
 मुनित के मन, मन-सिज सौं तनोति हें,
 बिन हीं कटाच्छ काटै लाज कौ कवच-वरु,
 काजर नए तैं फरैं काम कौ उदोति हें ।
 जो हें अविहार मो विकार करै औरनु कौ,
 छाँडैं ना कुलीन-भाव जैसेँ जस गोति हें,
 घाँकी-चितवन तैं करैगी कहा "बलभद्र"
 सुधी-चितवन तैं असाधू साधू होति हें ॥

— बलभद्र

टीक है बलभद्रजी, टीक है--हों जब सीधी चितवन से ही
 असाधू, साधूहो जायें तब तिरछे-तीरों की क्या जरूरत ।
 कुछ ऐसे ही मजमून को अकबर साहय-अकर्मवादी यूँ
 अपना कर कहते हैं । यथा —

जमाना हो गया विस्मिल तेरी सीधी-निगाहों से,
 खुदा ना खास्ता तिरछी नजर होती तो क्या होता ।

— अकबर

तलवार

उनकी नजरें क्या फिरीं, खजर गले पर फिर गया,
 देखते ही देखते तलवार आरें हो गई ।

— विस्मिल

चितवन-तलवार की तूती भी तरहदार तथीयतों को तरफत
 रही है । अपना जोम भए जौहर जाहिर कर रही है । यथा —

आँख और कविगण

भृकुटी कुटिल राजै मूठसी निराजै वरु ,
पलक-भियान पुज-पानिप रसाल हैं,
कज्जल-कलित दोऊ कोर मैं दुघार-घार ,
डोरे-रत्तनारे जेव जौहर के जाल हैं।
“गोकुल” विलोकिनिज-नाह के सनेह सर्नी ,
स्वच्छ है कटाच्छ काट करत कराल हैं।
कमनीय-कामिनी के रमनीय नैनि किधौं ,
कामिन के मारिबे कौं काम करवाल हैं ॥

कविपर दाग की भी इसी भावपर दिलचस्प दाद
यथा —

निगाहे तेज मे उसकी, चमक जाती है बिजली सी ,
इलाही सैर हो तलवार मे, तलवार वैसी है।

तेगा

तेगा तिय-दृग रिप-भरे, पानिप ढार सुकाट ,
अजन-बाढ सु दए रिनु, करति चौगुनीं काट । †

† रसनिधि जी ने नैन-सरस्त्री पर भी एक दोहा कहा है
यथा —

बैस मन धन छूटते, भाग्यन्ता के नैन ,
मन-मथ जो दतो नई, इन कर परटी-सैन ।

छुरी

मीन रज तैं वदी हैं, सोभा-सिन्धु तैं वदी हैं ,
 भौं हैं भाव सौ चढी हैं ज्यौ फमान फाम वस फी ,
 जादू की पुडी हैं, किधौ मदन-जुडी हैं ,
 हला-हल तैं बुडी हैं, कै भरी हैं सुधा-रम फी ।
 मन्न की कडी हैं, प्रेम जाल की लडी हैं ,
 कै विरच की छडी हैं, कै जडी हैं रथाम सस को ,
 नेह अँकुरी हैं, किधौ पद्म-पखुरी हैं ,
 यह आँस वपुरी हैं, कै छुरी हैं हाथरम की ॥
 —गोइ आधुनिक कवि

कटारी

मत चलाउ मो सामुहें, इन को पैनी-वार ,
 नजर-कटारी-बँकुरी, पल-म्यानै करि यार ।
 ---रसनिधि
 हरत मरम-दुरत, करत परम-सुख,
 पान परिहित करें अति अनियारी हैं ,
 “श्रीपति” सुकवि भनैं सोहत सहस छवि,
 विरहा-तिमिर रनि कज्जल तैं कारी हैं ।
 जेहर की जेठ जगमगत अनूप करि-
 जतन अनेक कमलासन सँवारी हैं ,
 रूप-गुनगारी, जम जिया की जियारी,
 प्यारी अँखियाँ तिहारी किधौ काम की कटारी हैं ॥
 ---श्रीपति

ऑख और कविगण

जोती कवि की जुगत भी (कटारी पर) जाँच
यथा —

पद्म-पत्र चारी, सोभा सान की सँनारी,
आखी सिकल सौँ सुढारी, किधौँ काम-धरकारी।
सुरमाँ सौ सुधारी जामै वाढ धरी न्यारी,
न्यारी पानिप सँनारी जिलै मिथ की उजारी।
“जोती कवि” न्यारी छिन उपमा विचारी तीनै
गुन की सुरारी मीन-मान गज डारी।
नैकु जो निहारी, हिय माँहि गहि मारी प्यारी
चितवनि विहारी किधौँ बूँदी की कटारी।
—जोती कवि (६)

बन्दूक

प्रथमहि दारु साइकै, पीछै गोली सॉइ,
चितवनि चारु बन्दूक ए, चोटहि चूकत नॉइ।

श्वेत, श्याम, रतनार

नैन-कज सकाटच्छिन नहिँ मकरन्द,
स्याम, सेत, रतनारे, करति अनन्द।

—लेखराज

आँखों में इन त्रिगुणात्मक तीन-रंग की स्याभायिक
प्रधानता है। सेत, स्याम, और ललित-ललँही के लोचन,

श्रॉंख और कविगण

हैं। श्रॉंखों के इन त्रिगुण रूपी रगों पर, कवियों ने उँची-उडानें उड़ी हैं—खोज-खोज कर खोज की खूबियाँ खिस्ताईं प्रस्तु इन त्रिगुणात्मक-रगों से रजित धिबेणी (गगा, जमना, घती) तीर्थ में स्नान कर भिन्न होइये और कवि करपना को हेये । यथा —

उज्जल-प्रवाह तट गग कौ बिलोकियतु,
 मानौ लाल-डोरी सरसुति सुख-दैनी हैं,
 पूतरी पलक-बीच काजर मलक जामें,
 जमना जगत जम-त्रास हर लैनी हैं ।
 तैकु ही निहारे तैं कोटि तन पाप कटै,
 मजन किए तै सुरगन सुख दैनी हैं,
 एरी मेरी-प्यारी ? मैं तीर्थ न जानौ कइ,
 प्यारी तेरे-दृगन बीच प्रगट त्रिपैनी हैं ॥

—रसिक कवि

इसी भाव पर “द्विज देव जू” यों अपना दुनियाधी चित्र
 तै हैं । यथा —

उज्जलता धवल-धार मोभा अपार-वार,
 गङ्ग की तरल-तरंग मुक्ति की निलैनीं हैं,
 कालिन्दी-कालिमा कलि-मल हरन-हारि,
 तारन-तरन तनु-ताप हर लैनी हैं ।
 लाल-लाल डोरे लरगत बाल-लोयन में,
 पुन की पताका सी सरसुति सुख दैनीं हैं,
 कहैं “द्विज देव” छनि कहां लौ बरान करौ,
 प्यारी के दृगन बीच प्रगट त्रिपैनी हैं ॥

—द्विजदेव

आँखें और कविगण

कवि लच्छीरामजी की लेखनी की लीला भी लखिये ।
 सादर-सुरग-डोरे प्रसद-प्रभा है गग ,
 जमुना-तरंग पूतरी ज्यौ विलसत हैं,
 "लछीराम" देवी-देव, वरनै बिरद-ब्रज ,
 परम-प्रधाने मोदरासि हुलसत हैं ।
 मञ्जन मकर एकु वासरै सुफल होत ,
 वारहौ-महीना इन्हें देखै फुलसत हैं,
 सगम-सुहाग, भाग-परम-प्रयाग प्यारी ,
 तेरे नैन-जुगल त्रिपैनी से लसत हैं ॥

हरलालजी के हुलसाप हृदय के हाव भी हुजूर में
 किये जाते हैं । यथा —
 अमल अमोल कौल कलित सुखेत सोहैं ,
 सुरसरि-आरि स्वच्छ सोभित उमग हैं,
 स्याम-मन रजन टिपाँजन दिपत दिव्य ,
 सोही जल जटयौ जमुना कौ परसग हैं ।
 ललित-लकीर-लाल तामैं दरसात वर ,
 अमित उदार-धार भारती अभाग हैं,
 "कवि हरलाल" अदमुत पैन जानौ मैन ,
 राधिका के नैन में त्रिपैनी की तरंग हैं ॥

एक और भी, यथा —

सेतवारै गग मी मुहारै म्यच्छ दीमतु है ,
 स्यामता कनिन्दो-घार राजै सुधि हरे हैं ,

होरे-नाल अतिही रसाल हैं गिरासे खासे ,
 जाके लखै पातक न आवै भूलि नेरे हैं ।
 मजन करत कान्ह दीठ है सदाई जामैं ,
 “रसिक” नमीन होत चित्त ही सौ चरे हैं ,
 तीन-गुन गहव गहीले औ रँगीले वरु ,
 प्रगट विनैनी से तिया ए नैन तेरे हैं ॥

—रसिक (नवीन)

देखा आपने, इन त्रिगुणात्मक-सेत, श्याम, रतनार से रजित
 एणिय आँखों का—ग्रनोखा वर्णन । सत्व, तम, और रजोगुण
 । केसा सुरम्य सभिश्रण हैं—त्रय ताप हारिणी त्रिवेणी का
 लना रहित कैसा तीर्थराज है । घाह —

आलम हैं अनैरा आँसों का, दुनियाँ हैं निराली नजरों की,
 —कोई कवि

एक दूसरे कवि कला निधि इन तीनों-रगों से रँगी चचिद,
 आँखों में फाग की फयन को फगते हैं । जैसे कि —

अमित, सेत, लोहित ललित चोवा, अविर, गुलाल ,
 पिचका-कुटिल-कटान्ध सौ, नैननि माच्यौ ख्याल ।
 —कोई कवि

आँस का काजल ही चोवा है, सुन्दर श्वेतताई ही अरीर है
 और ललित-लुनाई ही गुलाल है, अस्तु, कुटिल-कटावों से नेत्र—
 हाराज फाग सा मचा रहे हैं ।

गाथा सप्तसतीकार भी सेत, श्याम, रतनार पर क्या ही
 गीरथ से गुनित एक गाथा गढ़ते हैं । यथा—

अण्णाण विहोन्ति मुद्दे पद्मन धवालाह दीहकसणाह ,
 एअणाह सुन्दरीणा तह विहु दट्टु ए जाणन्ति ।

अर्थात् —

अन्यासामपि भवन्ति मुखे पक्ष्मल धवलानि दीर्घं कृष्णाणि,
नयनानि सुन्दरीणा तथापि सद्यु दृष्टु न जानन्ति।

और और सुन्दरियों के मुख पर भी तेरे-समान
घाली सेत, श्याम, रतनार-रगसे रजित थड़ी-थड़ी-आँखें हैं,
वे तेरे समान देखना नहीं जानतीं। क्योंकि —

यह चितवनि औरै कष्ट, जिहि बस होत सुजान।†

त्रिगुणात्मक सेत, श्याम, रतनार का रहस्य तो
रंजन कर ही रहा है, किन्तु किसी कवि की सेत,
कैसी सपहनीय सुमधुर-सूक्त है कि घाह । यथा —
श्याम सित च सुदृशो सुस्वरूप, किन्तुस्फुट गरलमेतदधामृत च
नोचेत्कथ निपतनादनयोस्तदैव मोह, मुद च नितरादधते पुवान्।

इस मृग नयनी के नेत्रों में जो यह काजल का कालपा
सुधवल सफेदी है, वह घास्तव में कलौड़ी व सफेदी
किन्तु जहर और अमृत है। अगर कोई कहे कि

† शायद कत्रिकुल शिरोमणि विहारीलाल ने ऊपर
को लक्ष करके ही उक्त-दोहा लिखा है, पर उक्त दोहा
ढकेल कर कितना ऊपर चढ़ गया है, यह सहृदय-रसिकजन ही
जान सकते हैं।

अनियारे, दीर्घ, धवल, किती न चतुर जहाँन,
यह चितवनि औरै कष्ट, जिहि बस होत सुजान।

मृत नहीं, हे तो उनके किंचिन्मात्र-देखने से नच-युवक क्यों तवाले हो जाते हैं। इससे जान पड़ता है कि उस (सलोनी यिका) की ऑरों में जो काजल है, वह मत्तकर मारने वाला हर है और उसकी ऑरों में जो सफेदी है घर्षी सचमुच श्रमृत जिसके क्षणिक श्रमलोकन से मरना, जीना और आनन्द में मृते लगाना सब साध्य है।

कोई उर्दू-कवि भी इन दोनों-रगों पर, सस्कृत-सूक्ति के समान पर ही कैसी अनोखी उक्ति कहता है। यथा —

आफत की सफेदी थी, कयामत की शियाही,
नौरग दो आलम मुझे, दिखला गई आरे।

—फोइ शायर

श्वेत,

ऑरों में जो सफेदी है, वह कवि-कलानिधियों को कैसी हगी और उस पर कैसी मनोरम-उत्प्रेक्षा श्रलक्षत की हैं, कि चाह।
यथा —

धिनो-फुल्लेन-बुचाति गरी, पट भीनति-मोम ते रूप श्रन्यैयतु,
श्रानन-शीर गरें-धर-पोत सौ, या छपि कै लरि कै ललिचैयतु।
बह" भनै सप छोरि कै काहे न, प्यारी के रूप कै देखन जैयतु,
फानन सौ तौ कटान्द लगे, कलधौत-कटोरन दूध अचैयतु ॥
—मह (मीरबल)

ऑरों में सफेदी क्या है, मानों सुवर्ण के कटोर में दूध भरना ही है। कहिये है न उत्तम-उत्प्रेक्षा, धन्य दल-देव

ध
।

श्याम, †

यौ छवि पावत हैं लखौ, अँजन-अँजे- नैनु,
सरस-वाढ सैफन धरी, जनु मिन्लीगर-सैनु।

कवि ससार में कज्जल-कलित कमलादों का कुछ ही निगला है—अदों ही अनाँखा है। इस पर कवियों ने निमाल निकाल कर रख दिये हैं। देखिये न —

जिय-रजन रजन-रजन, अजन दियौ बनाइ,
मनहुँ सॉन फेरी मदन, जुगल-वान निज लाइ।

जिय को रजन (प्रसन्न) करने वाले, खजन समान अजन ऐसा बना कर (सम्हाल कर) दिया है, मारों मदन-महोदय ने अपने याणों को स्वय ही शान से फिया हो। घाह खून शान रखी जो श्रीरों की शान विगाडने

कोई कवि काजल लगाती हुई कलधौत-कलिका सी को कैसा मीठा उलहना दे रहा है। यथा —

साइ हलाहल, औरनु मारनु, आली अचभव बात करी
नैकु दया जिय में धरि री, इहि तेरेई ऊपर पाप परार

† कोई-कोई महानुभाव सेत, श्याम, रतनार में श्याम की "पुतली" से सयुक्त करते हैं, पर हमारी समझ में पुतली की काजल ही उचित प्रतीत होता है। इस लिये पहिले हम काजल ही वर्णन करते हैं। विश पाठक क्षमा करें। भूल-चूक ऐनी देती।

हिक अजन देति सँवारि, सवै उरसालति साल सरौ री ,
 ते वचिगौ कहि कोर-कटीलेनु, क्यों पुनि नैननि वाढ धरी री ॥†
 —मोई कवि

जब कटीली कुटिल-कोरों को देख कर ही कोई न बचा, तब
 काजल रूपी कमलाक्षी पर, याद धरने की क्या जरूरत ?
 योंकि —

एकू तौ नैना-मद-भरे, दूजै अजन-सार ,
 धूमि धावरी देति को, मद-मौतिनु हथियार ।

—मोई कवि

सस्कृत का भी कोई सुकवि इसी भाव के सदृश अपनी सरस
 कविता कहता है । यथा —

लोचने हरिण-गर्भ मोचने, माकृशाङ्गि कजलेन रञ्जय ।
 सायक सपदि प्राण हारक, किं पुनर्गारलेन लेपित ॥

—कश्चित् कवि

अर्थात्—अरी कृशाङ्गी !, इन अपने हरिणों के भी गर्भों को
 मारने वाले इन गुनन गल्ले लोचनों को जहर रूपी काजल
 न रग, क्योंकि जब नजर रूपी धाण बिना काजल के ही प्राण
 लेने को परियाप्त है, फिर जहर (काजल) का लेप करने की क्या
 जरूरत ।

यह सब कुछ है पर शिवनाथ जी कुछ और ही शोर मचाते
 , ये अपने दिल की दाद दूसरी ही देते हैं । यथा —

† इसी भाव को रसलीन जी यों अपनाते हुए कहते हैं कि —
 'रे मन, ! रोति बिचित्र इहि, तिय नैनुनि को चेत , /-
 विष-काजर निज खाइ कै, जिय भौरन को रेत ।

आँस और कविगण

श्रजन-कोरि दृगचल राजति वै मुनि नैसुक आँस
कै दुमुहां इहि नागिन सी "मिवनाथ" भनै रसना तिलमी वै
चन्दहि चाँहि चढा चुचकारि, कपोलन-कूल अमी-रस
देसति ही त्रिप धाइ गयो उर, काटै जुपै वहाँ वैसै कै जाँ

भला इस के काटे का क्या पता, क्योंकि जब काजल-का
फोरों को जरा सा हा देनने से त्रिप सा घगर जाता है, कि,
कुटिलों के काट की कहानी छोडो, पर घाह जी शिवनाथ—
चन्दहि चाँहि चढा चुचकारि, कपोलन-कूल अमी-रस

—मैं क्या सरस-रस सरसाया है, चन्द्र की चुचकार
(पुचकार) कर कपोलों के कूल (किनारे) से क्या अमी रस पिया
है, घाह ।

उर्दू साहित्य के प्रसिद्ध कवि जान साहब का उनू^न
जोर जप मुलाहिजा फर्मा कर, उनकी घयाने शर्दगी
सलाम कीजिये । यथा —

आँस लडते ही, होगयी आशिक,
मोहनी थी मुए के काजल—मै ।

घाहरे काले-कलूटे काजल और तेरी भुवन मोहनी
शक्ति ? , सहस्रों घार साष्टाङ्ग-सलाम हे ।

श्रीनिधिजी की सरस सूक्ति सुनिये । यथा —

यौं कानन के तार, नैन-कोर-कजल-कलित,
कदा कलक-लरीर, "श्रीनिधि" मोती चन्द त्रिब ।

अर्थात् कानों के पास (तीर) तक घे काजल-कलित-मलाहों की कोरें ऐसी मालुम देती ह, कि मानों चन्द्रमा के बीच लङ्का की लकीर खीची हो ।

कहिये, कितनी सरस सूकि हे, कितना विदग्धता भरा एन है कि कुछ कहते नहीं बनता । श्रोर भी लो —

अजन होइ न लसति तो ढिंग नैन विसाल ,
पहिराई जनु मदन-गुरु, स्याम-वन्दनी-भाल ।

—सनिधि

तरे ये विशाल दृग, काजल से शोभा नहीं पा रहे ह, किन्तु मदन-गुरु ने अपने नैन रूपी चेलों को यह काजल रूपी काली-हएत्री पहनायी है—तजर न लगने का निरूपण किया है । अर्थात् देठाना लगाया है ।

रस निधि जी की रसना इस थोड़े से रस से परितृप्त न हुई, तो पुन इस सुरस का रस लेते हुये बोले कि —

दीन हीन नैहान कौं, रौदि न करै अचैन ,
अजन-श्रॉदू भर दिण, दृग-भाज-माँते नैन ।

—सनिधि

कहाँ, दीन हीन नेहियों को रोद (रूद) कर अचैन न करे, इस लिये नैन रूपी मदमाते हाथियों को अजन श्रॉदू (एक प्रकार का कडा जो कि हाथी के पैर में डाला जाता है जिससे वह चल नहीं सकता) काजल रूपी वेडियों डाल दी हैं ।

खूब किया, पर इन निठुर-नेत्रों की निठुराई तो देखो कि काजल रूपी वेडियों से अलकृत होने पर भी लाखों को अपने लीला हाव से कुचल ही तो डाला ।

आँस और कविगण

रह गये लारों कलेजा थाम-कर,
आँस जिस जानिघ, तुमारी उठ गई।

चित-चोर, कज्जल-कलित-कोर का शोर यहाँ तक
से चला कि बूढ़े-बाबा बलभद्र जी को भी अपनी ७।
याद आ गयी और बोले कि —

कँचन के पिजरा परे रजत तलफात किधौ,
बाँधे जुग-भीन नाग-फाँस सौ मदन ७।
काम के कमारन मैं फूलनि की कूनिका कि,
त्रायुप-तिलक सिंगार के सदन ७।
त्रिमिप-मुलिन्द-मैत माँजे हैं प्रदीपन सौ,
“बलभद्र” मुनिन हूँ के मन के हरन ७।
काजर की रेस अथरेस लोचननि मैं मनौ,
कोन्दै चित-चोरन के मेचक बदन ७॥

आँसों में काजल क्या है, मानों चित चुराने में चतुर
(आँसों) को, चोरी की सजा में प्रेमियों के फूल त्रैच से (उतरे
चारों तरफ फालिख पोती गयी है—अर्थात् उन (चोरी)
काल-मुँह किया गया है।

क्या रूय । कैसी सुन्दर सजा दी गयी । पधन सुत की हँ
में ही आग लगा दी । अथ लगा-लगी की लड्डा में रौर का
इसके के दीवानों में छुहराम मच जायगा । आशियों के मनो
मन्दिर को ऊँची ऊँची अट्टालिकाएँ, काजल से कलित आँस
की आग से उहड़हा कर दह पड़ेंगी । चलो छुट्टी हुई ।

कोई कवि, काजल लगाती हुई किसी रसीली-रमणी को देख कर क्या ही उत्तम-उत्प्रेक्षा उपजाते हैं कि —

प्रान-पियारी ! सिंगार सँवारि, लए कर आरमी रूप निहारै,
चद से आनन की दुति देखि, सु पूरि रही उर-आँनद भारै ।
अजन-पोर सौ लै रमनी, दग आँजति यौं उपमान विचारै,
चौर के चौच-चकोरन कौं मनौ चौप तै चन्द चुगावति चारै ॥

—कोई कवि

अर्थात् चन्द्र-देवता, शीरु से अपने प्रेमी-चकोरों की चोंच चीर कर चारा (खाने को) चुगा (खिला) रहा है ।

घाह , कितनी सरस-सूत्रित है, कितनी उत्तम-उत्प्रेक्षा है ।
चौर के चौच चकोरन कौं, मनौ चौप तै चन्द चुगावति चारै ।

गुनन-गरुले कविवर गग जी मेंहदी से मुकुलित मृदु-मालती-रत्न के समान कर-कमल द्वारा काजल लगाती हुई किसी कामनी पर कैसी अनुपम उपमा उपजाते हैं कि घाह, अस्तु आप कहते हैं कि —

सुन्दरी ! साजि-सिंगार सुधारति सौति के गरवहि गजन कौ,
“गग” लहैं कर-सार सुतौ, मन-मौहन के मन-रजन कौ ।
काजर चारु दिऐं अँगुरी, तिन में महदी-रँग अजन कौ,
(वह) ऐसी जर्बी हिय में उपमा, मनौ गुज चुगावति रजन कौ ॥ ‡

—गग

‡ मनोहारिणी-मेंहदी से मुकुलित युगल-कर पर जनाय जौरु साहब का एक 'शेर' याद आ गया जिसमें आपने अपने-हृदय-गत भाव से कैसा कमाल किया है कि घाह । देखिये न —

ऑँत और कविगण

आलम सु कवि भी इस घटना को जल फेर के साथ अर्द्धा से अरुद्धत कर अनूठा आनन्द उलीचने हुए कहते हैं कि गुण-रूप निधान मुजान-यधु, हित प्यारी प्रिया मधु-गजन का कवि "आलम" पूरन-काम समीप, सु देह द्विपै हुति मजन का कर-पह्य, कजन से दृग छोरि, सु रेस रचै पति अजन का लिखनी-दल-मजुल-कज की भैन लै, चचु सँवारति रजन की

कोई केलि-कला चतुर-चूडामणि नायक, अपनी गुण और रूप की निधान मुजान प्रिया के कज से दृगों को, कर पल्लव से तनिक चीर कर अजन आँज रहा है। इसपर आलम कवि कहते हैं कि मानों काम-कारीगर कज्ज दल की कलम से, खजनकी चोंच सँभाल रहा है। काजल क्या लगा है, गोया खजन की चोंच अच्छी तरह से बना रहे हैं।

धन्य है आलम कवि तुमको और तुम्हारी दृष्टिको। सरस मौन्दर्य का सजीव चित्र चित्रित किया है घाह

पजये महर को खूने शफकी में हर रोज,
गोते क्या क्या तेरा दस्ते हिनाई देता। —जीक
अर्थात्—तेरे मेंहदी लगे लाल लाल हाथ, हमारा ही करते हों यह बात नहीं, अरे उसकी लाली को देख कर सुउह शाम खूने समन्दर (लाल समुद्र) से गोते खा-खा कर निकल है, पर (घह) तेरे हाथों की लाली नहीं पाता—नहीं पाता फिर भाया वह लो निगारे-खनी, इधर को सर गर्म-जग हो कर, कि जिसके हाथों से उड़ गये सर हजारो मेंहदी का रंग होकर।
मल के मेंहदी दस्त में, दरिया में नहाया न करो, *
भाग पानी में मेरी जाँ लगाया न करो।

एक अज्ञात कवि की और भी अनोखी उपमा के अलौकिक
मानन्द का अनुभव किजिये । यथा -

न-मौहनी सूरत राधिका की लसि, मौहन के मन प्रेम पग्यौ,
हुँ थोर तै पैली है चन्द्रिकामी, मुख की छवि नद-कुमार रंग्यौ ।
हुँ नैननि बीच में काजर-रेनु, विराजत रूप-अनूप जग्यौ,
त्रि कौ तजि चद्र सौ नेह कियौ, अरविन्दन मानौ कलक लग्यौ ॥
—मोह कवि

—अर्थात् अरविन्द यानी कमलोंनि रसि (सूर्य) को त्यागकर
मौहनी से जो नेह किया है, उसी का मानो यह काजल रूपी
कलक लगा है ।

रसनिधि जी की रसना फिर भी न मानी और एक अनूठा
आलाप अलापती बोली कि -

रूप ठगौरी डारि कै, मौहन गौ चित-चोर,
अजन भिसि जनु नैनि ए, पीयति हला-हल घोर । ‡

—रसनिधि

चाहे जिस उपमा का आलाप अलापिये पर कजल-कलित
मलाहों की समता पा नहीं सकते । यथा -

समता कहौ कैसेहुँ भौरि परै, कवहुँ कुमदामल रजन तै,
अलि जाचक है कै मके मरिकै, उन कजन के मद-भजन तै ।
“द्विज देव” कुरग मकै समुहाइ, लला मन-मजुल रजन तै,
जव प्यारी सुधारति सूधे सुभाइन, मोह-मई टग अंजन तै ॥
—द्विज देव

‡ कुछ ऐसे ही भाव पर रसलीन जी भी कहते हैं कि -

—रे मन ! रीत विचित्र यह, तिय नैननि की घेत ;
बिप राजर निज साइ कै, जिय औरत की छेत ।

आँस और कविगण

शेखर जी की सखावत का शरर भी सारे सुहृद्यों
मणि हो रहा है। जैसे कि —

कैधौ चढ-मडल में रेलें सजरीट खूब,
सीत कौ प्रसग अग-अग विप धारे हैं।

कैधौ रचे जोवन-नरेस-मन रजवे कौं,
सेत-रग बारे रम-राज के अतारे हैं।

कैधौ सौति-गन के सुहाग चरिबे कौ तम,
“सेरर” कै कामदेव आसन निहारे हैं ॥

कैधौ रही लगि मजु कजन में लाज किधौ
कामिनी के आज नैनि अजन सुधारे हैं ॥

यह तो है ही, पर अञ्जन से अलकृत आँसों की अञ्ज
निरञ्जन भी सय कुछ छोड इन्ही को मन रञ्जन का मना
है, औरों की क्या विन्नात । यथा —

मान कमीन करे दिन में, सु कुरगन के उर वान सौ खोदौ
चचतावा की कमी न रहै कछु, सजन तँ अँरियाँ-जुग सौदौ
रूप इते पर क्या इतराइन, कौतुक सौ अपनौ चित टोदौ
सजन गज विचारे कहा भट्ट ? , अजन देखि निरजन माहौ

काजर से काली कमगलों की कजरी-योरे भी
में कुछ कमकमर नहीं रखतीं, कले-कोकोच (छेद) नेमक
करती हैं। यथा —

फिर-फिर दौरत देखियतु, निचले नैकु रहँन,
ए कजरारे कौन पै, करति कजा की नैन । †

—विहारी

देखो, बार-बार (फिर फिर कर) देखते ह—जरा भी निचले
(थिर) नहाँ रहते आह , किस गरीब पर गजब
र रहे हैं ।

रसिक-कवि की रसना भी इसी रस की रसिकनी बनकर
श्री-आजिजी के साथ पूछ रही है कि —

छिपति छिपाए ना छिपै, छहर छवीले छैन,
ए कजरारे कौन पै, करति कजा की नैन ।

—रसिक

श्रीमान् रसिक-कवि जी, क्यों इस दुसह रस पर रपट रहे
मला ये कजाकी से भरे कजरारे-कमलाच कब कुछ कहेंगे ।
कुछ कजाकी से बाज थोडे ही आना है । पर रसिक-कवि भी
मानने वाले ह । आप फिर फर्माते ह कि —

सोभित सम्भारे, सने सुखमा, समूल सुख,
सरस-रसीले सरसीले, सेल-सोरदार,
चचल चलाऊ चारु चौपन चटक भरे,
चौकति चमकै चलै चतुर-चित चोरदार ।

† क्यास जी का जडाच भी जरूर देखिये —

करति कजाकी नैन, कौन पै करि करि छल बल,
कोर कटाच्छन हात हँ रहे, अति से चचल ।
दँइ सुधा की लालच जनु बिप सौँ हिय दौरत,
“सुकवि” किहू थिर हँइ छनरुमँ फिर फिर दौरत ॥

श्रॉर और फरिगण

“रसिक कहेँ” मट में मतग से मजे में मृदु,
मैन मत-वारे मान मीनन के मोरदार,
तोरदार सीना, मरोरदार, जोरदार,
करति कजाकी कजरारे-नैन कोरदार।

नोरुदार का निनाद तो निरखा ही, अर जग
तराना भी तजीयतदारी के साथ सुनिये। यथा —

† इस--“करत कजाकी कजरारे नैन-कोरदार”
ही सुकृतियों ने अपनी अपनी सरस-सूक्तियां रखी हैं,
जोगन मुक्क हैके मदन-महोप जूने,
मीन छाप दैके राखे भट-जुग जोरदार,
उरज भुरज पे मवासी छवि रासी इहि,
पिय-भन अन्तर बाँके नीके डोरदार।
“उटिदाम” सिसुता सो हरि चडि है ह मन,
धरम, करम, सरम रखी एकहुन ओरदार” ॥
येन कज, खजन घनोर भौर गजन री ?
“करति कजाकी कजरारे नैन कोरदार” ॥—

ॐ
नखत से मौती, नथ नासिका फवति जोति,
“सदोनद”, को तिय तेरे संग तोरदार,
तरनि से वानन तरौना इन्दु आनन पे,
उरखी अलरु मौती मालन में मोरदार।
उपति उरोजन पे उर यसी सैसी लसी,
कैसी कसी कजुमी कसुँभी रँग कोरदार,
छोरदार अचर के ओट दुरे ओरदार,
“करति कजाकी कजरारे नैन कोरदार” ॥—

सील भरे सरस सरोज छवि छीन लेत,
 मीन, मृग, खज, मान-गजन मरोरदार,
 नेह-सरसोले, अरमीले, भाव-दरसीले,
 परमीले परम-रमीले रँग—वोरदार ।
 चोरदार चितके, चलाक हित जोरदार,
 फोरदार “सेरर” अरुन वर डोरदार,
 दोरदार दीरघ दिमाक भरे प्राण-प्यारी,
 ताकन दै तनकि विहारे नैन-तोरदार ॥

—शेखर

नुकीले नैनों की कोरों पर परम रसिक ललित किसोरी जी
 कसा अनुपम-रस बरसाते हैं । यथा —

नैननि की कोरै कोऊ लैहै ।

है कोऊ ऐसी प्रेम-रँगीली, प्राण निछावर वैहै ॥

नूतन-मधु मेंमोल लै आई, छुवति खुमारी ऐहै ।

“ललित-किसोरी” ततछिनजियरा, दूक-दूक है जैहै ॥

—ललित-किसोरी

कहिये कैसी सरस शदा है । कैसा मनोरम मधुर मधु है ।
 ते कविर रचना हे कि, घाह—पद पद से पुनीत प्रेम छलक
 है, मञ्जुल मिठास है—ललित लोच हे ।

है कोऊ ऐसा प्रेम-रँगीली प्राण निछावर वैहै ।

कवि रघुनाथ जी भी कञ्जल कलित कमलाक्षी पर कैसा
 तीय-कलाप करते है कि घाह । यथा —

कैधौ चद-भडल में कुड हैं अमी के भरे,

देसि कै फनिन्द-जौट छौडति न गौमौ है,

और और फरिगण

कैधौ टग-धानन में लागी नटसाल किधौ
तुही वृज-माल नद-लाल कौ ठगौसौ है।
“भनै रघुनाथ” किधौ तेरे ए तरे-तेग,
तापै धरी घाट तातै मैंन हूँ भंगौ सौ है
मन्त्र सौ जगौसौ तत्र-मौहनी पगौसौ किधौ,
नैन-रजरारेनि तै काजर लगौ सौ है।

फजल-कलित-कमलाक्षी की करारी किर्ब सी कोरें
को काटने में कमाल हूँ ही, किन्तु बिहारीलाल जी काजल
जजरत नहीं समझने, क्योंकि ये तिला काजल भी काट
लासानी है। यथा —

रम-सिंगार मजन किएँ, फजन भजन देंन,
अजन-रजन हूँ त्रिना, राजन गजन नैन।†

बिहारी लाल जी के साथ-साथ नागरी दास जी भी
सुनित का-समर्थन सरसता के साथ करते हुए कहते हैं कि
कजन हूँ तै डह-डहे, विनु-अजन छवि ऐन,
रानन गति गजन महा, पिय-मन रजन नैन।

—नागरी

† खजन गजन नैन, निरसि छकि रायी निरजन,
परन करिबे परे सुकयि, केते 'सम पजम।
विधि जनु इन में दियौ अई, निज गुन की सरबस,
अहँ हठीले, घटकीले, सय विधि पूरे रस ॥

यथार्थ है, देखिये न —

काजर विन कारी रे तोरी आँसियों ।

—नद दास

कहते हैं कि काजल दृष्टि को साफ करता है, किन्तु यहाँ तो अनियों के काले कलूटे काजल ने कवियों की दृष्टि को और हाली कर दी--निहायत धुंधली बना दी। देखिये--न यहाँ कि साजले का साँपरा रूप ही काजल समझ किसी 'मिनी' से कहलाते हैं कि —

देव" ममोसि नसायौ सनेह सौ, भाल-मृगम्मद विन्दु कै भाख्यौ ;
चुकी मैं चिपरौ करि चोवा, लगाइ लियौ उर सौ अभिलाख्यौ ।

मखतूल गुहे गहने, रम-भूरतवत सिंगार कै चाख्यौ,
गवरे-लाल कौ साँवरौ-रूप, मैं नैननि कौ कजरा करि राख्यौ ॥

—देव

देखी आपने देव जी की कारीगरी ? , नीचे से ऊपर तक क्या नौड़ी की कढ़ाई लुढ़कायी है कि घाह ।

स्तनार †

राते-डोरेन तै लसति, चग्ग-चचल इहि भाइ ,

मनु धिवि पूनै अरुन मैं, राजन बाँध्यौ आइ ।

—सरनीन

† स्तनारी आँसों के निरूपण में लाल-डोरे तो प्रधान माने ही गये पर कवियों ने रात्रि जागरण से रजित स्तनारी आँसों का इसी के साथ जल किया है। इस लिये धरयस हों हमें भी वैसा ही करना पदा—विश्व एक क्षमा करें ।

श्रौंर और करिगण

कवि सत्तर में रजोगुण का स्वरूप, लाल माना ।
उसी स्वरूप की परम पुर्नात प्रथा के अनुसार रमणी की
(लाल नहीं) गुलाबी श्रौंखों पर अनुपम-उन्नितियाँ उपनाप
गुजर भरे गुलाबी-रग में रंग गये हैं—लाली की निराली
फिदा हो गये हैं । सब कुछ न्योछाकर कर, लुटा दिया है ।

श्रौंर के मंदिर में कैधौ रचि मानिक की,
कैधौ अनुराग-लता अकुर विराज ही,
कैधौ रतिनाथ जू के हाथ की छत्रिली-द्वरी,
जा के इतमाम तै तमाम-दुस भाज ही ।
कैधौ तरुनाई अरुनोदय किरन राजै,
तारे कारे-घन चपलासी सुग साज ही,
लाल-मन वौंधिवे कौ कैधौ लाल-रग-डोरे,
कैधौ बाल-डोरे तुव नैननि में छाज ही ॥

बलभद्र जी की बहादुरी भी, बरबस हृदय को बंध
कुहराम मचाता हुई कह रही है कि —

पाटल नयन कोर-नद के से दल दोऊ,
“बलभद्र” वासर उँनींठी लखी बाल में,
मोभा के समुद्र में बाडन की आभा किधौ,
देव-धुनि-भारती मिली है पुत्र-माल में ।
काम-कैवर्त किधौ नामिका ऊइप वैश्यौ,
सेजति सिक्कार तरुनी के रूप-माल में,
लोचन सिता-मित में तोहित लकीर मनौ,
बांधे जुग-भीन लाल-रम के जाल में ॥

कहिये, कैसी अनूठी उँनीदी आनन्दभरी रमणी के ललित चनों की लुनाई पर सरस सूपित सजायी है ! है न, अनोखी ज !

कौन कवि ऐसी जो छक्यौ ना नैनिरूप लखि,
लाल-लाल डोरन नै बहुतै घर घाले हँ ।

—छाँह कवि

यह तो जो कुछ है सो तो अनोखा है ही, पर कवि शिरो-णि विहारीलाल की भी लीला लखिये । आप किसी लाघण्य-यी ललना के ललित लोचनों की लुनाई को रख कर लला से छुवाते ह कि -

वाल ! कहा लाली भई, लोचन-कोचन मँहि,
इसपर यह जवाब देती है कि --

लाल ! तिहारे दगन की, परी दगन में छाँहि । †

—विहारीलाल

कहिये कैसा मुँह तोड़ उत्तर है लाजवाब हाजिर जवाबी है ।

गूढोक्ति अलकार की कैसी अनूठी उचित है—देखिये न !
हे वाल ! तुम्हारी लाल लाल आँखें क्यों ह !, इसपर यह नायिका जवाब देती है कि लाल ! यह आपकी ही अनोखी आँखों की लाली तो मेरे-लोचनो में झलक रही है और कुछ नहीं है । चाह ! क्या फडका देने वाला घचन विन्यास है, चाह, विहारीलाल जी चाह !

† छाँह परी यह अरुन हहा तेरे नैननि की,
क्यों बरसावति यहकि, हनति बरछी बँननि की ।
तेरे पाँइन परनि पिया ? "सुकवि" हू के पालरु,
तू दिखरावति भौह हाइ जनु ब्याली बालक ॥

—प्यास जी

आँख और फविगण

इसी घाटदात पर स्वर्गीय कविधर गयादत्त जी चण्ड "संस्कृत दोहा रचकर इस प्रकार अपनी प्रत्यर प्रतिभा चय देते हैं। यथा -

तरुणि ! कुतस्ते नयन-युगमरुणतर प्रतिभावि,
मधुप ! तवारुणदृक्प्रभा प्रतिविम्ब विदधावि ।

तरुणी ! तुम्हारे ये तीरे नयन-युग आज क्यों अरण्य हो रहे हैं। इस पर नायिका उत्तर देती है कि हे मधुप ! ही तो अरण्य-दृशों का यह प्रतिविम्ब पड रहा है। इसी अरण्य हो रहे हैं।

आह, कितना सीधा-साधा लाजवाब जवाब है। विदग्धता भरी हुई है। फिर श्लेष में सरायोर "मधुप" तो और ही गजब गुजार रहा है !

काहू के रग रंगे दृग रावरे, रावरे-रग रंगे दृग मेरे।

इसी टकर की कुछ-कुछ एक आर्या भी है। यथा -
आर्द्रार्द्रकरजरदनक्षतैस्तव लोचनयोर्मम दत्तम्,
रक्षाशुक प्रसाद कोपेन पुनरिमे नाक्रान्ते ।

अर्थात्, अन्य नायिका छत नूतन नख-दन्त छतरूपी चिन्हों को चमकाता नायक, निज नायिका उसे देखकर नायिका के नेत्र क्रोध से लाल हो गये, इस प नायक पूछता है कि --आप की आँखें लाल क्यों हो रही तब वह कहती है कि प्यारे तुम्हारे शरीर पर झलकते हुए

दर्द (रून से खचित) दन्त नयन जतों अर्थात्—जरमों ने
 ने आँखों को रक्तशुक् (लाल किरण स्वरूप) लाल-कपड़ा
 तब में दिया हे (यह) उसी की लाली है, इसे क्रोध की लाली
 समझिये ।

यद्यपि उक्त आर्या परम अनूठी है और सस्कृत साहित्य में
 स्का पूर्ण आदर हे, पर भाषा-कवियों का भाव कुछ निराला ही
 ता है—इन की ललित लोच कुछ और ही हे । देखिये न,
 की सरस सूक्त ! इसी घटना को किस उत्तमता के साथ शुरु
 करते हैं और कितना आनन्द का स्रोत उमडाते हैं । यथा —

यौं घनस्याम । अबै दु-चिते भए, मो तन दीठि करौ सुसदाई,
 ज, गुतानहु में अरुनाई, न लाल, गुलालहु में सरसाई ।
 नन पै इतनीं गहिरौ रँग, धनि हैं वा रँगरेजनि की चतुराई,
 की कही इन नैननि-रग की, दीनीं कहा तुम लाल रँगाई ॥

—कोई कवि

यता दीजिये साहय ! कि उस "निगोडी" को इनकी रुचिर-
 गार्ई में सन-कुछ दे दिया है, कुछ भी बाकी नहीं छोडा ।

कवि हरिजन जी का हृदय भी (कुछ कहने को) हुरसाया,
 आप कहते हैं कि —

जैसेई अधरन पै अधिक सु सोभा देति,
 अजन की लीक, पीक मो हिय लगाइए,
 जैसे डग धरति डगति फेरि थहरात—
 ऐसी लाल ! चाल चलि हमैहूँ सिरसाइए ।

"कवि हरिजन" जैसे वीजत कष्ट के कष्ट—

आमत न नरिं तातौ भेद समुभाइए,

आँख और कविगण

जैसे लाल ! लाल-लाल लोचन रँगाए हाल,
तैसी लाल ! लाल मेरी चूदर रँगाइये।
—कवि

पद्माकरजी का प्रबल प्रताप भी इसी भाव
मरगजे-हार बेसुमार बारुनी के बस,
आधे-आधे आकर सुएहू भँति जपत,
“कहै पदमाकर” सु जैसे हैं रसीले-अग,
तैसी ही सुगध की मकोरन की मपने।
जैसे बन आए आप, तैसी ही बनावौमोहि
मेरौ अभिलाप लाख एही-भँति धपने,
लाल-दग-कोरन में मेरे नैन धोरौ अब-
कैधौ इन नैननि निचोरौ नैन अपने ॥

कोइ कलघोति की सी कामिनी (सपेरे) अपने उती,
अलसोहे लाल लाल लोचनों को पानी के छूँटे दे-दे कर पो
है, इसपर “शेख” † अपनी सूक की मफलता का “सेहरा”
प्रकार घाँधती हे कि घाह ! यथा —

रात के उनीदि, अलमाते, मदमाँते-राते,
राजै कजरारे-दग तेरे यौ सुहात हैं,
तोखी-तोखी-कोरन अँकोरि लेति काठैं जिय,
केते भए घाइल औ केते तलफात हैं।

† लोक में यह बात प्रसिद्ध है कि “शेख” नाम की
रंगरेजिन को एक-दोहे के निचले पाद की पूर्ति पर मुग्ध हो

ज्यो-ज्यो लै सलिल चर 'सेख' धोवै वार-वार,
 त्यों-त्यों बल बूदन सौं वार मुकिजात है,
 कैबर के भाले, किधौ नाहर नहन वाले,
 लोहू के पियासे कहूँ पानी सौं अघात है ॥

—शेख

शोणितमयी पिपासा क्या कभी पानी से परितृप्त होती है,
 कभी अघाती है? कभी नहीं! यह तो और भी बढ़ती है। पर
 "शेख" ने ख्री होकर भी क्या अनोखी उक्ति कही है।

उन आँसों की आँसों से लूँ मैं बलायें,
 मयस्सर हो जिनको (ऐसा) नजारा तुम्हारा।

—दाग

ललिन लोचनों की लुनाई का मीठा मजा, 'भतिराम' जी
 भी लेते हुए कहते हैं, और खूब कहते हैं कि —

'मोर-परसा 'भतिराम' किरोट मे, कठ बनी बन-माल सुहाई,
 मौहन की मुसिम्यान मनोहर, कुँडल डोलत हूँ छवि-छाई।
 लोचन-लोल, प्रिसाल-प्रिलोकति, को न विलोक भयौं बस माई,
 वा मुख की मधुराई कहा कहौं, मीठी लगै अखियाँ लुनाई ॥

—भतिराम

आलम कपि ने एक लाख रुपये दिया था और साथ ही उससे
 निकाह भी किया था। यह दोहा इस प्रकार है —

बनक-धुरी सी कामिनी, काहे कौं कटि छिन,
 कटि कौं बचन काटिकै, लुचन मध्य धरदीन।

—शेख

ऑर और वविगण

परम-रसिक-धर महाराज नागरीवास जी की दासी 'बनी-ठनी' जी भी रतनारे-छोछोचनी पर अति एक उक्ति उपजाती हैं। यथा —

रतनारी हो। थारी आँखडियाँ।

प्रेम छकी रम-वस अलमोणी, जाणि कमल री पौरडियाँ ॥
सुन्दर-रूप लुभाई गति-मति, हो गई ज्यू मधु-मौरडियाँ।
रसिक-विहारी, वारी-प्यारी, कौन वसी निसि-काँगडियाँ ॥

सबने सब कुछ कहा, पर कधि सम्राट् सूर की के आगे किसाँकी सुफलता न मिली। आप कहते हैं कि —

अतिही अरुन हरि। नैन निहारे।

मानहु रति-रस रंगे रंग मंगे, करत केलि पिय पलक न पार ॥
मँद-मँद डोलति सक्ति से राजत मध्य मनोहर तार ॥
मनहुँ कमल-सपुट महेँ बीधे, उडिन सकत चपल अलि-वार ॥
फलमलाति रति रैन जनावत, अति रस-मत्त भ्रमति अनियार ॥
मानहुँ सकल जगत जीतन कौं, काम, धान दरसान संहार ॥
अट-पटात, अलसात पलक-पट, मूँदत कबहुँ करत उचार ॥
मनहुँ सुदित भरकठ-मनि-आरन, खेलति रजरीट चटकार ॥
धार-धार अवलोकि-कनखियन, कपट-नेह मन हरत हमार ॥
'सूरदास' सुख-टाटक रोचन, दुख-मोचन लोचन-रतनार ॥

पुतली वा तारे

रहिमन, पुतली-स्याम, मनहुँ जलज मधुकर लसै,
कैधौँ सालिगराम, रूपे के अरघा धरे।

—रहोम

आँख में जो स्याम पुतली है, आप जानते हैं वह क्या बला
। न जानते हों तो कवि करपना के कायल होकर देखिये।
प्रथा —

फटिक के सम्पुट में सोण सालिगराम किधौँ,
कैधौँ कमल-दल पै भौर से निहारे हैं,
मृग-मद-विन्दु कौँ लसत प्रतिबिंब किधौँ,
कैधौँ दिण दृग में काजर तैं कारे हैं।
कैधौँ मरकति-मनि सुकति-सुकति पर,
कैधौँ रति-नाइक नै साइक निचारे हैं,
पिय-मन तारवे कौँ अवतरे तारे-भारे,
धारुनी के धारि मनौँ तरुनी के तारे हैं ॥

—शोह कवि

देखिये ! एक दूसरे कवि जी भी, क्या अनुपम उममा "पुतली"
पर उपजाते हुए कहते हैं कि —

पकज के दल पै दल द्वै, भँवरी रस-लालच हेत रगी हैं,
कै नटनी सुरनाइक की, निरतति कल-हाव सौँ भाव-पगी हैं।
बालक के नैननि की पुतली, निसि-चासर लाल के ही में लगी हैं,
कचन की मख-रूप डिवाँन में, सोल धरी मनौँ नील-नगी हैं ॥

—शोह कवि

ऑल और फविगण

सुवर्ण की मछली के समान, खुली हुई आँख रूपी ।
मानों नीलम के नग-समान पुतली घर दी हैं ।

फहिये, कितनी सरस और हृदय को फडका देने ॥
अनूठी उपमा का आविष्कार है ।

तन-सुवरन के फसत यों, लसत पूतरी-स्याम ;
मनों नगीना फटिक में, जरी फसौटी काम ।
—सर्वज्ञ

“चिरजीवी” फवि की चपलता भी पुतली पर
धिल है । प्रमाण प्रस्तुत है । यथा —

सोभा के सरोज किधों रसिक-मलिन्द घैठयो,
चन्द माहिं राहु किधों बुद्धि वै हिया की हैं,
फटिक-सुमीप में सिंगार-रस-मोती किधों,
उपज्यौ अजीब जामें गरज पिया की हैं ।
भनैं “चिरजीवी”, किधों चाँदी के सम्पुट में,
सालिगराम सोहैं ऐसी उफति जिया की हैं,
कैधों मीन-टॉगन में मदन-महीप डोलें,
प्रेम-मद-मौती किधों पूतरी तिया की हैं ॥
—चिरजीवी

पुतली की प्रबल परीक्षा में नूर फवि का निनाद भी
मजा दे रहा है । यथा —

ताम-रम सोहैं तरुनों के वरु मैन बीच,
तामैं तम निसा की वमीठी मनों लायी है ;
कैधों अनुराग-जाल डारे मैन सैन-सर,
गोलफ हैं ताके ताकौ ऐसी भाव भायी है ।

खजन धरे हैं मुख जवू-फल मेरे जानि,
 उपमा न आनि "नूर", ऐसौ ठिकठायो है,
 तरुनी के स्वाम-तारे ऐसे मैं निहारे किधौं,
 चन्द पै चकोरन नै हलाहल मीं खायो है ॥

—नूर

कवि बिहारीलाल जी पुतली को पातुर (रडी) के रूप में
 स्तुत करते हैं। यथा —

सब अँग करि राजी सुघर, नाइक नेह सिरसाइ,
 रस-जुति लेति अनत-गति, पुतरी-पातुर-राइ।†

—बिहारीलाल

द्विज कवि की दीर्घ दृष्टि ने भी पुतलियों का पीछा न छोड़ा,
 पत्नी अजूबी उपज का मुलाहिजा फर्माइये। यथा —

कैधौं गडकी के सुत गजत-कटोरै धरे,
 अरचा फरत विधु विधि सौं विचारे हैं,
 भयी नयौं जीवन-नरेम ताके भीत भरि,
 मदन-सुनार बट पला पल धारे हैं।

"द्विज कवि" फहैं कौल-दल पै लसति-अलि,
 कैधौं धिनि-सीप पै नील-मनि धारे हैं,

† पुतरी-पातुर-राइ, नचति ठकति टमकति पुनि,
 क्षमि वाहवा करति मनहूँ, सुग भौंह परति गुनि।
 दरस इनामहि देहु एण रिसवार पाणि-रँग,
 "मुकवि" गुमाहिं विनु कृपाभाव सौं पूरे सब अँग ॥

—ध्यास जी

ऑस और कविगण

ब्रज प्रान्त-प्यारे राधे, गिनै निखितारे वाके,
होति निखितारे देखि तेरे नैन-तारे हैं ॥
—दिन ही

आखिर जय "चिरजीवी" कवि की चपलता जप
न आरे, तब हार कर बोले कि —

गज-मत्त सी जौन करै छपि सौं,
चर-चाट अमें गुन सीलिन की,
बँधी प्रेम की साँकर पाँइन सौं,
मनमथ महाउत होलिन की,
"चिरजीवी", लखी जब तैं वौ अमोल,
सुगोल-गुली उनमोलिन की,
उतरी ना अजौं उर तैं उतरी,
पुतरी ब्रज-वाल-शुनीलिन की ॥
—चिरजीवी

हरिद्वार में हरि की पैंडी पर एक दिन ५० पदसिंहनी
मालूम किस कवि की पुतली पर सरस सूक्ति फही थी।
कि —

नागिन पुतरी नैन की, रही कौंदरी राइ;
वैरिन भूखी प्रान की, देखति ही डसि जाइ।
—कौंदरी कवि

धा खुदा बख्शी जी का भी बखान पुतली पर सुनने
है। आप फर्माते हैं कि —

लोचन-ललित प्रीत-रस पागी, पुतरिन श्याम निहारे;
मानों कमल-दलन पै बैठे, उड़ि न सकति अलिबारे।
—बखशी जी

आँख का तिल

नैन-महल वरुनी-सुचिक, पुतरी-भसनद साज,
तिल-तकिया तामें सुमन, दै बैठो महाराज ।

—सुबारक

आँख के तिल का तिलस्मात ने भी तथियतदार कवियों को
का दिया है । एक दम तिलमिला दिया है, जैसे कि —

राजें वाम-लोचना के तिल वाम-लोचन में,
ताकी छनि कहिवे कौं कौन कै सयान हैं,

जहाँ तिल, वहाँ नेह, एहू न सनेह जानि,
चित-चिकनाई कौं विचान्यौ अनुमान हैं ।

सिसुता के भाइतै रुसाई दरसाई ताकी,
एकै जुगति आई जिय प्रीतम सुजान हैं,

नाहक चतुर-मन-दीन छान लेति नैन,
तिनन-सरूप लग्यौ "पातक" निसान हैं ॥

—कोई कवि

नाहक ही चतुरों का दीन और मलिन-मन छानने की सजा
कैसा फलेजे में कसकने घाला तिल-रूपी पातक का फाला
नान निराली अदा का लगा है ।

सुजान कवि की भी "तिल" पर सरस सृष्टि सुनने लायक
देखिये कैसी उपमा की उत्पत्ति करते हैं । यथा —

सिसुता में जोवन की निकाई कछु देखिवातैं,
चरन-सरोज गवि धारता गहवि है,

घोषरी पै ओदनी विराजै तामें घोटी चारु,

आँस और कविगण

ता छत्रि के देखे तै मनोज उमहवि है।
 दीरघ-दृगन बीच पूतरी समीप तिल,
 ताकी उपमा कौ यौ "सुजान" सो कहवि है
 अमल-अमल बीच अलि अलिनी सौ मिलि,
 करि-करि मकरद-पान आनंद लहवि है
 -३

कोए

कोयन सर जिन के करे, सोयन राखे ठोर;
 कोयन-लोयन नाहनों, कोयन-लोयन जोर।
 -७

कोयन की करतूत कवि-कोविद नवनीत जी से
 कैसा कलेजे में कसकने वाला कलाम कहते हैं। यथा -
 पिय अनुराग के रंगे हैं जू उद्धाह भरे,
 गरे मन-मानिक मजेज की तयारी है।
 "नवनीत", मानों ण नुकीले-नैन-भोरन की,
 भोरन भरत सूर-समर सुधारी है।

१ कविपर नवनीत जी चतुर्वेदी माधुर-समाज *
 परम गत अमी विद्यमान हैं। आपकी परम प्रसिद्ध प्र
 मबदी (अयोध्या का जी पीछे) फायल है। प्र
 इन सूर शिरोमणि कविपर की कविता का संग्रह हम
 प्रकाशित करेंगे। "नैन निशुक्ति" पर आपकी अमूर्त प्र
 परिषद, "मैन निशुक्ति" में देखिये।

ए-मन-मथ के, समोए-सुर-सिन्धु ही के,
 जोए नहिं आजु लौ सु आँनि वर-नारी के,
 जिर-प्रिगोए हू पै छिपत न अनङ्ग-रङ्ग,
 अरुन अनौखे घोखे काँए प्रान-प्यारी के ॥
 —नवनीत

कोयों की लाली

अँजन-गुन दौरत नहीं, कोयन लाल-तरँग,
 फोरन पगि डोरनि लगत, तुव पोरन कौँ रँग । †
 —रसलीन

पलक

यौँ तारे तिय-दृगन के, सोहत पलकन साथ,
 मनों मदन हिय मीस प्रिधु, धरे लाज के हाथ ।

पलकों के प्रथम प्रताप पर दत्त कवि की अद्भुत उक्ति का
 द भी लीजिये । यथा —

भूँक होति सौँतै सन दीरघ-दृगन देखि,
 रसिक विलोक होति विकल निहारे में,

† कोयों पर और कोयों की लाली पर कविकोषिदों की
 प्रता नहीं मिली, इस कारण इस पर ही सद्य करना पडा ।
 किसी महाशय को इनके ऊपर और कुछ मिला हो तो भेजने
 करें, जिससे “अगले-संस्करण” में सम्मिलित की जा

आँस और कविगण

ता छत्रि के देखे तैं मनोज उमहति है।
 दीरघ-दृगन बीच पूतरी समीप तिल,
 ताकी उपमा कौं यों "सुजान" सो कहति है,
 अमल कमल बीच अलि अलिनी सौं मिलि,
 करि-करि मकरद-पान आनंद लहति है॥
 —पुत्र

कोए

कोयन सर जिन के करे, सोयन राते ठोर,
 कोयन-लोयन नाहनों, कोयन-लोयन जोर।
 —सरल

कोयन की करतूत कवि कोविद नवनीत जी † से सुनि
 कैसा कलेजे में कसरुने धाला कलाम कहते हैं। यथा —

पिय अनुराग के रंगे हैं जू उछाह भरे,
 सरे मन-मानिक मजेज की तयारी के,
 "नवनीत", मानों ए नुकीले-नैन-फोरन की,
 ओरन अरत सूर-समर सुधारी के।

† कवियर नवनीत जी चतुर्वेदी माधुर-समाज के इ
 पम रत्न अमी विराजमान हैं। आपकी परम प्रसिद्ध प्रतिभा
 सपही (अर्थात् रत्नाकर जी घग्गह) कायल हैं। वज्रभवा
 इन सूर शिवेमणि कविराज की कविता का समग्र हम शीघ्र
 प्रकाशित करेंगे। "नैन निरुक्ति" पर आपकी अनूव प्रतिभा
 परिषद, "नैन निरुक्ति" में देखिये।

मोए-मन-मथ के, समोए-सुर सिन्धु ही के,
 जोए नहिं आजु लौ सु अॉनि घर-नारी के,
 काजर-निगोए हू पै छिपत न अनङ्ग-रङ्ग,
 अरुन अनौए चोरे कोए प्रान-प्यारी के ॥
 —नवनीत

कोयो की लाली

अँजन-गुन दौरत नहीं, कोयन लाल-तरँग,
 फोरन पगि डोरनि लगत, तुव पोरन कौँ रँग । †
 —रसलीन

पलक

चौं तारे तिय-दृगन के, सोहत पलकन साथ,
 मनौं मदन-हिय सीस बिधु, धरे लाज के हाथ ।

पलकों के प्रबल प्रताप पर दत्त कवि की अद्भुत उक्ति का
 आनन्द भी लीजिये । यथा —

भूँक होति सौतैं सत्र दीरघ-दृगन देखि,
 रसिक बिलोक होति विकल निहारे मैं,

† कोयों पर और कोयों की लाली पर कविकोषिदों की
 कविता नहीं मिली, इस कारण इस पर ही सब करना पडा ।
 यदि किसी महाशय को इनके ऊपर और कुछ मिला हो तो भेजने
 की कृपा करें, जिससे “अगले संस्करण” में सम्मिलित की जा
 सकें ।

आँख और कविगण

भरत न भारे, थके गाढरू-विचारे जरी,
जत्र मत्र, विविधि-प्रकार उपचारे मैं।
“दत्त कवि” कहैं, मन धरत न धीर वनकु,
कैसें कै वचेंगे इन कटाच्छ-कुसकारे मैं,
विष-धर भारे, नाग कारे, नैन-कामिनो के,
काटि छिप जात हाइ पलक-पिटारे मैं ॥

—दत्त कवि

पलक पिटारे का रूपक तो गजब का था ही, किन्तु
कर पलक पिटारे में पुन छिप जाना एक दम गजब है।

जल्मी किया है मुझको, तेरे पलकों की अनी ने,
यह जल्म तेरा सज्जरे, भालों से कहूँगा।

—बली

कवि रघुनाथ जी की भी पलकों पर रहनुमाई का रस
देखिये। यथा —

सुन्दरी के सुन्दर पुरन्दर-प्रिया तैं अवि,
नाहिनें सु सुन्दर कहूँ यच्छ-सुकुमारी के,
काम की तराजू के अमोल-पला-कवन के,
कैधौं छेम-द्वाम छत्र पूतरी-सुखाकोरी के।
भनै “रघुनाथ” हैं मनोहर पियारे सदां,
कैधौं जुग-सपुट हैं रतन-अपारो के,
परखत मैन-अत्री लगावै ना पलक नैन,
ऐसे हैं सुलैन-नैन पलक पियारी के ॥

—रघुनाथ

रसनिधि की रसना भी पलकों को देखकर न मानी और
ली कि —

नट-बट तेरे दृगन के, कौन सकत है पाइ ।

पल-प्यालेन में दृग-बटा, देग्वत धरे छिपाइ ॥

—रसनिधि

वरुनी

कारे अनियारे ररे, कट-कारे के भाव ,

भूपकारे वरुनी करत, भूप-भूप कारे घाव ।

—रसलीन

त्रिप-भरी वरुनियोंने भी कवि हृदयों को घररस बेध डाला है,
ई इन्हें सुमन धन्ना, मनसिज की सुहर्याँ, बतलाते हैं, तो कोई
वणी और धारुणी में भेद नहीं बताते, जैसे कि —

नजर परे तैं, उलहति उर आँनँद अति ,

लसत समूह सो कटाच्छन सुपेद है ,

“कालि दास” लोचन-पियाले अवलोकतिही ,

प्रीतम के अग-अँग पसरद सेत है ।

दोऊ हितकारों से सुमोहित भुरारि-मन,

छके ही रहति लखै विरत-अरसेद है ।

चरन में एकहि गुन भेदति भुराई-भरे ,

वरुनी में धारुनी में नाहि कछु भेद है ॥

—कालिदास

भाभिनो के भुराई-भरे भोलापन से युक्त चखों में तो केवल

आँख और कनिगण

एक भेदना (वेधना) ही गुण है, पर विषमयी बरुनी और बरुनी
तो कुछ भेद ही नहीं क्योंकि —

देखा किया वह मस्त निगाहों से बार-बार,
जब तक कि जाम आए कई दौर हो गये। †

सुरत कवि की सूक्त भी सरस हृदयों का सहाय है।
सूक्ति का सुन्दर सम्मिलन है। यथा

कैधों दृग-सागर के आस-पास स्वामताई,
ताही के ए अकुर उलहि श्रुति घाटे हैं,
कैधों, प्रेम-न्यारी-जुग ताकी ए चहुधा रची,
नील-मनि सरनि किवारि दुस डाटे हैं।
“सुरत सुरवि”, तरुनी की बरुनी न होंहि,
मैंरे मन आए ए विचार चित-गाटे हैं,
जई जे निहारैं मन तिन के पकरिबे कौं,
देसौ इन नैननि हजार हाथ काटे हैं ॥

—सुरत कवि

अजी ! ये ध्ययित करने वाली, यामा की विषम-य
नहीं हैं, ये तो, देखनेवालों के मन मजबूती से पकड़ने को (†)
नेत्रों ने हजारों हाथ काट रहे हैं दीपावली के अनंत
छरुने की छयीली-छयि क्षति पर छिटक रही है —

† वाग महाशय की दूरदेशी पर रसनिधि का रूप
कुछ इती भाष पर देखिये। यथा —

ज थोजा विजया पिये, तिन प आवन हैक,
मन मोहन दग-प्रमलि में, क्या थोती है हैक।

एक दूसरे कवि भी अपनी दयानत दारी का दर्याच यों दसांते
ए कहते हैं कि —

कैधौ मन-नाइक बनाई रस-राज-भसी,

कैधौ महा-मोहनो के मन्त्र के वरन हैं,

कैधौ नैन-चोरन के हाथ की धनूप-असि,

कैधौ स्याम अङ्गन के रङ्ग के रँगन हैं ।

कैधौ ए पचाम-दूक सीवनि की सार-मूर्द्ध;

कैधौ कारे-तारेन की किरन के गन हैं;

कैधौ रूप-पङ्कज के ऊपर दई पङ्क रेखें,

कैधौ नैन तरुनी की वरुनी-मघन हैं ।

—कोई कवि

कहिये कितनी सरस सूक्ति है, रूप सौन्दर्य-रूपी परुज की
नीतता का प्रमाण एक रूपी वामा की वरुनी वरश रही है ।

सुकवि मदनजी की मुखरता भी मन को मुकुलित कर रही
और कह रही है कि —

छवत मैं कोमल-सिरस कीमी पाँसुरी है;

कैधौ रिन खरी सी खरिकाति जाति छाती हैं,

निपट-धन्यारी नैकु होति न हिए तै न्यारी,

अजौ नट-साल की अनी सी इठलाती हैं ।

“मण्डन” तिरौड़ी-असि काजर-करौछी प्रति,

अंजुर सिंगार की जई सी उलहाती हैं,

नैन-नैन-चोरन की फौजसी वररी तीर्यो,

तरुनी की वरुनी पै वरनी न जाती हैं ॥

—मदन कवि

आँस और कफिगण

तरेरी और तीरे तीरों की फोक सी तरुनी की बिलकुल घरणी ही नहीं जाती। उनकी समानता का कोई हे ही नहीं।

तीय। विहारे दगन कौ; में गुनाह का कौन।
छतना सी छतियाँ करी, छेदि सघन-यरुनीन।

—त

नहीं साहस ! आपने तो कुछ गुनाह नहीं किया,
तो छेदना ही अपना धर्म धारण कर रखा है।
सीखचे में धन्द होती हुई भी मन मानिक को लुटते जग
नहीं दिचकर्ती। यथा —

राह चलत मन लुटि हैं, करि अनेक छल-छेद,
नैन कीन्ह वरु याहि सौं, यरुनि-सीकचन वन्द।

चिरजीवी की चपलता भी चचल चखों से चखिये,
कहिये कि हे न अनूठी। यथा —

अति-पैनी प्रताप-भरीं सर-की,
सिगरी सुख-मूल पिया हर जी की,
उर वेधनिहारि मुनीसन की,
दुःख-दाई धनी रसिया गरजी की।
“चिरजीवी”, उमै चख लाइली की,
त्रिलसैं यरुनी उपमा लरजी की,
दिल दोह के एक करैं कौं मनौं,
इहि सुइयाँ हैं मन भौ दरजी की ॥

—चित

श्रीमान् “चिरजीवी” जी इतने पर ही चुप नहीं हुए, पुन-
कहते हैं कि —

प्रेम-पट दोड़ कौ सु एक की फरन हरि,
सूई सुखरासि दुखहरनि पिया की हैं ।
सुखद मिंगार-रस चन्द की किरन किधौ ,
तोपक चकोर मन-मौज रसिया की हैं ।
कहैं “चिरजीवी”, पौध-पूतरी बचैरे किधौ ,
रथ्यौ अलि-बाल कौए आँस सुकिया की हैं ,
सुखमा सिरपि-कृट चेटिका कौ सूत किधौ,
वेहद निभूति वारी बरुनी तिया की हैं ।

—चिरजीवी

परु और —

रग अबतो की वारि सौह सुघनी की लँधि ,
दग पै धनी की छाँह सहस फनी की हैं ,
सोभा कमनी की, पख कोर करनी की, स्वच्छ ,
अच्छ धुमनी की, जोति ऊपर सनी की हैं ।
“वैजनाथ”, ही की, प्रीत-पद जोरि नीकी ,
नेह-तार सुचनी की नैन-दीपक अनी की हैं ,
रूप-भोहनी की, जन जी की, हरनी की चारु,
नीकी अरी नीकी घरनीकी घर नीकी हैं ॥

—वैजनाथ

उपमा

मृग

मृग कैसे दृग देखिकेँ, अनमिरा भौ सवार, —

आँखों पर कवियों ने अनेक उपमायें उपजाई हैं। अरु उपजों से अलकृत किया हे। गजप के गुध्वार उडाये हैं। सूभों की सुर सरी सरसायी है। खोज की खगधी की है। फिर भी ललचाते ही रहे। लार टपकाते ही रहे। मालूम कि "सर जगदीशचन्द्र बोस" महोदय को निजी, नयन-अविष्कारों पर इतना आनन्द उमडता है कि नहीं, नयी-नयी निरुक्तियों के निरूपण से, "कवि-बलाधरों" के आँके का स्रोत उमडता है। कवि-जगत ने नेत्र-रूपी धरा धाम थल-धर, नभ-धर, जल-धर के साथ-साथ वृक्ष, लता, पुष्प का भी ऐसा उत्तमता से समावेश किया है कि कुछ कहत बनता। "गिरा अनयनु, नयन विनु धानी" वाली कहावत को सार्थ कर दी है। कलमुर्ही-कलम ही तोड दी है। उचिततों उपज का आसीर कर दिया है।

कवि-कल्पानिधियों ने अन्य उपमाओं से पहिले थल-मैं (सगने पहिले) "मृगोपमा" को मनोनीत किया हे। मृग नयनी, कुरग-कयनी, हरिण लोचनी, आदि सुन्दर सम्योघनों रूय ही कामिनियों को समलकृत किया है। मृग में चंचलता आ-जितने गुण हैं सय ही को ठूस-ठूस कर "ललना" के "लोचनी" का लीला निषेत्, बना डाला। कविधर "विहारि लाल" जी ही पहिले लीजिये, आपने जिस उत्तमता के साथ मृग-उपमा आविर्भाव किया है, वैसा और कोई क्या करेगा। यथा —

सेलन सिरण अलि भले, चतुर-अहेरी-मार ।
कानन-चारी नैन-मृग, नागर-नरन-सिकार ॥ †

—बिहारी लाल

आप कहते हैं कि मार (कामदेव) अहेरी (शिकारी) ने कानन चारी (कानों तक फैले हुए वन में रहनेवाले) नैन मृगों को ऐसे सिखलाये है कि नागर (ऐसे वैसे नहीं चतुर नगर निवासी) नरों (मनुष्यों) का भी “वेधडरू” शिकार कर रहे हैं ।

देखा आपने, कितने गजब की सूझ है—कितना रुचिर-रूपक है । कितना चोज है कि वाह—ओर श्लेख की बहार का तो रहना ही क्या है । घाह ,

कानन-चारी नैन मृग नागर-नरन सिकार ,

† भारतेन्दुजी ने बिहारी के इस दोहे पर अपनी सरस-धूम के सहारे कुण्डलिया रचकर सोने में सुगन्ध का समावेश किया है । यथा —

नागर-नरन सिकार, करत ए जुलम गुजारत ।
अजन गुन हूँ बँधे, उडत, झपटत, गहि लावत ॥
चीन्ह-चीन्ह “हरिवन्द” रसिक प मारत सेलन ।
बधि फिर मुधि गहि लेति भले सिरण इहि सेलन ॥

—भारतेन्दु

भारतेन्दुजी के साथ साथ व्यासजी की बहादुरी भी देखिये ।
यथा —

नागर नरन सिकार, करत कहुँ पकरि परें ना,
बचलता सौ भरे तरु डटि रहति टरें ना ।
सुकि-सुकि उस्तकति सग लिपुँ जनु जिष अलबेलन,
समर “मुकवि” सौ करत समर के सिरण सेलन ॥

श्रॉस और कविगण

मृगों से मनुष्यों का शिकार कराना और घह भी गँवारों (जिनमें बसने वालों) का नहीं चतुर नागरिकों का। यही कवि उल्लूक प्रतिभा का परिचायक है।

इसी दोहे पर गुलदस्तए त्रिहारी कार देवीप्रसाद जी "श्रीतम" अपनी यू दाद देते हैं। जैसे कि —

शिकारी-हुस्त ने तेरे, दिखाई है व-उस्तादी,
गिजाले-चश्म को जालिम दिले-दाना की सैय्यादी।

रसनिधि जी की रसना भी इन रसास्वादन का मन्तव्य छोड़ सक्ती और कहने लगे कि —

प्रेम-अहेरी की अरे। यह अद्भुत गति हेर,
काने दृग-मृग भीत के, मन-चीते पै सेर। †

नागर-नरन सिकार, करत ए कान-चारी।
धिन-गुन भौह-कमान, धान भारत बठपारी ॥
काजर-धार-कठार लिरो दृग-चौरी बिप ए।
"सुरवि" हूँ के हिय कसकत नीके रोहन सिरए ॥
कविधर रसलीन जी ने इसी भाव को यों अपनाया है। यथा
गहि दृग मीन प्रधीन की, चित्तमन-असी चार।
भव-सागर में करत है नागर-नरन सिकार ॥
† इस भाव पर यहादुरशाह जफर ने इस तरह फर्माया है। यथा
दिले दुर-दाग से मेरे तुम्हारी अँव लदती है।
तमाशा है कि चीते से, लड़ाते आप भाहूँ ॥

कविधर नृप शम्भु जी "नैन-मृगों" को "मुरप-चन्द्रमा" के रथ
 १ गहक घतलाते हुए कहते हैं कि—

लसैं धीरै चकासी धलैं सुति में,
 भृकुटी-जुवा-रूप रही छवि च्वै,
 अलकावलि-डोरी कसी "नृपसम्भु",जू,
 सूत-अनङ्ग दई धरी ध्वै ।
 तम सौवरे रङ्गहि जानति हैं,
 हठि पीछै परे हैं चलै जित है,
 कर छालत आवत नैन किधौ,
 ए सुधाकर के रथ के मृग द्वै ।

—नृप शम्भु

कानों में जो कर्ण-फूल हैं, वेही पेहिये हैं, मोहें ही जुधा हैं ।
 धलकैं डोरी हैं, मुख रथ है, फाम रथधान है, नैन-मृग जुत रहे
 हैं, और चौकडी मारते उडे जा रहे हैं, सो कहीं ये सुधाकर-
 (चन्द्रमा) के रथ में जुते हुए मृग तो नहीं हैं ! कहिये कितना
 सुन्दर रूपक है ।

श्री सूर की भी सरस सूक्ति सुनने लायक है, क्योंकि अन्धे
 होकर भी जो गजब के गुब्बार इनने उड़ाये ह, यह और किसी में
 ताकत नहीं है । कारण परमात्मा की परम अनुकम्पा भी तो
 चाहिये, कोरे कवि हुए तो ज्या ! सुनिये —

मेरे नैन-कुरङ्ग भए,
 जोवन-वन तैं निकसि चले ए, मुरली-नाँदिए ए ।

रूप-व्याध कुण्डल-दुति ज्वाला, किंकिनि घण्टा-घोष ;—
 व्याकुल है इक टक ही देखति, गुरुजन तंजि सन्तोष ।

भौंह-कमान, नैन-सर साधन, मारन चितवन-चार,
ठौर रहे नहिं टरे "सूर" वे । मँद-हँसनि-सर-धार ।

—श

धन्य, सूरदास जी धन्य, आपके सरस सनेह पूरित रस के समझने के लिए बुद्धि और पूर्वजन्म की प्रतिभा चाहिए। यह सब कुछ है किन्तु "हरनी के नैनानि तैं ए हरि नीर नैन का कुछ मजा निराला ही है। मृगों की क्या ताकत जो एतल सामना करें। ये तो धार कर फँकने के कायिल हँ। जैसे कि—

अति अनियारे, तारे, कजरारे, रैयु वारे,
ऐसे उजियारे, जैसे दिया वारियतु है,
रूप-रतनारे, मतवारे, प्रेम-प्यारे जी के,
कमल करारे, हारेई निहारियतु है।
धूँधट उधारे तैं निहारे नैकु "तारा", कवि,
टरत न टारे, चित्त के तौ टारियतु हैं,
धृग हँ वे दृग जोई मृग देखि रोमकत हँ,
ऐसे दृग देखै मृग-झौना वारियतु है।

—तारा कवि

तुरंग

वाजी वाजी गविन ए, तव तैं सीरे लैन,
गाहक-मन राजी करै, वाजी तेरे नैन।

कवियों ने नेत्रों की कुरंग के बाद "तुरंग" से तुलना की है इस पर भी खूब फारितियाँ उछाई हैं। अच्छे अच्छे मजमून बनत

दूरक पकड़ पकड़ कर प्रदर्शित किये हैं। दूर-दूर की कौड़ी लाये
 हैं। जैसे कि —

अरलक अग-अग सुन्दरता-जीन तापें ,
 माज सर-पासर सुआप हाथ साजी हैं ,
 लाज है लगाम, चितवन ही चारु चाल मानों ,
 भ्रुकुटी-कुटिल तापें कॅलगी छाजी हैं ।
 पूतरी-सवार सुभ लिए, चाह-चावुक कौ ,
 देखि कैं फटाच्छ-सुरी भए लाल राजी हैं ,
 नाचें मुर-कध्वन की धारी में सुभारी अति ,
 सुप्यारी के दोऊ दृग "मैन-भूप-राजी हैं" । X

X और-और कवियों ने भी इस "मैन-भूप-राजी हैं, समस्या
 अपनाया है। यथा —

सुरग दुगाम सोई, सुरमई लगाम तापें ,
 जानी आन नीलम लखे तैं जान लाजी हैं ,
 "बनी द्विज", बरनी सुरारिका यनी है खूब ,
 उज्जल अभूत कोए जीन-पोस साजी हैं ।
 चचल-चपल-चारु हरति चितवीन-चित्त ,
 करति फटाच्छ धीर कैमे मर्द गाजी हैं ,
 तातैं मन णही अनुमान में मरानति हीं ,
 तेरे नैन, ऐन-मैन, "मैन-भूप-राजी है ।"
 —बेनीद्विज

जालन में आनिकैं फँसे हैं खजरीट कियों ,
 कियों ए सरोजन की कलिका बिराजी है ,

आँस और कविगाण

फहिये, कितना सुख मय नेत्रों पर घोंडे का रूपक खारे
यही कविकी प्रतिभा है। धन्य, कवि श्री चरणों धन्य!

कैधों हँ चकोर कैधों मोर मतवारे किधों,
वारि तै निरारे कोऊ जान्यौ मीन ताजी है।
"श्रीनिधि," भनत कैधों छौना हरिनीकेबेस,
कैधों इन्हें देखिकें गयद-गाति लाजी है,
कैधों जहराले-कारे-नाग छिति मडल के,
नैन राधिका के किधों "मैन भूप-बाजी है।" X
X
जीन-द्वा अवल कमे तै रहै चचल है,
अवल सुधान पै रहत नित राजी है,
आल बरनी के, वरनी के सुख देत भलें,
कोर खुति ऊँचेइ निहारै दुनि साजी है।
अजन के चाबुक सौ चाबुक सदाँ ही रहै,
कुटिल कटाछ सुद पौन 'गति लाजी है,
रग सित अस्तित सुरग सुगकारी भारी,
प्यारी तेरे नैन किधौ "मैन भूप-बाजी है।" -कई की
X
हेरि के अमलना कमल मल ही में दुरे,
भीर भी भीत बन ही की मरा साजी है,
गवन निहारि निज खजन अदीठ होति,
पीठ दै सकुचि मीन-पान बन राजी है।
मारे कजरार वृजराज ही काँ प्यारे जिन्है,
उपमा निहारि पुहुमी की सब लाजी है,
दैन-चैन, पॅन की करति गति मैन आरि,
प्यारी तेरे नैन किधौ "मैन भूप-बाजी है।" -कई की

मौन कवि की भी वाचालता देखने लायक है, नेत्र और लाल की तुलना आपने कैसी उत्तमता से निवाही है कि कुछ हा नहीं जाता । जैसे कि —

धार-धार कोयन कर्नाती बदलत धर ,
 विमल विसाल-भाल छिति पर फेरे हैं ।
 चूकत न चाँप भरे चौकरी चलाइये मैं ,
 चतुर चलाक चित्त चातुर के चरे हैं ।
 “मौन कवि” कहैं, वाग भौहन के ठाँसे नैकु ,
 नाँचति नटा से नट निविर निबेरे हैं ,
 मैंन आतुरी से उड्यौ चाहैं चातुरी मे वीर ।
 करत खुदी से एतुरी से नैन तेरे हैं ।

—मौन कवि

कटाक्ष रूपी कर्नाती बदल-बदल धर, चंचलता की चौकड़ी भरे और भौह रूपी कर्डी-लगाम से दब धर, काम की आतुरता से उडना चाहते हुए भी भाल की भूमि पर नैन-तुरंग खूँद सी कर रहे हैं ।

मौन कवि की वाचालता तो देखी किन्तु इसी भाव पर विहारी लाल की घहादुर्गे भी देखने लायक है, यथा —

करे चाहसौं चुटकि कैँ , ररे उडौहें मैंन ।
 लाजें नवाण तरफरत , करत खूँद सी नैन । X

—विहारी

X देखिये इस दोहे पर “भारतेन्दु जी” क्या कहते ह ।

करत खूँदसी नैन, मैंइ गुर-जन की तोरत ।

लोक-लोक नहि गनत, उतैहीं हठि मुख जोरत ॥

श्रीर और कविगण

कामरूपी सगर के प्रेम का चातुक खाकर, ऊँचे उठते
राज की याग से नवरु, नैन तुरग तडफडा कर
रहे हैं, अर्थात् नाँव से रहे हैं ।

लगा है इश्क का कोडा, उठाकर सर को चलते हैं ।
इमाने शर्म से दीदे, सिमिते हैं, खिलते हैं ॥
—प्रियतम

मन सहीस, "हरिचन्द्र" बुद्ध बागहि के पत्रे ।
खरे विपस भे रहत, न राज लगामन जररे ॥

X

ध्यास जो की धानगी भी देखिये —

करत खँद सी नैन, दोऊ, मनमथ के घोरे,
राज सर्वस न रोकि सकत ऐसे मुँह जोरे ।
पुलक-बुन्द के फँन गिरावति भरि उमाह सी,
उग्रन सकत न तऊ सुकवि बल करे चाहता ॥

किसी और कवि ने भी विद्वारी के इस भाव को अपनया है।
यथा --

नैन नवनागरि के तगमे तुरग अग,
छवि की तरग इहि रंगन धरै धरै,
मदन प्रवीन तिन्हें फेरियो सधावतहैं,
धँधट की ओट ऐसे- कौतुक करै करै ।
कीन्हें चाह आगगी सी चूकिके चपल तीखे,
पद्म हैं उड़ीह ते उमग सी भरै-भरै,
राज-याग-यस तरफरत । ताई करै,
करत सुँदीसी पग धरत हरै हरै ॥

—कोई कवि

देखिये कविवर विहारीलाल, पुन. तुरग पर कैसी उत्तम
वृत्ति सृजते है कि दिलि वाग वाग हो जाय । यथा —

लाज लगाम न , मानहीं, नैना मो बस नाहिं ।

ये मुँहजोर तुरङ्ग लौ, ऐंचत, हू चल जाहि ॥ †

—विहारी

अजी ! लाज-लगाम को खींचनाही फिजूल है, भला, ये
मुँहजोर-जयदंरत—नेत्र-रूपी घोड़े किसके बस के हैं ! जाने भी
दीजिये, देखिये कहाँ जाते हैं ।

† इस दोहे पर ध्यास जी की चहार भी देखिये । यथा —

ऐंचत हू चल जाहि, चाह-चाबुक सटकाए,

मानहुँ मदन-सवार, ऐंड दे "सुकवि" उडाए ।

अँसुआ फँस गिराह रहे, फीनेँ थर-थर तन,

धूँघट-रात्री लौघत मानत लाज-लगाम न ।

×

विहारीलाल जी के इस भाग्य को कोई कधि कितनी उत्तमता
से अपनाता है । यथा —

बानन-बुट्टी घने कटक चवाई लौंग,

भारे नैदनारे दुख-सुख चहुँ ओर हौं,

"रसिक विहारी" भति अगम सनेह पय,

मुगम न जाइयी नियाह तेही छोर हौं ।

मेरी बस नाहिं गँह पेर ना रहाहीं नैकु,

रकति न रोकेँ करीँ जतन बतोर हौं,

नैना नहीं मानत है लाज की लगाम रथ,

ऐंचेँ चले जात है "तुरंग मुँह जोर हौं" ।

—रमिक

आँस और फविगण

विहारीलाल जी के इस भाव को विक्रम जी ने इस प्रकार व्यक्त किया है। यथा —

चपल-चलाकिन सौं चलत, गनत न लाज-लगाम,
रोकै नहिं क्यौंहू रुकत, दृग-तुरङ्ग गति-नाम।

—विक्रम-सनतर्

ये टेढ़ी चाल वाले (जबरदस्त) नेत्र तुरंग किसी प्रकार नहीं रुकते और लाज लगाम को जरा भी नहीं गिनते।

सवार साक हूँ, बेअस्तियार बैठा हूँ,

—कोई शासक

प्रियतम जी विहारी के उक्त दोहे का यों तर्जुमा इस तरह "दाद" देते हैं। यथा —

लगामे-शर्म ये मानें नहीं, दादे हैं बे कायू,
समन्दे बदइनाँ माँ उफ, ? तडफ जाते हैं ये बदखूँ।

—प्रियतम

सुचि मतिराम जी भी कुछ कुछ विहारी लाल के भाव को यों अपनाते हुए कहते हैं। यथा —

मानति लाज-लगाम नहिं, नैकु न गहति मरोर,
होति लाल लसि गाल के ? "दृग-तुरङ्ग मुँह जोर"।

—मतिराम

फविगर भाल जी को भी "तुरंग" तुलना ने तडकड़ा दिख आप कहने लगे कि —

सोहत, सर्जाले सित असित्र सुरङ्ग रङ्ग,
जीन सुचि अजन अनूप रुचि हेरे हैं,

1 सील-भरे लसत असील-गुन माल दैकै,
 लाज की लगाम, काम कारीगर फेरे हैं।
 घूँघट-करस / तापै फिरति फवन फूले,
 "ग्वाल कवि", लोक अविलोक भए चरे हैं,
 मोर वारे मन के, त्यों पन के मरोर धारे,
 त्यौर धारे तरुनी तुरङ्ग दृग तेरे हैं।

—ग्वाल कवि

गुनन-गरुले गग कवि की भी तुरंग तुलना अवश्य देखिये
 और सराहिये। यथा —

दीरघ डरारे, आछे डारे रतनारे लगे,
 कारे तहाँ तारे अति भारे जे सुरङ्ग हैं,
 वहाँ "कवि गग", जनु दूध ही के धोए पुनि,
 कोए निकमत सित असित दुरङ्ग हैं।
 पारद-सरस-चीर, थिर मैं थिरक जाव,
 तिरछे-चलत मानीं फूदत तुरङ्ग हैं,
 रौंघे ना रहति अनुराग हूँ की वागवर,
 भामिनी के नैन किधौ मैंन के तुरङ्ग हैं। †

—गग

† कविधर गग के इस भाष को "श्रीपत जी" की सरल
 रसना ने भी सरसाया है। और खूब सरसाया है। यथा—
 परई-भमोल तापै घरनी-सुषा सी रसत,
 लाज-वारी करै पग परम सुदग हैं,
 "धीपति" मुकवि, लीने पावरषनेई कौने,
 रधिपधि बिबना सँवारे सब भंग है।

आँस और कविगण

कवि लच्छीराम जी की भी ललना के लोचन-तुल्य
ललित-वचनावली का रसास्वादन कर लीजिये। यथा—

सुन्दर-सुरङ्ग-स्याम, करन , प्रसद बूँदे,
कानन की छोरलों अटेरनि भिरत हैं,
रुकत सँकोच तरफरत मजीले-मौज,
सराबोर स्वेद प्रैम चावुकै धिरत हैं।
वाग-पलकन के मरोरे "लछिराम" कोरे,
पी-मन कबूतर कुरग त्यों धिरत हैं,
चपल-तिरीछे प्यारी लोचन-खिलार मनौं,
मार-बरछैत के वछेरे ये फिरत हैं।

—लच्छीराम

मतंग अर्थात् हाथी

सँचे अकुस-लाज के , रूप-पलक कर हैंन,
धीरज-द्रम तोरत फिरै , गज कोमल तुव नैन । †

—रसनिधि

जाप घड़ि रूप के सुभट प्रैम राज काज,
धिरह गनीमन सौं जीत लेति जग है,
द्विन-रैन पिय मन-धीधिका में नाँचति हैं,
भामिनी के नैन किधौं मैन के सुरग हैं।

† रसनिधिजी ने दृग-मतंग पर और भी कई दोहे कहे हैं।
यथा—

नेही-रग , तन क्यों सकैं इनकी शौकें सोद ,
मत-पारे , दृग-गन वहाँ, जेमें दीजतु छोद ।

कुरग (मृग) और तुरग के बाद मतग (हाथी) लोचनों का भी मजा मनन कीजिये । देखिये, सुकवि आलम इस पर कैसी अनोखी उपज उपजाते हैं । यथा —

भूकें मुकै उमकै फिर भूमि, महा-मद-मोंते खरेई रहैं,
 टारे टारै न मदान्ध भए फिर, ठौर अरेई रहैं ।
 कुजर से हग तेरे भट्ट !, गुन के गुन-भाल गरेई रहैं,
 खून करै सन "आलम" कौ, फिर लाज के आँदू परेई रहैं ।

—आलम

आलम-दुनियाँ-का खून कर के भी लाज की वेडियों के बस पड रहते हैं । चाहजी ! आलम सुकवि ! कमाल कर दिया, और फिर "आलम" को श्लेष में रग कर तो और ही अनोखा-जादू भर दिया है ।

आलम कवि के इस भाव को रसनिधि जी यों अपनाते हुए कहते हैं कि —

अजन आँदू सौं भरे, जद्यपि तुव गज-नैन,
 तदपि चलावत रहत हैं, मुकि-मुकि चोटै सैन ।

—रसनिधि

⊙ ⊙ ⊙ ⊙
 मैन-भहावत हग गजन हुलसत वाही ओर,
 हासन में हगि हेत हैं, हियही कौ चित-ओर ।

⊙ ⊙ ⊙ ⊙
 जर छूटत भए धान सै, मत्तवारे गज-नैन,
 नेहिन-दर कौ चलत हैं, देवर डोकर सैन ।

⊙ ⊙ ⊙ ⊙
 छूटे हग-गा मीत के, बिच यह प्रेम-बनार,
 दीजो नैन-नुमान के, महकम-परक-किवार ।

आलम की अनोखी उपज के साथ, देवजी भी लोचन-मतग
पर मचल पडे और कहने लगे कि —

लाज के निगाड-गडदार, अडदार, चहूँ,
चौंकि चितवन चरणीन चमकारे हूँ
वरुनी अरुन-लीक पलक-मलक-मूल,
मूमत सघन-वन घूमत घुमारें हूँ।
रजित-रजोगुन सिगार-पुज कुजरत,
अजन सौं सोहत मन-मोहक दतारें हूँ,
“देव” दुर-मोचन सकोचन सकति चलि,
लोचन अचल ए मतग-मतवारें हूँ ॥

लोचन मतग पर श्रीपतिजी की भिफारिश भी सुन लीजिये
यथा —

मूमत मुक्त उभक्त फेरि मूमति हूँ,
मूम-मूम उठै अति वाजर तै कारें हूँ,
एँडायल, एँडदार, एँडति, अडति अति,
अगड परे तै नैकु दरति न टारें हूँ।
गह-गहे गुननि गहीले गरपीले महा,
“श्रीपति सुजान” मैंन परम सुजारें हूँ,
जग-प्रान-प्यारे, सय भौतनि सुधारे,
प्यारे, लोचन तिहारे किधौं गज-मतवारें हूँ ॥

मान पापि की भी मतग पर मनोहर-उमित मनन करते
योग्य है। यथा —

भारे-कजरारे, ढोऊ काजर सौं कारे,
 लाल सैदुर सौं चीते डोरे राजत सुपथ के,
 "मानकवि" कहत, पाँइ मरुनी-जजीर-डारि,
 करत कटाच्छ गति डोल हूल नथ के ।
 पूतरी-महावत बिराजै आडि नामिका पै,
 पीतम के प्यारे हैं लिवैया जग-गथ के,
 मौहन कौं मौहन हैं सोहैं तीरे लरिवे कौं,
 नैना तेरे ढोऊ जैसे हाथी मन-मथ के ॥

—मान कवि

मद-भोकल जन खुलत हैं, तेरे ढग-गजराज,
 आइ तमासौ जुरत है, नेही-नैन-समाज ।

—कोई कवि

मी न

नैनै-निकाई निरखि, नीर मँह भग्य दुरि जाती ,

—कोई भा० क०

यलचरों के घाद जल-चरों का नभ्वर आता है । जल-चरों में कवियों को नेत्र निरूपण पर मीन की समानता सुन्दर जैची । कारण, मीन की चञ्चलता नामी है । वस यही चञ्चलता कवि-हृदयों में गड़ गयी । फिर क्या था कहने लगे कि --

धम-चमात-चचल नयन, बिच घूँघट पट मीन ।

मानौं सुर-सरिता तिमल, जल उद्धरति जुग-मीन । †

—विहारी

† विहारी की इस सरस सूक्ति पर भारतेन्दुजी यों जडाव-जडते हैं । यथा —

श्रौंर और कविगण

भीनि (महीन) पट (घल्ल) के घूँघट में चञ्चल-नयन
चम चमा रहे हैं अर्थात् चमक रहे हैं, मानों सुर-^न

विमल-जल में दो मीन (मछलियाँ) उछल रही हों।

घाह ! कितनी उत्तम-उत्प्रेक्षा है। कैसी अनुपम
है। कवि ने क्या सहज सलोनी-सूक्त में—सूक्ति को सरसाया
धन्य विहारी लाल, धन्य !

विहारी लाल के इस भाव को एक कवि, यों अपनी
प्रतिभा से रँगकर, रखते हैं। यथा —

अति अनियारे, अरुनारे, कजरारे मजु,

कज, अलि, रजजन लजात हिय हीन है;

इनकी अनूप रीति रमिक-सुजान जानै,

“रसिक-विहारी”, सुखदाइक प्रवीन है।

चचल चपल चारु चलत चमाके नैन,

बीच-पट घूँघट के सारी सेत भीन है;

मानौ सुर-धरिता विमल-जल आनन्द सौं,

उछरत आइ फेरि-फेरि जुग-मीन है।

—रसिक-विहारी

जल उछरति जुग-मीन, रूप धारा ललचाते,
सुकति मुख तिमि निरखि, न पिय मन रहति ठिकाने।
सेत-धमन “हरिचन्द्र” धहिय तन उपमा कहि भम,
भगति बाहर प्रभा धार मुख, धमकति धम-धम।
ध्यासजी की कारीगरी भी देखिये। यथा —

जल उछरत जुग-मीन, मनहुँ नहिं ऊपर भावत,
पलक परं जनु इय-इय निज देह डिपागत।
मुखि क्यहुँ धिर रहति क्यहुँ चञ्चलता नहिं धम,
पर धरात यह भोट एतैं धमरीले धम-धम।

बूढ़े बाधा-तुलसीदासजी की भी मीन-उपमा तपीयत को नडफडाये देती है। देखिये न, क्या सरस-सूक्त के साथ सूक्ति सृजन करते हैं कि —

प्रभुहिं चितै पुनि चितै महि, राजति लोचन-लोल ,
खेलति मनमिज-मीन-जुग, जनु पिधि-मडल-डोल ।

—गुरुदास

स्वयम्बर की रग भूमि पर श्री सीता माता खड़ी है, एक तरफ मञ्च पर लक्ष्मण सहित श्रीराम विराजमान हैं, अस्तु सीताजी धार धार प्रभु की तरफ देखकर पुन लज्जा से भूमि की ओर देखने लगती हैं। उस समय आप के चञ्चल नयन ऐसे दीपे, मानों काम की दो मञ्जलियाँ चन्द्र-मण्डल पर हिडोला झूल रही हों।

कहिये कैसी अनोखी उक्ति है। समझिये, अनुमान कीजिये, और मजा लीजिये।

‘वो उसकी शर्म आलूढह, निगाहों में यह शोखी है,
इसे देखा, उसे देखा, जिसे देखा उसे मारा ।

—दाग

मीन की समता पर सत्र ने सब कुछ कहा, किन्तु बिना आँख चाले कवि कुल शिष्येमणि श्रीसूर ने जैसी “मीनोपमा” निशाही वैसी क्या कोई निगाहेगा। सत्र उपमायें रद्द कर दी, केवल मीनता ही आपको जँची। यथा --

उपमा नैननि एकु रही ,

कवि जन कहति कहति सब थाके, सुधि कर नाहि कही ।
कहुँ चकोर पिधु मुग्य विनु जीवति, भँवर नहीं उडि जात ,

आँख और कविगण

हरि-मुख-कमल-कोस निष्ठुरे तै, इत उत कत मँडराव।
 अधो-बधिक व्याधि है आए, मृग-सम क्यों न पलात,
 भाजि जाँहि वन-सघन-स्याम पै, जहाँ न कोऊ घात।
 खजन मन-रजन न होहि ए, कवहुँ नहि अकुलाव।
 पख पसारि न छिन चपला-नाति, हरि समीप मकुलाव।
 कमल न होहि कौन विधि कहिए, मूठै ही तन आडव,
 'सूरदास' मीनता कछु इकु, जल-भरि कवहुँ न छाँड़व।
 — श्री सुर

नैनों की उपमा पेचल एक ही रही, कविजन कहते-कहत
 थक गये पर किसी ने भी सुधि करके नहीं कही। देखिये
 ये "चख" चकोर कैसे हो सकते हैं, क्योंकि ये मुख चन्द्र
 भी जीवित रहते ह, और भँवर भी नहीं जान पड़ते, क्योंकि,
 वृष्ण-कमल मुख से बिछुड कर भी इधर-उधर वहाँ
 फिरते हैं। मृग भी ये नहीं हे क्योंकि हत्यारे उदघ घ्याघ को
 आया देखकर भी स्याम सघन घनमें क्यों नहीं भाग गये और
 ये खजन भी नहीं है, क्योंकि न तो ये कभी अकुलाते हैं, और न
 विजली के समान क्षण में पख पसार कर हरि के समीप ही उड़
 कर जाते हैं। ये कमल भी नहीं हैं क्योंकि ये तो द्यर्थ ही शर
 में आड (डफ) की तरह गड रहे हैं। लेकिन हों, मीन(मछली)
 समानता इन में कुछ-कुछ जरूर है, क्योंकि ये अशु-जल से
 बिलग अलग-कभी नहीं होते। सदाँ उसमें ही बसा करते हैं।
 पहिये, वियोग बद्धि से विकल धिरहिणी वजागना की, कौन
 मार्मिक उद्गारपूर्ण हार्दिक अनुपम उचित है, जोकि बहेज को
 मसरने के लिये काफी है,। अशु पूरित नेत्रों पर मीन की उपमा
 श्री सुरने वैसी फायी है कि घाह !

और भी मेरे लिये आफत का सामाँ होगाई
हाथ वह मरमूर-आँसै जब पशेमाँ होगाई ।

—जिगर

अजी महाराज ! यह तो सब कुछ है, पर इन चंचल-चर्खों की चपलता को देख कर तो बड़े-बड़े मच्छ भी पूछ पटक पटक कर इनकी समता पाने का असफल प्रयास करते हैं, किन्तु विधि की विडम्बना से लाचार हैं। देखिये न -

डारी-अनियारी तुरी तीर के तुनीर परे,
मृग-धृग मान वन, वन भटकत हैं ;
भ्रम-भ्रम भ्रगुल के कब्ज तेऊ नायौ सीस,
लज्जित चकौर है अनल गटकत हैं ।
सौतिन कै सूल, फूल लाल दिए "हनुमान",
नित रञ्जरीटन-करेजे खटकत हैं ;
तेरे अच्छ स्वच्छ लच्छ निज चच्छ तुच्छ,
कच्छ अच्छ अच्छ मच्छ महिपुच्छ पटकत हैं । †

—हनुमान

† कवि हनुमान की इस मनोहर-भूमि पर "बेनी द्विज"
की तथीयत भी मचल पड़ी। अस्तु आप कहने लगे कि -

अजन बिना ही मद-गजन है खजन के,
पकज पराजै मानि एक सटकत हैं ;
दीन भए भँवर मलीन से भ्रमोई करै,
चकित चकौर ह्ये भँगार गटकत हैं ;
खूपी कौन-कौनसी बरतान करै "बेनी द्विज",
हार मान हरिन अरन्य भटकत हैं ;

कमल

माँचे कमल से नैना, निमि दिन फूल,
 विना ताल के तौने, स्मृतिहिं दुकूल।

—रघुराज कवि

कज-मुखी कामिनी के कमलाक्षों की कल्पना पर भी कवि
 कमल का कीर्तन करते हैं। यथा -

धन्धु-विधु कोर मे चकोर कौंसों जोरा वैठ्यौ,
 कैधौ मृग, मीन वाल हित कै बढाए हैं,
 कैधौ भेन राज के जुगल-मीन जग जुरे,
 सञ्जरीट राखि मानौं पिंजरा पढाए हैं।

मिलति जियाइने कौं विहुरति मारिबे कौं,
 वानिक पिपूष पिप वोरि कै कढाए हैं,
 कैधौ त्रिधि पूरन-भयङ्क-मुख पूजा करि,
 अलिन सहित मानौं नलिन चढाए हैं।

—शेई कवि

उस कामिनी के कमलाक्ष क्या हैं, मानौं विधि ने—उसकी
 सुन्दरता से स्तम्भित हो—पूर्ण-भयङ्क-मुख की पूजा हित अलिन

भीरा रूपी पुतली के साथ नलिन-कमल चढाये हैं।
 कहिये कितनी मनोहारिणी, मनन-योग्य उकि हे। वैसी
 कलेजे में खटकने वाली कल्पना है।

रघुनाथ कवि की रहनुमाई कुछ और ही रस का आधिर्भाव
 करती हुई कहती है कि —

एच्छि-एच्छि बच्छ तरे तुच्छ जान अपने कौं,
 जच्छ भच्छ मच्छ महि पुच्छ पदस्त हैं।

अपने हाथन सौं करतार, करे प्रति ही जग-ग्रीच उजारे,
 तत ही रहिए "रघुनाथ", जुदे नहिं कीजै लगै अति प्यारे ।
 रिस सौं परि पूरन पुष्ट, पवित्र भरे रस आँनद वारे,
 रि विना उपजे अति सुन्दर, प्यारी के लोचन वारिज न्यारे ।†

—रघुनाथ

यद्यपि धारि-जल विना वागिजों-कमलों-की अति आश्चर्य से
 ललकृत उत्पत्ति रघुनाथ कवि ने उपजायी, पर दिल न भग अस्तु
 न बोले कि —

रस-भरे, जस-भरे, कहै "कवि रघुनाथ",
 रग-भरे, रूप-भरे, सरे-अग कल के,
 कमला निवास परि पूरन सुवास आस,
 भाँरते के चञ्चरीक लोचन चपल के ।
 जग-भग करत भरत दुति वीह पोखे,
 जोरन-दिनेस के सुदेस भुजगल के,
 गाहये के जोग भए ऐसे हैं अमल फूले,
 तेरे नैन-कमल अमल विनु जल के ।

—रघुनाथ

† शृगा-सतसई-का कवि रामसहायजी ने भी कमलाक्षी पर
 दो दोहे अपूर्व कहे हैं । यथा

धानन-चारी चपल हैं, कजरारे-छवि ऐन,
 ताते अमल कमल मुखी, कमल मही ए नैन ।
 कौन कहै बलि अमल से, छवित अमल सेहैन,
 ए न सारे । कमल से, चकित कमल से नैन । —रामसहाय

आँस और कविगण

घासीरामजी की घिस घिस भी कमलाक्षी को घसी
और कमल के अन्य नामों से तुलना करती हुई बोली कि -

पुडरीक, पकज, औ पुस्कर पदम-सत,
पत्रसत, सीरुह नलिन नीरवारी के,
ताम-रम, अबुज, अभोज औ सरोजपत्र,
सारम सु अवरुह, मदजुत चारी के।
“घासीराम” इन्दीवर, नीरज, जलज, विन,
कुनलै, कुनिन्द, गर-दड हितकारी के,
कोकनद, कमल, अमल, अरविन्द-वर,
कज से लमति मजु एरी। दृग प्यारी के।

—घासीराम

लेकिन मुखारकजी कहते हैं कि कमलाक्षी की तुलना
उपमानों से कुछ-कुछ उपयुक्त है, पर इनकी सामर्थ्य वहाँ
सुन्दरी के नेत्रों की स्मानता का प्रबल प्रयास करें। क्या
उनकी सुन्दरता की जरा भी हमशरी कर सकते हैं।
नहीं। देखिये न —

ताम-रस, इन्दीवर, वारिज, मरोज, मजु,
पुडरीक, पकज, कुसैसे सतपात हैं,
कोकनद, नीरज, नलिन, कज, कुनलय,
पाथिज, अरविन्द, श्री मदन सुहात हैं।
अमरुह, अबुज, सनेही-भौर, पकरुह,
पकज, जलज, वारि-जात सरसात हैं,
एते नाम नीरज हैं “मुनारक” निहारे नैन,
पद-पत्र प्रहर वारि जात जलजात हैं।

—मुनारक

मुबारक-महोदय की हाँ में हाँ मिलाने हुए शम्भुराजजी कहते के कामिनी के नेत्रों की उपमा कमलों से हो ही नहीं सकती, वरुण मधुराई इन नीरसों में कहाँ। यद्यपि ये उन नेत्रों की शानता पाने का बड़ा प्रयास करते हैं, पर उन डह-डहे लोचनों देखकर कमल मुँद-मुँद जाते हैं। यथा —

मीन है अधीन जाइ जल में छिपाने, मृग,
वनन पराने त्रिन दौतन चवाति हैं,
“समुराज” भारे निन काजर के कारे देखि,
रज्जन नचति ना कैंपति हाहा खाति है।
भोरै हूँ जु प्यारी कहूँ अजन सजति मार,
वाँन हूँ लजित है कै नीरन समाति हैं,
केहूँ विधि दृगन सकत नहिं तूल यातै,
फुल-फूल कज-मुख मुदि-मुँदि जाति हैं।

—शम्भुराज

कामिनी के कमलाक्षों पर किसी संस्कृत कवि ने भी क्या ही झूठी उपज उपजायी है। यथा —

नयन तव देवि । वर्णरीते, विपरीतेपि विपर्यय न एते,
कमलन्तु तमेति कजगेहे कथमाहु समिताद्द्विन्द्रा ।

—कश्चिन्कवि

हे देवि ? तेरे नयन × विपरीत वर्ण रीति से भी विपर्यय को

× नयन, शब्द की व्युत्पत्ति पर रसनिधि जी ने अपने रतन हजारा में दो दोहे बहुत ही उत्तम कहे हैं। यथा —

—आपु एगत दंचति मनाहि, “रसनिधि, “कर बिनु दाम,
नैननि में नय नाहिनै, यातै नयना नाम ।

अँस और कविगण

प्राप्त नहीं होते, अर्थात् "नयन" ही रहते हैं, फिर न कविगण क्यों कमल और कज के समान नयनों को हैं। अर्थात् नयन शब्द को उल्टा पढ़ने पर भी 'नयन' हा जायगा, विक्षत न होगा, और कमल-कज आदि उल्टे पढ़ते कमल कज आदि न पढे जाँयगे, अर्थात् विपर्यय को जाँयगे, उनका स्वरूप बिगड जायगा।

कवि कुल गुरु कालिदासजी भी कमलाक्षी पर क्या विचित्र उक्ति कहते हैं। यथा —

कुसुमे कुसुमोत्पत्ति श्रूयते न च दृष्यते,
बाले। तत्र मुखाम्भोजे, कथमिन्दीवर-द्वय।

—सङ्घातिलक

अर्थात् फूल में फूल की उत्पत्ति सुनी तो जाती है, किन्तु देखी नहीं गयी। किन्तु हे बाले ! तेरे मुख कमल पर नेत्र-रूपी सुन्दर नील कमल किधर से पैदा हो गये।

धन्य, कालिदास जी धन्य ! यह आपकी ही परम पुनीत प्रताप है कि ललना के मुख-रूपी कमल पर नेत्र-नील-कमल की क्या उत्तम-उपज उपजायी है।

रूप-सरोवर माँहि ए, फूले नैन-सरोज।

ताहित अलि-नेही इहाँ, आवति दौरे रोज ॥

—रसनिधि

×

छाँनी छवि मृग, मीन ही, कड़ी कहीं की रीति ।
नामदि में गहिनीत सौ, वरु "नयन" का नीति ॥

खजन

चचल नैनि चहूँ दिसि चितवति, जुग खजन अनुहारि ।
मनहुँ परस्पर करति लराई, कीर वचाई रारि ॥
—श्री सुर

कामिनी के कमलाक्षी की कारीगरी कवि-जगत द्वारा निरख
नभ चरों में पहिले खजन और आँख की खूबियाँ भी खयाल
जेये । यथा -

खजन-नैन रूप-रस-माते,
तिसै चारु चपल-अनियारे, पल-पिंजरा न समाते ।
लि-चलि जाति निकट सवनन के, उलट-पुलट ताटक पदाते,
"सूरदास", अजन-गुन अटके, नतरु अवहि उडि जाते ।
—श्री सुर

काहिये कितनी सरस सूचित हे । कितनी उच्च-उत्कृष्टा हे ।
तनी पवित्र प्रणय परीक्षा हैं । अजन की अनोखी रस्ती कवि-
सार में कितनी मजबूत होती है कि क्या कहा जाय ! भला
जन उडकर जायेंगे ही कहाँ, क्योंकि एक तो अजन की रस्तीली
सी से अटक रहे हैं, और दूसरे रूप-रस दाना भी यहीं पडा
फिर क्या ताकत जो कहीं चले जाँय ।

काधिवर रघुनाथजी भी आँख और खजन पर खूबही
प्रेयाँ खचित कर-कर कहते हैं कि -

ई हों देखि सराहे न जानि, सो या त्रिधि घूँघट मे धिरके हैं ।
तौ ये जानी मिले दोऊ पीछे है, कान्ह लरै उनकाँ हरके हैं ॥
न तै रुचितै "रघुनाथ", वे चारु चितै चित ताक तके हैं ।
अजनवारे, किधौँ दग-प्यारी के, खजन प्यारे विना पर के हैं ॥

—रघुनाथ

श्रॉख और कविगण

अजन से अलकृत श्रॉखें उस प्यारी की ऐसी अतोला
होती थी, मानों रिना परनाले दो प्रिय-खजन खचित हों।
रघुनाथ जी के साथ सुकवि श्रीनिधि जी की भी सरल
सराहने लायक है। आप कहते हैं कि -

श्रीनिधि अति छवि दैहिं, श्रॉखियाँ यों अलकन तरै,
खञ्जरीट गहि लैहिं, मदन-बधिक जनु जाल तै।

—श्रीनिधि

अर्थात् काली-काली कुटिल अलकावली के तरे-तीरे
ऐसी छवि शोभा-दै रही हैं, मानों मदन-कामराज-बधिक
अलकावलि-रूपी जाल द्वारा दो खजन पकड रखे हों।
एक दूसरे कवि की भी खजन पर अजूबी उपज का उ
जा फर्माइये। यथा -

कैधों विवि चातक सिंगार-रस बोरे वीर,
कैधों स्याम सारस की स्यामता सु छोरी है,

कैधों री मलिन्दन कौं मान धरजोरी लखु,
भोरी मति भोरी भई मृग-सुख थोरी है।

स्याम-रग चोरी करि लोचन निजोरी किधों,
कियों दृग श्रॉजि वह कीरत किसोरी है,

पद्मन बटोरि वसे पीवन सुधा कौं किधों,
अह्न में मयङ्क के सुरजजन की जोरी है।

—श्रीनिधि

अर्थात् ये श्रॉख नहीं हैं, किन्तु सुधा के पीने की चाह
ने वाले पलों को बटोरे मयङ्क (चन्द्रमा) के अरु (गोरे) की
अजन की जोड़ी सुशोभित है। और कुछ न समझना।

बरशीजी की बहादुरी का भी विस्मिता देखिये, और देखिये
 उन और आँख को तुलना का तिलस्माती वर्णन । यथा —
 इममति दिपति देहि दामिनि सी, चमकत चचल नैन ,
 घूँघट-विच सज्जन से खेलति, उडि-उडि दीठ लगै न ।

—बरशीजी

यह सब कुछ है, पर अरुण-कोरों से कलित चञ्चल चखों पर
 लीनर्जा ने सज्जन की समता कैसी सुन्दर सजाई है कि वाह !

॥ —

राते-डोरन तै लसत, चर-चचल इहि भाइ ।
 मनु विनि-पूनी अरुन में, सज्जन X वाँधे आइ ।

—रसलीन

अर्थात् लाल लाल डोरों से रञ्जित चख-चञ्चल इस प्रकार

† रसनिधिजी ने सज्जन और आँख पर अपनी सूक्त यों
 डायी है । यथा —

वरजे बुध-थल ना रहै, सज्जन नैन भुलाई ,
 अटके तिल-धुनि-लालचन, जुल्फ-फँदा में जाइ ।
 इग-सज्जन औचक फँसे, धीच जुलुक के जाट ,
 भावै इनकीं करि जियै, भावै इन कीं पाल ।
 रक्त न सज्जन-नैन ए, जतन कीजियतु कोर ,
 प्रीतम मन-तन चलति हैं, पर पिजरन कीं तोर ।
 विधिवत छवि के फद सौं, नेही मन अभिराम ,
 सज्जन रग लखि मीत के, करत अधिक के काम ।
 धिरकत सहज-सुभाव सौं, चलत चपल-गन सैन ,
 मन-सज्जन रिझगार ए, सज्जन तेरे नैन ।

आँग्य और कविगण

शोभा दे रहा है, मानों पूर्णिमा के नगरीन उदित
में दो खञ्जन लाकर घाँध दिये गये हों ।

लेकिन सुफवि श्रीपतिजी को खञ्जनाक्षों पर घडा झम
रहा है । आपकी समझ शरीफ में ही नहीं आ रहा है ।
दग हें वा दग-से खञ्जन है, अस्तु आपकी मुखरता का
हिजा फर्माइये । यथा --

काम-कटारे से कारे हें नैन, कि कारे हें नैन से काम-कटार
मोती-ढरारे से नैन ढरारे, कि नैन ढरारे से मोती-
"श्रीपति" राइ, लुभाइ लुभाइ रह्यो लखि कै इहि चावुक ल
खजननारे से नैन तिहारे कि नैन तिहारे से खजननारे

— श्रीपति

तोपनिधिजी कहते हैं कि श्रीव्रजेश्वरी राधिका के लक्ष
नेत्रों को देखकर विचारे खञ्जनों को बड़ी-बड़ी खराबियाँ सार
पडती हैं । फिर भी ललित लोचनों की बराबरी तो क्या, उन्
पासग भी न पा सके । यथा —

देखि अरुनाई, करुनाई लगै कजन कौं,
मृगन गुमान तजि लाज लहिये परी ।
"तोपनिधि" कहैं अलि-धौनन हूँ दीनताई,
मीननि अर्धनताई हारि हहिये परा ॥
चरचा चकोरन की, फोरनारे फोरन सौं,
कविन हूँ कवित्त में गरीनी गहिये परी ।

आई चोर चचलाई राधिका के नैननि मैं,

सास सखरीटनु सरावी सहिबे परी ॥ ४

—तोपनिधि

संस्कृत-साहित्य शिरोमणि, कवि-कुल गुरु कालिदासजी नेत्र खञ्जन पर क्या ही उत्तम उक्ति कहते हैं। देखिये —

एकोहि सखनवरो नलिनीदलस्थो,

दृष्ट करोति चतुरगवलाधिपत्य ।

कि मे करिष्यति भवद्वदनारविन्दे,

जानामि नो नयन सखनयुग्ममेतन् ।

—शृङ्गार तिलके

आप कहते हैं कि हे अरविन्द चन्द्रमा के समान वदनवाली ! इन्ती अर्थात् कमल दल पर बैठा हुए एक ही खञ्जन को देखने — मनुष्य चतुरगिनी सेना का अधिपति हो जाता है, किन्तु () तेरे मुख-कमल पर दो नेत्ररूपी खञ्जनों को बैठा देख (हैं, न मानूँ यह क्या करेगा, सो मैं नहीं जानता ।

४ तोपनिधिजी के साथ साथ एक दूसरे कविजी भी इस उ को अपनाकर, यों विभूषित करके कहते हैं कि —

कधीसी रहत अरविन्द की सु आभा,

महबूबी मृग-दौनन की छाम करियतु है,

दूरी बन-वीथिन चकोर-चरताइ मन,

सूरी सुरगा की तमाम करियतु है ।

दूरी जल जोरन सौं मीन बरजोरी सोम,

शौर मगसूरी षडनाम करियतु है,

दत्त दैति तारी भैरवानी की अजूबी प्यारी,

राखी गम्हारिणी का प्याम करियतु है ।

सगुन शास्त्र के विद्वानों का यह अभिमत है कि यदि कौं मनुष्य कमल-दल पर खञ्जन को बैठा हुआ देख ले तो वह चक्र घर्तीराजा हो जाय, अथवा ससार प्रसिद्ध पुरुष हो जाय। अस्तु इसी घात को कवि-कुल-गुरु ने अपनी अति उत्तम अनूठी उक्ति के सहारे प्रसिद्ध प्रतिभा के साथ रंगकर दुहराई है।

पुनश्च —

ये-ये खञ्जनमेकमेव कमले, पश्यन्ति दैवात् क्वचित्,
ते सर्वे मनुजा भवन्ति सुतरा प्रख्यातभूमिभुज।
त्वद्वक्त्राम्बुज-नेत्र खञ्जन-युग, पश्यन्ति ये-ये जना
स्तेते मन्मथवाणजालनिकला, मुग्धे किमत्यद्रमुत।
—कालिदास

जो मनुष्य अकस्मात् भी कमल पर बैठा हुआ एक ही खञ्जन देख ले, वह ससार प्रसिद्ध पुरुष अर्थात् राजा हो जाता है, किन्तु तेरे मुख-कमल पर दो-दो खञ्जनों को बैठे देखने वाले जो मनुष्य हैं, वे हे मुग्धे ! सब मन्मथ-कामदेव-के बाणों से ध्याकुल हो जाते हैं, यह क्या आश्चर्य है।

निराल अब तीर सीने से, कि जाने पुर अलम निकले,
जो यह निरले तो दम निकले, जो दम निकले तो जाँ निकले।
—दाग

चकोर

देखन है मुख-चन्द्र कौं, नैन चकोरन नैकु
—रसनिधि

खञ्जन की खूबियों के बाद चख-चकोरों की चर्चा-चलान कुछ अनुचित न होगा। अस्तु धी "सूर" की सरस-सूक्ति चख चकोरों पर सुनिये।

यथा —

मेरे नैन चकोर भुलाने,

अह-निसि रहति पलक सुधि विमरै, रूप-सुधा न अधाने ।

पल, घट, घरी, जाम, दिन, निसि, मत्र, जुगही जुग वर जाने ,

स्वादु पन्थौ निमिपौ नहिं त्यागति, ताहीं मॉक समाने ।

हरि-मुख-त्रिधु पीवत है व्याकुन, नैरहु नॉहिं थकाने ,

“सूरदास”, प्रमु निरसि ललित-तन, अग-अग अरमाने ।

—श्री सूर

इस पर टिप्पणी व्यर्थ है। इस रस के अधिकारी सहृदय सज्जन ही हैं।। क्षमा करियेगा।

काग

नैन काग लखि री । ललित, ठानत अपनी ठानु ,

—रसिक

श्री सूर ने चकोर-चर्चा के बाद, काले कनूटे-काग को भी कमलाक्षी की समानता देने के लिये नहीं छोडा। अस्तु आप आँस और कौप पर कितनी सुन्दर उपमा उपजाते हैं। यथा -

नैन भए री । हित के काग ,

उड़ि उड़ि जाति पार नहिं पावैं, फिरि आवैं इहि लाग ।

ऐसी दसा देखु री इनकी, लागि लगे पछितान ,

मो बरजति बरजति उठि धाए, नहिं पायौ अनुमान ।

वे समुद्र ओछे वासन ए, धरै कहां सुख-रास ,

सुनहुँ सूर ए चतुर कहावति, वह छवि महा-प्रकास ।

—श्री सूर

मधु-मक्खी

हित-रस-लालच-पगी, वेसु मधु-मखियाँ अँखियाँ,

—माकुल

कवि-जगत ने अँखों पर जो-जो अपूर्व-उपमायें उपजायीं
और उनका जैसा कुछ साम्य सरसाया है वह सब हृदय हल
को हकीकत न पर्याप्त हैं। श्रीयुत द्रव डी, इन्हीं नेत्रों की तुलना
कुन्ना, तुरग, मतग, मीन, कमल, खजन, चकोर, आदि के साथ
नहीं सी मधु मखिया से भी करते हैं। कैसी विपम-कल्पना है
कैसी गृहस्यमयी अनूठी उपमा है। कितनी आश्चर्य-मयी उपमा
है। यह सब कवि समार को ही स्रभय हैं। उन्हींके अनो
३- रा शक्ति सुरम्य अराडा है। देखिये —

धर + धाइ धँमी निरधार है, जाइ पँसी उक्सीं न अँधेरी,
भराच गिरी गहरी गहि, पंरै पिरिं न धिरीं नहि धेरी।
इ अपूर्ण। दग्ग न रस लालच लालचितै भईवेरी,
ता दूडि न, दैरि या, अँखियो मधु की मँखियाँ भई मेरा।
—देव

कहिये रस-लालची मधु मखियाँ के साथ आँख का क्या है
द्रुमुत साम्य सरसाया है ! याह क्या कहना है, और फिर रस
लालच का फन्दा अलग ही गजय इ-न रहा है। हृदय को
डुलसा रहा है।

उम चश्मे-मै फरोश से, कोई न द्रव सका
तो व-धर + गि 1-न-रुध था।

—निगार

सम्भिलित उपमायें

कञ्जन, खञ्जन, मिरग, माल, मट गञ्जन छवि ऐन ,
लसत मैन-मद ऐन से, तरनो नरे नैन ।

— श्यनारायण

कुरग, तुरग, मतग, मोन, मफ्फा, कण्ठ, खजन, चक्रोर
दे न जाने क्या-क्या उपमायें कवियो ने आँखों पर डी हैं।
वै क्या थीं, मानों भगवान का विराट् स्वरूप था, कि जिसमें
राचर समा दिया। नुामयश् सी लगा दी। मीना राजार
उ दिया हे। आप भी देखिये और उसका मोठा-मजा लूटिये ।

॥ —

छपि बाल घर, सील-माहव के घर,
पीय-मन मीन-सर सर कामदेवतन के,
चातुरी के, पारके, मिंगार के कुमार किधौं,
खञ्जन के अवतार रजन अबन के ।
रथ हैं मनोरथ के, वाहन से ऐन-मैन,
“नीलकठ” ऐसे नैन कोम के वरन के,
भौरन के भूप, चारचक्र वेस कारन के,
हरिन के हाकिम, कुटम्बी कमलन के ।

—नीलकठ

इसी भाव पर मुखारक की मन मानी का मनोहर मजा मनन
देजिये और सराहिये । यथा —

पानिप के पुज, सुधराई के सदन-सुरा,
सोभा के समूह, सावधान मन-भौज के,

लाजन के लाडिले, पिरोहत प्रमोदन के,
 नेह के नकीच, चक्रवर्ती चितचोज के ।
 दया के दिवान, पतिव्रत के प्रधान पूरे,
 नैन ए “मुजारक” विधान नव-रोज के,
 सफरी के सिरताज, मृगन के महाराज,
 साहिव सरोज के, मुसाहिव मनोज के । ❀

—मुवारक

देव जी की भी दूरन्देशी पर दृष्टि डालिये और देखिये कि
 थीमान् क्या अपूर्व छटा झिंकाते हैं । यथा —

चन्दमुखी तेरे चर, चितै, चकि, चेत, चपि,
 चित-चोर चले सुचि सोचन डुलत हैं,
 सुन्दर, सुमद, सविनोद, “देव” सामोद,
 सरोज सचरत हॉसी लाज-त्रिलुलत हैं ।

❀ मुवारक जी के मनोविनोद के साथ ‘वल्लभ’ की धावाएत
 देखिये । यथा —

आज-मैन आज हैं रचिरताई के निलय,
 सौभा के अदार अमीर मनमोज के,
 नेह के निधान औ निधान पतिदेयन के,
 गुन के वजीर, औ मुनीम चितचोज के ।
 मीनन के राज, सिरताज हरिनी मन के,
 “वल्लभ” मण-मण प्रधान रति फौज के,
 राज के जहाज, महाराज सुभ-वजन के,
 खजन के नायब, मुसाहिव मनोन के ।

—वल्लभ

हिरन, चकोर, मीन, चञ्चरीक, मैन-वान,
 खजन, कुमुद, कञ्ज-पुञ्जन तुलत हैं,
 चौकत, चकित, उचकति औ छकित चले,
 जाति कल्लोल सङ्गलति मुकलत हैं ।

—देव

शिवनाथ जी की सिफारिश भी सुन लीजिये । यथा —

कैधों खञ्जरीटन की चपलताई छीनीं हैं,
 कैधों चञ्चरीकन-कजराई छाइए,
 कैधों प्रात-खजन की स्वच्छता ललित छीनीं,
 लाज कौं समैटि विधि लोचन ललाइए ।
 चतुर-चलाके, धाँके, सहज ही उमकि-भाँके,
 वै नई सरस किधौं मैन-सर पाइए,
 हँसि-हँसि हेरि-हेरि फेरि-फेरि "शिवनाथ",
 हरि सौं हिरन-नैन नैकु ना दुराइए ।

—शिवनाथ

नगी कवि का निनाद भी निरखिये । यथा —

मृग के से, मीन के से, खजन-प्रवीन के से,
 अजन सहित सित-असित जलद से,
 घर से, चकोर से, कि चोखे कडे कोर से,
 कि मदन-भरोर से, कि माँते राते रद से ।
 "नवी कवि", नैन से कि आँरें नैन-नैन से,
 कि सीपडे सलौना मधि राखे मृग-मद से,

पय से, पयोधि से कि औरै सोधि-मोधि से,
 कि कारे भौर के से कि अनियारे कोकन्द से।
 —रती

श्रीपति जी की सफलता भी सगहिये । यथा —
 सञ्जन के प्रान, पिय-पिरह-तिमिर-भान,
 मीनन के मान, धनप्रान मन मथ के,
 सोभा के सिंगार, रूप-थार के डरार मौंती,
 सील-सरदार, फौजदार प्रेम पथ के ।
 “श्रीपति सुजान”, लौंने-लोचन गुमान भरे,
 सुघर बहल-थान रति-रानी-रथ के,
 रस बहुरग-जाल, जोति के कुरग-माल,
 कञ्ज से विसाल, महिपाल मनमथ के ।
 —श्रीपति सुजान

एक और कवि की कल्पना को खयाल फर्माइये । यथा —
 सुरमा के घर पूरे, पानिप के सरवर,
 आसन-अनूप हर-रूप प्रिसराम के,
 चातुरी के चार फला, बेलि के अपार हाव,
 भाव के भँडार पाये इन्दीवर दाम के ।
 रति के रतन-जाल, मोहन के मूल-माल,
 राजत रसाल, हँ निमाल नैन वाम के,
 मीन के महीपति हँ, सञ्जन प्रभा के पति,
 मृग के सलामत, सतावत हँ काम के ।
 —श्रीर कवि

श्री सूर ने भी-आँखों पर-सत्र उपमाओं का अपूर्व अर्क खींच कर एक ही पद के प्याले में भर दिया है। गागर में सुधा-सागर को सँमाने का सरजाम कर दिया है। देखिये न —

देखि री । हरि के चचल-नैनि,

रजत, मीन, मृगन-चपलाई, को पटतर इन-सैनि ।
 राजिव-दल, इन्दीवर, सतदल, कमल कुसैमे जाति,
 निसि मुँदि, प्रात पाइ पुनि विकसति, ए विकसति दिन-राति ।
 अरुन, स्याम, सित भनक पलक पै, को बरनै उपमाइ,
 मनौ सरसुती जमुन गगमिलि, पावन कीन्हों आइ ।
 अबलोकन, जलधार-तेज अति, तहाँ न मन ठहरात,
 “सूर स्याम” लोचन अपार-छत्रि, उपमा सब मरमात ।

—श्री सूर

श्रीसूर के साथ साथ श्री भट्ट जी को सरस सूक्ति भी भुलाने कायक नहीं है। देखिये कैसी अनुपम उक्ति है। यथा —

नागरी । नैन तेरे अनियारे,

अति अनूप-निजरूप निहारे, परम-प्राणप्रिय प्रीतम प्यारे ।
 धुँडुँटि-भरोरनि, गूढ-भाव-भरि, डोरा कोर प्रैम-फँद धारे,
 अरुन-वरनि, पेंने रस-भँनि, चिकने ललित प्रीत पन-वारे ।
 पलक-लालक, मनु अलिन-नलिन ए, प्रात मुदिन-हित पर-पसारे,
 अजन अमिल-रेखु ईपद लसि, वस नागिन मनौ रजत-वारे ।
 चचल, कमल-अमल परिफुलित, अद्भुत-गति निररत रस-भारे,
 “श्रीभट” सुरत-समर में कोविद, सुरति न नैकु समर-रति-व्यारे ।

—श्री भट्ट जी

नारायण स्वामी भी नद नदन के नैनों का निरूपण, अतिरिक्त मिठास भरी शिष्यायत के साथ, अपूर्व अदाफा करते हैं। जैसे कि

नद-नँदन के ऐसे नैन,

अति-छवि-भरे, नाग के छौंना, डसति उमै करि सँन।
 इन सम साँवर-मत्र न होई, जादू, मत्र, जत्र नहिं कोई,
 तनक-दृष्टि में मन हरि लैहैं, करि डारै वे चैन।
 चितवन सौं घाडल करि डारै, इन पै कोटि घान लै वारै,
 अति-पैने तिरछे हिय कसकै, देति खास नहिं लैन।
 चचल-चपल, मनोहर-कारे, राजन मीन-लजावन हारे,
 "नारायन", सुन्दर मतवारे, अनियारे दुरादनै।

--नारायण स्वामी

रूपक और उत्प्रेक्षाय

कवि-कलाधरों ने आँखों को अनेक रचिर रूपक और अनुपम उत्प्रेक्षाओं से रजित कर घ रमणीय बना कर रसिक-हृदयों को हरने को हाजिर कर रखी है। उनमें सबसे प्रथम यादशाही कथखान देखिये, और सराहिये उनकी परमोज्ज्वल प्रतिभा को जिनकी सूक्त की सराहना सहृदय सौ-जान से कर रहे हैं। अल देखिये —

सिपर सुपूतरी कृपान-कल-कज्जल त्यों,

दल-बहुनीन के छवीले-छैल-छाजे हैं,

"कहैं पदमाकर", न जानी जाति धौंन पै धौं,

भौहन के धनुप-चितौन सर माजे हैं।

घेरन्दार घूँघट-घटा के छाँह-गीर तरें,
 मदन-वजीर के लिएँ ही मंजु-मौजे हैं,
 बरत-बुलन्द मुग-चन्द के तरत पर,
 चारु-चर-चचल-चकता है विराजे हैं।

—पद्माकर

सम्पूर्ण-पृथ्वी पर चकता अर्थात् बादशाह ही बडे होते हैं। चक्रवर्ती ही आदरणीय हैं। अस्तु पद्माकर जी ने अपनी अपूर्व प्रतिभा का परिचय बादशाह, और नेत्र की समता के सहारे कैसा सुन्दर दिया है। बादशाही सारा सामान नेत्रों में ही सुसज्जित कर दिया है। यही कवि की अनोखी-उपज है। यही उसकी प्रगाढ़ प्रतिभा है। यही उसकी सजीवता है।

पद्माकर जी का प्रताप तो परखा ही, अब जरा बेनी द्विज के बादशाही घर्णन का मजा लीजिये। यथा —

कोए जनु तरत विछे हैं चारु-हीरन के,
 मानिक से मानौँ लाल-डोरे ए घनेरे हैं,
 मरकत-मनी सी राजैँ पूतरी-प्रवीन-जादी,
 भौँहें मुलतान की कमानैँ लिये नेरे हैं।
 “बेनी द्विज” पलक-पियादे उठैँ जाही ओर,
 ताही ओर काँपत भुवाल बहुतेरे हैं,
 आलम-पनाह औ उछाह-भरे आठौँ जाम,
 प्यारी-प्रवीन बादशाह नैन तेरे हैं। ७

—बेनी द्विज

७ कविघर रामानन्द जी शीघाँ निघासी ने भी “बेनी द्विज”

इसी भाव पर हरिऔध जी का आनन्द भी उमड़ पड़ा।
 अस्तु आप का अपूर्व बादशाही वर्णन भी देखिये। यथा —
 उडिगे चकोर, मोर, राज, सिली मुख जोर,
 जगल गे उरग, तुरग, मृग-दीप-नाह,
 माल मारि, मन हारि, कज कारि बूडे नाह,
 ऊपर परीन की परीन की परीन आह।

की इस समझ्या "बादशाह नैन तेरे हैं" को अपनाया है और खुद
 अपनाया है। यथा —

सीस फूल गार सोई खूरज मुख सँवारे,
 अरी ! जलक पताका फहरावत घनेरे हैं।
 धूँघट बँदोना चार, मोंनिन की झानरैं,
 कपोल गुलगादी दिऐँ तिमल बसेरे ह ॥
 "रामानन्द" परदे पलक अबलुले राखे खूब,
 मदभरे कोण लाल मुखमा के घेरे हैं,
 चाह भरे पालत हरत सिरजत नेह,
 सजुत उमाह बादशाह नैन तेरे हैं ॥

X

नीमजौँ है सैहडों, हजारों त्रिस्मिल देखे,
 आपे जो निगाह तले सामत के घेरे हैं,
 लाउ डारे काँसी ह, कमान भोंहें खम खाण,
 तिरछी निगाह तलवार सान फेरे ह।
 जादू का असर है इशार में तुम्हारे जान।
 "रामानन्द" काकुल ये काँहें को त्रिदेरे हैं,
 मिजगौँ सिपाह की कतार परा बाँधें सडो,
 जालिम जरूर बादशाह नैन तेरे ह।

“आँध” कल कल यों बहाल हरि हाल-लाल,
 सौति-साल बोल-बाल आह, आह, वाह, वाह,
 लसत, ससत, दमसत एतसत, भाव,
 बसत-बलन्द प्यारी तरे नैन-पातसाह ।
 हरि ओध

नवाब

कोएन की कुरसी किए, बैठे नैन-नवाब,

--रसिक

आँख और बादशाह का तो विश्व विदित साम्य भरा रुचिर-
 रूपक देखा ही, अब जरा नैन नवाब या गिराला ढग निरखिये ।

यथा--

सुजनी-चिकन की बिल्लाएँ डोरे-लाल-लाल,
 तक्रिया-महात्म कौ सोभा अपार है,
 चचल-चितौन-अरज-बेगि बेगि आवै जाइ,
 पलकै दुआर ठाढे धरनी-चोबदार है ।
 बकसी, दिवान दौऊ कोए वान लागत है,
 अजन के दमसत सौं मिद्ध कार-वार हैं,
 लाज औ सकुच ही हजूर के सदाप खासे,
 प्यारी के नवल-नैन नवाब नामदार है ।

--दोहरे कवि

आँखों में जो लाल लाल डोरे हैं दा। मानो सुजनी (एक प्रकार का दिछौना) है, महात्म की तक्रिया है, चचल चितवन ही अजीनयोस हैं, और पलक-रूपी दरवाज है धनी ही चोबदार हैं,

दोनों कोये बरुनी और दीवान है, काजल रेख ही हनुपे इम
के दस्तखत हैं, लज्जा और सकोच लिदमतगार हैं, अस्तु एसे
जाना जाता है कि प्यारी के नवल नैन क्या है मातों नामी नाम
दार-नगर हैं ।

फहिये नवाब होने में कुल्लु फसर है, साजो-समान भी सुसजित
है । अस्तु आइये और भुक् भुक् कर नैन-नवाब की श-श-श
तीन बार कुन्नसे बजाइये ।

सुरुवि परमेश भट्ट जी भी, नैन नवाब की निपली बग
पर विमुग्ध हो, कहते है कि —

कोएन की कुरसी पै करके कुमाच वैठी,
बरुनी बरीप वीर बिलसन घेरे हैं,
पूतरी प्रगीन सोई पातुरै बिलोकियतु,
पलकन प्यादेन के पेखियतु फेरे हैं ।
चारु-चचलाई चोपदार हैं महेश बेस,
कहे "परमेश", डिठि भौहन के डेरे हैं,
आब-महताब-भरे किम्मत-किताब धरै,
मानति न दाब ए नवाब नैन तेरे हैं ।†

—परमेश भट्ट

† 'नवाब नैन तेरे हैं', इस सरस पूर्णि पर पजनेसजी का
प्रताप भी परखिये । यथा —

छाल-छाल डारे राजें तीछन कटाच्छ बान, शुकुडी कमान सी हरति मन मेरे हैं,
कैयी अनियारे, चटकारे, सुल कारे, भारे, अति हित कारे नन्दलाल मन-वेरे हैं ।
"भने पजनेस" कजरारे अति सान धरे, अजन बिराजै देन मैन छवि घेरे हैं,
छाज-भरे सैन, सुखदेन अनुराग-भरे, सुख महताब सौ नवाब नैन तेरे हैं ॥

नवाग्री के दिन गये, समय की शोहरत के साथ मामला ही
 ट गया। नवाग्री को वू विसपनी पडो, और ठीक भी है, क्यो-
 जो ऊंचे चढ़ते हैं वह किसी न किसी दिन नीचे अवश्य ही
 खते हैं। यस यही हालत हूजुरेवाला नैन नवाय की हुई, आप
 नवाग्री के घजाय सिपहगीरी में तयदील होना पडा। यथा —

काजर-श्वच किणें वरुनी के सर लिएं,
 भौहें-धनु तानें जैतवार जग-ऐन हैं,
 यौकी, सुधी-चितवन की तीछन तरवार बाधें,
 करैं आधौं-आध प्राण मारत डरें न हैं।
 इनकी कजाकी आगै कछु ना कजा की चलै,
 दोऊहाथ एतौ बाहू दुस-दैन हैं,
 "उद्धव" कहति, एँठे गँठे से रहति नित,
 काम-बादसाह के सिपाही दोऊनैन है। †

—ऊधोराम

† 'सिपही दोऊ नैन हैं', इस भूमि पर अन्य कवियों ने अपने
 अपने मनोहर महलात खडे किये हैं। उनका भी मुलाहिजा
 तर्माइये। यथा —

जोमबारे जालिम, जहाँन, जहरीले घर,
 बाँके सान-सौकत में धीरता के पूँन हैं,
 बाँधे स्याह, सिफर, सुकेद, पोस एनी खूब,
 काजर की काती लिएं काटें करि सैन हैं।
 भौहन-रुमान धान-बरुनी चदाह तान,
 भारत हिणु में भान मानी तीर-नैन हैं,
 जाही ओर हेरति, हवाईं होति ताही ओर,
 साही-जोवन के सिपाही दोऊ नैन हैं।

—कोई कवि

बाँस और मविगण

अरे भाई सिपाहियों का तो काम ही पेंटना और मल मारना है, जहाँ देखिये वहाँ इसको छटपटी चर्चा है, और फिर ठहरे काम-बादशाह के सिपाही, इनका तो कहना ही क्या, ये तो ब्रेन फ्रैक्चर घड़ी थोड़ा। अच्छा ऊधोरामजी महाराज अगर घपते हैं तो पेंटने दीजिये, क्योंकि यहाँ तो श्रीमान् —

×

फजल इलाही है जयान आन-सानवारे,
 बाँके घड़े वीरता के मानों रास-रंग है,
 नौकरदार घरनी सी बरछी लिपें हैं बस,
 अजन-अनूठी-सेग धारें करै सैन है।
 पलक धरैती सौ करिया घाट हासन में,
 आलम "निवाज" दैनहारे सुस-बैन है,
 बादशाही-जोयन के जगी है सुलसदार,
 सुघर-सहाही सौ सिपाही दोऊ नैन हैं।
 —निवाज

×

भृकुटी कमान निगाह भारत हैं धान गोया,
 पलकों के मोरचे पँधे ही दिन-रैन हैं,
 पूतरी की ढाल बाँधौ सेत-तरवार कोए,
 सुरमई धरै हैं बाद मानों ऐन-भैन हैं।
 चितवन चमर-वार फौज मानों हैं सिंगार,
 लडिये फौ सुर-वीर कहिये कौं ऐन हैं,
 "रस्तम" कहति, धार मन में बिचार देखि,
 जोदन बादशाह के सिपाही दोऊ नैन है।
 —रस्तम

कूपहि में सय भोंग परी है ,

—कोई कवि

धाली कहायत चरितार्थ हो रही है, अर्थात् आपके समान इस शिकायत के सत्र शिकार हो रहे ह।

नैन नवागों ने समय के फेर से सिपहसालारी भी करी, पर
 रों भी काम न चला। शिकारियों को शिकार इस रूप में भी न
 ला, तब और और वसीलों को छोड़ नैन सिपाही—घजाजी
 ही बसर करने लगे। यथा —

कवियों ने नैन सिपाहियों को आधुनिक सभ्यता के अनु
 र तिलगी और फिरगी भी घना डाला है। यथा —

सेतलाई साज मधि स्यामता बिरच रचि ,
 भरन-कोर जुगदै दुबाज सी सुरगी है ,
 भृकुटी-कमान मदि पलकन-कला साधि ,
 बाधि नख-नेह हौ चढ़ाई सो उतगी है ।
 रूप उचकत उचसाइ डोरी लगन-बायु ,
 प्रीतम खिलारी पै मारी पेच जगी है ,
 कुटिल-कटाच्छ-कोर करत-कटासी जाति ,
 कामिनी की आंखि किधौ काम के तिलगी है ।

×

स्याम,सेत,भरन,अनौंरगीआन-सानवारी,
 चञ्चल, छत्रीली चार सोहत मुरगी हैं ,
 भौहैं-बद्ध त्रिकट कमानें सीसजी हैं मनौं,
 काजर की रेखु राजे कना से सुढगी हैं ।
 नेह नख बांधि कै चढी है चन्द्र-मण्डल पै,
 कनी साइ घूम घूम मारै पेच जगी है ।

“आवरवों”, लखि होत “गुलाम”, कै,
 “चीकन”, “मलमल”, हूँ सौँ दराज हैं;
 “डोरिया”, लाल परे हैं मुलाइम, जे,
 “तन-जेम”, बढावन-राज हैं।
 “मल-मल”, हाथ रहे लखि लावन,
 “गाढे”, फँसाव फँसे तजि लान हैं,
 आवत हैं “कमखान”, मिलोक्त,
 नैन नहीं नण नौखे—बजाज हैं।

—गुलाब कवि

फहिये (अनोखे) बजाज हैं, और हैं न बजाजी के सारे
 सामान से सुसज्जित ! कवि-कल्पना ने आवरवाँ, चिकन, मल
 मल, डोरिया, तनजेम, मल-मल, गाढ़ा और कमखान आदि
 शब्दों को श्लेष के सरोवर में किस उत्तमता के साथ सरसो
 किया है कि जिससे मजा चौगुना हो कर चित्त को चुरा रहा है।

काट करि जात डील-पाइ कै कटारी सम,

कामनी की आँख किधौ काम की तिलगी है । ❀

×

सेत-सुच्छ कोणन के कागद पे कोरें लगीं ,

चारौ ओर डोरी सी तनाउ बाँधि घेरी है ,

कारी कारी-पूतरी विचित्र मध्य राज बर ,

पलकै-बमाँच दोऊ कानन-अभेरी हैं ।

काजर के कला मं बँधी है नख-नेह बारी ,

सुन्दर-सुरगी ऐसी आजलौ न हेरी हैं ,

लडत-हना पे चढ़ी मुरकें करत पेच ,

जोरदार जगी ए तिलगी आँख तेरी हैं ।

द र जी

दृग-दरजी, गहि मन-यसन, व्यौतति हट के हाट,
कतर, व्यौत जानति नहीं, सीखे-सूधी-काट ।

—प्रेमचनजी

परम तरगी तेग तकनि उमग भरी,
किरिच-कटोली कारी-कोरन सुरगी हैं,
बड़-बरछी सी घाँकी वेधत हे वान-तान,
बहनी-बुलन्द भौंहेँ काम कर सगो हैं ।
कैधौँ सरदार, सूर समर सलीने महा,
धीर-बर मौज-भरे लसत त्रिभगी हैं,
जगी जोर जालिम जलूस जोति वारे तेरे,
सजत-सजीले प्यारो नैन ष फिरगी हैं ।

×

पलक पियादे खडे हाजिर कतार घाँधैँ,
झोरे-लाल सग में सवार बहु घेरे हैं,
काजर की किरिच कटोली कसैँ यानिक सौँ,
कौने बार के के जौन घाइल घनेरे हैं ।
कौण-पतलून-सेत जाकट पहिर स्याम,
जोबन सहर-मध्य डारे आनि डेरे हैं,
डगी बडे पूरन, प्रतापी रत रगी बडे,
जगी जोर जालिम फिरगी-नैन तेरे हैं ।

उक्त दोनों कवित्त में यद्यपि “तिलगी” का ही रूपक है किंतु हमारी समझ में यहाँ तिलगी शब्द “पतंग”—जिसे आज-काल “कनकौवा” कहते हैं और जो चञ्चे उड़ाया करते हैं—के व्यंग्यहार में आया प्रतीत होता है। पाठक भी इस पर विचार करें।

विपुल बजाजी की यहार भी नेत्रों को अपनी तरफ न झुका
सकी, तब दृग, दरजी की दुनियाँ में दर्शन देने लगे। जैसे कि—

कतर-कतर व्यांति काढ कै करेजा-रेजा,
कसक हिये की टूक-टूक करि उतारे हैं,
हेरि-हेरि सूत, भजवूत फेरि-फेरि करि,
वारिक-वरौनी-सूई नरु से सुधारे हैं।
“भौन कवि”, वहै लाल-भगजी लगाइवे को,
फरजी फिराइ मैन-भरजी विचारे हैं,
वरजी न मानै करै हरजी अनेक भौंति,
गरजी अजव नैन-दरजी तिहारे हैं।
—भौन कवि

रसनधिजी को तथीयत भी दृग दरजी बनाने को मचल पड
अस्तु, आप भी अपनी अपूर्व प्रतिभा का पता देते हुए कहते हैं कि—
दृग-दरजी वरुनी-सुई, रसम-डोरे-लाल,
भगजी ज्यो मो मन सियौं, तुव-दामन सौं हाल।
—रसनधि

दिवालिया

दुकानदार कभी-कभी अपने दीने ईमाँ को दिवालये ताकरल
कर, और साथ ही माल माग कर दिवालिया बन जाते हैं। अस्तु
नैन-भहाराज भी बादशाह से नघाय, सिपाही, बजाज, दरजी
दिखलाने के बाद अब दिवालिया के रूप में दर्शन देते हैं। यथा—
साहु कहावत फिरत हैं, चित सरसाए चाव,
तेरे नैन-दिवालिया, मन लै देति न पाव।
—रसनधि

अरे भाई ? दिवालिया भी कमी-कमी चौथाई या दो आना दे देते हैं, पर यहाँ का तो रास्ता ही उलटा है। चोरी और सीना-जोरी का सा मामला है।

यह कौन धों पाटी पढे हौ लला । मन लेत हौ देन छटाँक नहीं,
—कोई कवि

दग, दिवालिया होने के बाद कौड़ी के तीन तीन बिकरने लगे। सारी साख रखसत हो गई। अर सिवा मजदूरी के और हाथ ही क्या था, भूट हममाल यानी मजदूर होकर रूप मजदूरी माँगते हुए हाथ पसारने लगे। यथा —

पल-पल्लौ भर इन लियौ, तेरौ नाज उठाइ,
नैन-हमालन दै अरी । दरस-मँजूरी आइ । †

—रसनिधि

ठी क ड़ा

उर्दू साहित्य के शिरोमणि अर्थात् प्रधान शायर आतिश ने इन चंचल चश्मों को ठीकडे के रूप में भी रखा है, और कैसी साइस्तगी से रखा है कि दिल याग गग हो जाता है। यथा —

† रसनिधिजी ने नेत्र महाराज का ब्रह्म रूप में भी वर्णन किया है यथा । —

दग द्विज ए उठि प्रातहीं, करि अँसुवन-असनॉन,
रूप भूप से जाँचिहा, छनि मुस्ताहल दॉन

×

×

अरन गग के नैन जनु, गरै जनेऊ डारि,
रूप-दॉन माँगति रहैं, ए पल करन पसारि ।

आँखें नहीं हैं चेहरे पर, तेरे फकीर के,
दो ठीकडे हैं भीख के, दीदार के लिये ।

—आशिक

तेरे आशिक-फकीर के चेहरे पर ये आँखें नहीं हैं। ये तो तेरे दीदार-दर्शन की भीख के लिये दोनों हाथों में दो ठीकडे हैं।

नाट्यशाला

बादशाह, नचाव, सिपाही, बजाज, दरजी, दिवालिया, मजदूर ठीकडा के रूप में तो आपने आँखों का आलम देखा ही, किन्तु अब जरा महाकवि-केशव की करतूत से नैन नाट्यशाला का निरास और नया नजारा भी निरखिये । यथा —

काँछें सित्त-सित-काँछनी “केसव”, पातुर ज्यों पुतरीन निचारी,
कोटि कटाच्छ नचँ गति-भेद, नचावति नाइर-नेह निहारौ ।
बाजत हैं मृदु-हास-मृदग, दीपत सुदीपन कौं बजियारौ,
देखति हौं हरि देखि । तुम्हें, इहाँ, होति है आँखिन-बीच भरारौ ।
—केसव

इसपर टीका टिप्पणी व्यर्थ है । केशव की अपूर्व उपज का कैसा अच्छा दि-दर्शन है । धन्य महाकवि केशव ध-य, हैं, कितना अलौकिक आँख और नाट्यशाला का नवीन रूपक रचा है !

कवि-सम्राट विहागीलालजी की व्यापक दृष्टि से यह केशवजी का रसीला रूपक न बचसका । आपने भी अपनी प्रगाढ़ प्रतिभा के सहारे ऐसा ही एक सुन्दर रूपक रच दिया । जैसे कि —

सब अँग करि राखी सुघर, नाइक-नेह सिखाइ ।
रस-जुति लेति अनत-गति, पुतरी-पातुर-राइ ॥ ❀

—विहारी

नेह नायक (उस्ताद) ने सब प्रकार से सिखाकर—नृत्य के सब
गों में—चतुर कर रक्खा है। अतः पुतली पातुर (रण्डी) रस-
क अनत गति ले रही है।

धन्य है, विहारीलाल तुमको और तुम्हारी प्रतिभा को !

काम-नौका

उदयरामजी कामिनी के कमलाक्षों को काम नौका की
रचना से कल्लोलित कर कहते हैं कि —

जोउन प्रनाह तामैं पानिप-त्तरग उठैं,
भौंह की मरोरनि सों भौर-मत्त-वारे हैं,

❀ विहारी के उक्त दोहे पर भारतेन्दुजी की भुवन विजयी
के देखिये। यथा —

पुतरी-पातुर राइ, नँचति मन हरति सुहावति,
अतिही चतुर-गुन भरी, अनेकन भाव दिखावति ।
मनाहि हरति “हरिचन्द”, हठनि नित रँगीमदन रँग,
को जोहति नहि मोहत यह छवि, पूरति सब अँग ।

ध्यासजी का भी इस भूमि पर का रँग देखिये, यथा —

पुतरी पातुर राइ, नँचति ठठकति ठमकति पुनि,
शुभि वाहवा करति मनहुँ, जुग भौंह परन गुनि ।
दरस इनामहि देहु लाल ! रिशवारि-पाणि रँग,
सुकवि तुमहि विनु वृथा, भाव सों पूरे सब अँग ।

वालम की मूरति मलाह बनी बैठी सुचि,
 ताल-लाल-डोरे तेई गुन-रतनारे हैं।
 पूतरी हलत सोई पतवार "ऊधोराम",
 लाज-यादवान पाल-बरनी सँवारे हैं,
 रूपके सरोवर मे पैर-पैर डोलति हैं,
 अँलियाँ न होंहि ए तो काम के निगारे हैं।
 —उद्वराम

यौवन ही प्रवाह अर्थात् बहाव है, सुन्दरता की तरंगें हैं, भीलों का मरोरना ही भँवर का रूप है, मन मोहन की मनोहर मूर्ति ही मन भाजन मलाह बनी हुई बैठी है, ओर लाल-लाल डोरे ही नाच के खींचने की रस्सियाँ हैं, पुतलियों का संचालन ही पतवार है, लाज ही यादवान हैं, और बरनी ही पाल है, रूप हा सरोवर है, अस्तु, ये श्रॉल नहीं हैं ये तो काम की नौका अर्थात् नाच—हैं जो पैरती तिरती हुई डोल रही हैं।

कहिये कितना सुन्दर रूपक है, अस्तु, पूर्व पुण्य के प्रताप से ही प्रियतम को प्रेम रूप सरोवर में पेराने वाली मनोहारिणी-हरिण नैनी नौका मिलती है। यस अनेकानेक-जन्मों का सुफल चाहिये।

श्रॉल और चौदहरत्न

नाहक मध्यों-समुद्र, रतन-चौदह तिय-नैननि,
 —रतिक

पुराणों से पता लगता है कि देवताओं ने समुद्र को मथकर चौदहरत्न धिप, घोडा, हाथी, कौस्तुभ मणि, कामधेनु, कल्प वृक्ष, रम्भा, मदिरा, लक्ष्मी, चन्द्रमा, अमृत, धनवन्तरी आदि—

भक्त भव-भय हारी भगवान, रमणीय-रत्नमयी-रमणी को भूल गये थे, इसी लिये "रत्नाकर" मथनेका प्रबल प्रयास देवताओं के साथ किया और स्वयं भी कच्छप घन, वरपना-तीत-कष्ट उठाया। किन्तु मालूम होता है कि श्रीमान् के समीप उस-समय खचिर रमणी रत्न न था, क्योंकि वह तो पीछे से न मिला है।

श्रीयुक् "श्रीपति जी" ने तो प्रभाव बताकर उपमा का सहारा लिया था, पर आलम ने वस्तु घर्षण कर रूपक का रसीला-रसभर दिया है, गजब गुजार दिया है—दिल को बेकरार कर दिया है।

अलसोंहीं-आँखें

अरसाने घूँमति, मुकति, सरसॉने, छविऐँन,
त्रिहँसि दुरॉने पिय पै, नीद-धुरॉने नैन। †

—नागरीदास जी

मन कौं हरत "रभा" धहरत "हय" ओप होय,
एँड मौँन बाँरें "गज" जोति मन गाएँ हैं,
वृन्द-सुखदानी "पारिजात" सील "सुरभी" तैं,
सीतल प्रकास "इन्दु" लोलमा भपाएँ हैं।
धूमैं "मद" दरद जान "धैद" मार "गरल" ज्यौ,
'बसुधा सेत "कषु" कोए "धनु" ठहराएँ हैं,
"गोप कहैं" काहे कौं सिन्धु-मधि कीनीं लम,
घौदह-रतन तिय नैननि में पाएँ हैं।—गोप कवि

† अलसोंहीं आँखों पर नागरीदास जी की निरुक्तियों भी निर-
खिये और उनकी अद्भुत काव्य-कुशलता को सराहिये। यथा —

जब पल आँखें मुकति पिय दरपन देति दिखाइ,
तब अपनी अँखियाँन पै, अँखियाँ रहति लुभाइ।

अलसोंहीं आँखें भी "कवि जगत्" को खूब ही भायी हैं। उनपर भी अनुपम-उपमायें उपजायी हैं—अनोखी-उत्प्रेक्षाओं से अलङ्कृत की हैं। उनकी सुन्दरमयी शोभा पर सर्वस्व सहित न्यौढ़ाव हो गये हैं, हुलसाये-हृदय के साथ, धरस विक गये हैं—अर्ध-विकसित सरोज सी आँखों के शिखार हो गये हैं। देखिये और सपहिये। यथा —

अंगराति, जम्हाति प्रभात उठी, परिजक पै प्यारी के अग मुरे परै,
अलसोंहि भरे दृग खोलै कछु, तन-सुन्दर स्वेद की धूँद ढरे परै।



नींद भरी पल निरखि पिय, देति सु पान बनाइ ।
उत नैननि के खुलति ही, इत धीरी गिर जाइ ।



भौर निवारति यदन लखि, मन धन वारति जाति ।
फूँकि जगावति छाल तब, खुले-नैन मुसिकात ।



धरै चिबुक-तर हाय दृग देखति नींद सुमार,
लगे रूप के रहचट, नहि पौदति रिस्तिवार ।



बरसानी निरखति प्रिया, जाति बिहानी रैन,
नैननि लखि पिय के भए, रीम-रीम में नैन ।



लखि अरुतै सुरसै नहीं, सब निसि गई बिहाइ,
आरस उरसै दगन में पीय । रहे अरसाइ ।



सखी ! लखै दुरि दमन सैं, छै रहे चित्र सरिर,
निसि उनदीहँ-दगन पै, भई दगन की भीर ।

मानिक-भ्रम्य तरौंननि के चर, मीजति यौं उपमा उभरे परें ,
पाइ सहाइ प्रभाकर की ज्यौं सुधाकर सौं जल-जात लरे परें ।

—मात्रि कवि

कोई नायिका प्रातः पर्यङ्क पर अँगडा और जम्हा रही है ।
आलस्य से अलकृत आँखें कुछ कुछ खुली हुई हैं । स्वेद (पसीने)
की बूंदों से सुन्दर-शरीर सुशोभित हो रहा है । दोनों कर्ण-फूलों
के बीच अलसोंही आँखों को, अगडाइयाँ लेती हुई "अगना"
अरने कर-रुमलों से, मीज रही है, अतः उस मनमोहनी के इस
मन मोहक मात्र भगी पर कवि अपनी "हृदय हारिणी-उपज" के
साथ सजा कर कहता है कि उस समय ऐसा मालूम हुआ कि
मानों प्रभाकर (सूर्य) की सहायता पाकर "जलजात" (कमल)
सुधाकर (चन्द्रमा) से लडे पडते हों ।

श्रीसू भी उर्नादी और अलसोंही आँखों के अलौकिक
आनन्द में निमग्न हो कहते हैं कि —

नैन-उर्नादे भए रँग-राते,

मनहुँ सुरग-सुमन पै सजनी । फिरत भृग मद-माँते ।

प्रेम-पराग पाँखुरी पल-पल, प्रफुलित मदन-लता ते ,

सुभग-सुवास, तिलास, तिलोकनि, प्रगट-प्रीति करि ताते ।

तैसौई मारुत मद, जम्हावनि, मिली मुदित-छवि याते ,

साँचे "सूर"—स्याम मानिनि कर, हित सौं केलि-कला ते ।

—श्रीसू

इस पर टीका टिप्पणी व्यर्थ है, श्रीसू की "सरस-सूक्ति"
समक्षिये और सराहिये ।

अलपेली अली जी भी, अलपेली अदा से अलकृत अलसोंही-
आँखों के अलौकिक आनन्द का अनुभव पा कह रहे हैं कि —

बड़ी-बड़ी आँखियाँ नौद घुराँती,
 अति अनुराग भरी सँग पिय के, जागति रैन विहोँती।
 रग-भरी राती, मद-माँती, अरुन-डोर सरसाँती,
 मापि मापि परति मुकीली-पलकैँ आरस-जुत अरसाँती।
 निरखि छकीँ छवि-रूप छनीली, तन-मन रहत लुभाँती,
 "अलबेली अलि" चित्र रहीँ मव, नैनि निमेख मुलाँती।
 —अलिबली बन

नागरीदास जी भी अलसाँही आँखों पर निहाय हो गये
 अस्तु आप का भी निनाद निरखिये। यथा —
 सोहति हैं अलसाँही-नैना,

लटक-लटक पिय पै अरसावति, सिथिल कहति मुख आधे-वैत।
 बहुत गई निशि प्रिया जम्हावति, चुटकी देति लाल मुस-वैत।
 "नागरीदास" मखीँ छवि निरखत, तिसरि तिसरि जाति उपरैत।
 —नागरीदास

† नागरीदासजी ने और भी पदों से अलसाँही आँखों को
 अलकृत किया है। उन में से कुछ यहाँ रसिक-जनों के चित्तोदाय
 उद्भूत करते हैं। यथा —

नाद भरी आँखियाँ जु बड़ी-बड़ी।
 लाल-लाल डोरे कजरौड़ी कोरैँ पिय हिय मॉझ गड़ी-गड़ी ॥
 सूचित रैन चैन की बातें, रग पोक छवि छाइ मड़ी-मरी ॥
 "नागरीदास" मदन मॉहन करि बहु भातिन निशि लड़ी-लड़ी ॥

हैं माँती नाद को आँखियाँ सोहैं लाल।
 काम-केलि करि रग रसममी, दुगी-अलक, तुटि-भाल ॥

आलस्य-भरी आँखों पर, भारतेन्दु याबू हरिश्चन्द्रजी भी
 नेंद्वार हो गये हैं। उनकी अनुपम माधुरी पर हृदय हार गये
 । यथा —

रस-मसी सरस-रंगीली आँखियाँ मढ सौं भरी ,
 मुँदि-मुँदि खुलति छर्की आलस सौं, डुरि डुरि जात डुरी ॥
 मूमति, मुरुति रग-निचुरति मनौं, मीन-मजीठ-परी ,
 "हरीचन्द्र" पिय छकति लगति रहि, सवहि भौंति निररी ॥
 —भारतेन्दु

अधखुली आँखें

किये आधीन, अध-चितवन से, जिन्होंने स्याम मन-रजन,
 —प्रियतम

अलसीही के अनन्तर, अकर्मण्य कवियों को अधखुली
 आँखों की अजूग खूरी भी अच्छी लगी हैं। कवि-कुल को कामिनी
 के जगाने में आनन्द नहीं आता। हृदय हीन उद्योग को आप
 लोग दूर से ही सलाम कर अलमस्तता के हाथ बिक जाते हैं,
 जमी तो अधखुली आँखों के अधीन हो जाते हैं। सचमुच अध-
 खुली आँखों में अनोखी मादकता है। यथा —

एपटाने धनवारी प्यारी, अरुहे बाहु मृनाल ।

"नागरिया" दिग भँवर निवारति, लीनै हाथ-स्माल ॥

आँखियाँ भरन रस मसी घुरहीं ।

राज भरी छवि-भार भरी ए, रूप छर्की आलस-पुत डुरहीं ॥

सूमित बदन पिय चिबुऊ उठावति, कही न परति जब हँसि हँसि मुरहीं ।

रही घरी द्वै रात, जुन्हैया, "नागरी" छैल तक न बिछुरहीं ॥

अधर-मधुप ऐसे वदन अधिकानी छवि,
 मानों त्रिधु विप्रिय कीन्हों रूप को उदधि कै,
 कान्ह देखि आवति अचानक मुरझि परे,
 वदन छिपाइ सरियाँन लियौ मधि कै ।
 मार गई "गग" दृग-सर वेधि गिरधर,
 आधी-चितवन सौं अधीन कीन्दे अधिकै,
 वान-वधि वधिक वधे कौं खोज लेति फिरि,
 - वधिक-वधुना खोज लीनी फेरि वधिकै ॥

वधिक भी वान से वेधकर—मारकर—अपने वेधे (मार) रूप
 को खोज खतर लेता है, पर उस वाला-घर वधू ने अध-खुले दृग-सर
 से वेध, भूलकर भी खतर न ली । क्यों ले ! क्या गरज !
 पियूष वर्षी विहारीलालजी भी विष मयी अधखुला दृग-सर
 से बेहाल हो कहते हैं कि —

वारों बलि तो दृगन पै, अलि, खजन, मृग, मीन,
 आधी दीठ चितौन गिनि, किए लाल आधीन ।
 —विहारीलाल

⊗ विहारी के इस दोहे को व्यासजी जडाव में यों जड़ते हैं।
 यथा —

किए लाल आधीन, छिनक म देखति देखति,
 जिनमें दौड-दृग भृकुटी मध्य, कै जोगी पेरति ।
 नैननि पै शरत जिहि कौ, कमला जुग चारौ,
 "सुकवि" तिनहि प्रस करत, जगत हुव हारै वारा ।

—विहारी विहार

घाह, अध-खुली दृष्टि में भी कैसी अनोखी अद्भुतता है कि जिन के जरा से इशारे में लाल-अर्थात् प्राण-वत्तम, घश में हो गये। तन, मन, धन निझावर कर दिया—सर्वस्व ही लुटा दिया।

दिल पर मेरे हुजूर की शर्मीली-आँसों ने,
ऐसी निगाह डाली कि, बेकार हो गया।

—कोई शायर

अधखुली आँसों की खूनियों के खादिम, एक दूसरे कधि भी अपना अनोखा ही अलाप अलापते हैं। सुनिये और सराहिये।

यथा —

सौंफ़ तै भोर लौं प्यारे जगाई, जगैने कौ व्यौत कछु फिर नोंधे,
सोयत ही मिसि खेननि के, कर-दोऊ लै फूल की माल मौं वोंधे।
सेज ही पै अँगराति, जम्हाति, अनेकु-तमासे बत्तावति राधे,
आधे-खुले दग, आधे-मुँदे, अरसरा मुख तै कढें आधे ही आधे।

—कोई कवि

कविवर पद्माकर जी अधखुली आँसों के साथ साथ, अध-खुली अन्य घस्तुओं की निराली ही जुमाइश लगाते हैं। देखिये न —

अध-खुली कचुकी, उरोज-अध आधे-खुले,
अध-खुले-धेर 'नल-नेरन की भलकै',
"कहै पदमाकर" नवीन अध-नोंधी खुली,
अध-खुले-धहर-धरा के छोर-धलकै।
भोर जगि प्यारी अध उरध इतै की ओर,
भौंकि, मुकि, ममकि उधारि अध-पलकै,
आँसैं अध-खुली, अध-खुली-रिपरका हूखुली,
अध-खुले आनन पै अध-खुली-अलकै।

—पद्माकर

लड़ते-लोचन

लड़ें, लड़े पुनि लडि लड़ें, लाड़-लडैते-नैन

अलसाँहें और अध-सुले, अस्तुजासों का आनन्द तो लि
 धी, अर जरा लडैते लोचनों की लीला भी लग नीजिये। यथा-
 कहा लडैते दग करे, परे लाल बे-हाल,
 कहूँ मुरली, कहूँ पीत-पट, कहूँ मुकट, धनमाल ।३

—विहारी शक

अरी? घाहरी धाह, क्या अजय तू ने लडैते—ध्यासुक लडते
 लोचन बना रखे हैं कि जिनके भारे लाल बे हाल हो रहे हैं।
 बेचारों को अपनी मुरली, मुकुट, धनमाल, पीत पट अर्थात्
 पीताम्बर तक की भी जरा सुध नहीं।

क्या निगाह थी बलाये, होश-रुवा शाकी की,
 उठ गई आँख तो कोसो कोई हुशियार न था।

—शा

लडाके लोचनों की शिकायत सुकवि सुन्दर जी से भी सुन
 लीजिये। देखिये कितना विदग्धताभरा चर्णन करते हैं। यथा—

† इस दोहे पर ध्यासजी यों कहते हैं कि —

कहूँ मुकट धन-माल, कहूँ पुनि लकुट गयी परि,
 कहूँ गुजा कौ सया, कहूँ कलगिया गई बरि।
 बोलति अट पट-भात, सुनति कछु नाहि कहे तें,
 सुकवि मौहनी भरे, करे-दग कहा लडैते।

—विहारी विहार

कहूँ बनमाल, कहूँ गुजन की माल कहूँ,
 सग सरसा ग्वाल नाहि ऐसे भूलि गए हैं,
 कहूँ मोर-चन्द्रिका, लकुट, पट-पीत कहूँ,
 मुरली, मुकट कहूँ न्यारे डरि दए हैं ।
 कुदल-अडोल कहूँ, "सुन्दर" न बोलैं बोल,
 लोचन-अलोल मानों काहू हर लए हैं,
 घूँघट की ओट है कै चितवन की चोट करी,
 लालन तौ लोट-पोट तव ही तैं भए हैं ।

—सुन्दर

घूँघट की ओट से चारु चितवन की, चपल-चित्त में धुमने-
 गली ऐसी चोट चलाई कि लाल तब ही से लोट-पोट हो गये ।
 तारे होशोहवास हवा हो गये ।

दिल गया दम पर बनी, आँसू-लडीं कहती हैं हाल,
 बेकरारी, आहो-जारी, अश्के-वारी आप की ।

—मोमिन

बिहारी और सुन्दरजीकी लडैते लोचनों पर सरस रचना देखी
 ही, अब जरा "श्री सुर" की इसी मजमून पर सफलता को
 सप्राप्तिये और देखिये कि श्रीमान् किस अनोखी-अर्दों से घ्यास
 रूप में घर्षण करते हुए कितना सु रस भरते हैं । यथा —

चितई, चपल-नैन की कोर ।

मनमय-वान दुसह अनियारे, निकसे फूटि दिए बहि ओर ॥
 अति-न्याकुल धुकि धरनि परै जिमि, तरुन-तमाल पवन के जोर ।
 कहूँ मुरली, कहूँ लकुट-मनोहर, कहूँ पट, कहूँ चन्द्रिका-मोर ॥
 दिन बूडति, दिन हीं दिन उद्धरति, विरह-सिन्धु के परे मकोर ।

प्रेम-सलिला भीज्यौ पियरौ-पट, फट्यौ निचोरति अँचर-धोर ॥
 पुरै न बचन, नैनि नहिं उधरत, मानहुँ कमल भए बिनु मोर ॥
 "सुर" सु-अधर-सुधा-रस सींचहु, मैदि मूरधा नन्द-किसार ॥
 —श्री सुर

महाराज "नागरी दास" जी भी लडाके-लोचनों की शिकायत करते हुए फर्माते हैं कि —

तेरे नैन-बान उर मोहन के लगे आँन,
 तत्र तैं न बाके वीरु धीर ठहराइ है ।
 पलकन मूँदि-मूँदि गहरे-उसास लेति,
 होति न सचेत मुख रटैं हाइ-हाइ है ।
 जमना कौ कूल, कुज, सीतल-कुसुम-पुज,
 लगै तन ता तैं तेज विपम बलाइ है,
 एरी चलि नागरि । तू सीचि सुधा-चाँहनि सौं,
 आँखिन के घाइल कौं आँखैं ही उपाइ है ।
 —नागरी दास

आह, जब से तेरे ये नैन-बान मोहन के हृदय में आत कर लाए हैं, अरी घायली ! तब से ही उन की जरा भी धीर नहीं है—पलकों को मूँदे हुए गहरे-उसास ले रहे हैं। चेत तो होता ही नहीं, बेचत मुख से हाय-हाय की रटना रट रहे हैं। यद्यपि यमुना के कूल की कुञ्जें शीतल कुसुम-पुञ्जों (फूलों के समूह) से अधिबसुशीतल हो रही हैं, तथापि उनके तन को तो घे एकदम गरम और तेज विपम-सी मालूम हो रही हैं, इस से हे नागरी !, तू शीघ्र चल कर प्रेम से (दर्श) —सुधा का सिंचन कर, क्योंकि आँखों के घायल को उन आँखों का देखना ही बचने का बेधल उपाय है, जिन ने उन पर ये गजब गुजारे हैं।

बेनी कवि की बहादुरी भी बिना बिलम्ब लख लीजिये,
 क्योंकि आप भी लडैते लोचनों के कायल हैं। यथा -

गोरे से भाइ भुजान खुलो, कुसुंभी-अँगिया की रही गडि गोटेँ,
 तक नई सी परै कच भार, मनोहर-हार परी त्यौं धरोटेँ।
 "बेनी" रँगें मेहदी पग पानि, करी अँखियानि कटाच्छ की चोटेँ,
 लौटे न हँरो भट्ट। घर कौं, कन के लट्ट कान्ह परे मग लोटेँ। ❀

—बेनी कवि

कैसे लौटेँ !, कुटिल-कटाक्षमय चञ्चल-चखों की चोटेँ, क्या
 कुछ ऐसी-वैसी होती हैं। मनुष्यों की तो बात ही क्या, पशु पक्षी
 तक नहीं बचने पाते। साक्षी हैं—नागरीदास जी। यथा —

नैनों दा मान्या पछी मरजाँदा, मानस कौंन बिचारा।
 दोहा—पडित, पूजा, पाक-दिल, ये दिमाग मत ल्याइ,
 लगेँ जरन अँखियाँ की, सबै गरब उडि जाइ।

❀ सुकवि नन्दराम जी ने बेनी कवि के कुछ इसी भाव को इस
 प्रकार अपनाया है। यथा .—

इँच्छन तिहारें तीर, तीच्छन से जाने जाति,
 "नन्दराम" तैले भौ-सरासन में जोरे हैं,
 सूवन हँ सलैने तानि ताकि नँद-नन्दन कौं,
 छोडि कुलि कान लोक-राज के चितोरे हैं।
 जा दिन तँ भौचक अनौसी तँ निहान्यी नैदु,
 हाँ हूँ पछिताति हाइ नाँहक निहोरे हैं,
 ता दिन तँ छाल, मेरी उलटि उसासँ लेति,
 मैं न जानी तेरे नैन-भान विप-धोरे हैं।

—नन्दराम

नैनों दा मान्या पछी मरजादों, मानस कौन विचार ।

दोहा—चश्म जरब से क्या रहे, दीन-गरब की तान ;

छूटि गिरै सब पास सैं, तसबी, असा, किताब ।

नैनों दा मान्या पछी मरजादों, मानस कौन विचार ।

दोहा—लगि बरछी तिरछी-निगाह, होवै दिल बेहाल ;

रहैं धरे ही जहाँ अक्स, चलते बरतर ढाल ।

नैनों दा मान्या पछी मरजादों, मानस कौन विचार ।

दोहा—गरब उडावै सरब के, अजर जरब के नैन ,

लगै सोइ कहि-नहि उठै, हाइ, हाइ दिन रैन ।

नैनों दा मान्या पछी मरजादों, मानस कौन विचार ।

दोहा—चश्म तेग “नागर” चले, इश्क तेज की धार ,

और कटै नहि वार सों, कटै कटे-रिम्बार ।

नैनों दा मान्या पछी मरजादों, मानस कौन विचार ।

अनोखी-अँखों का आपेट पेसा ही अलौकिक हुआ करता

है—सागी शरारतें भुला देता है । तभी तो सागर-कवि ने कहा

है कि —

जाके लगै गृह-काज तजै, अरु मात-पिता हित तात न राखै

“सागर” लीन है चाकर चाह कै, धोरज-हीन अधीन है भाखै

व्याकुल-मीन ज्यों नेह-नवीन में मानों दई बरछीन की साखै

तीर लगै, तरवार लगै, पै लगै जनि काहू की काहू सों आखै

—सागर

पर ‘सागर’ जी यह कब मानने वाले हैं । इनको बिना लगे

(लड्डे) चीन कहाँ !, सिधा लड्डने के इन्हों ने और कुछ सीखा है

नहीं । देखिये न—

खून करें लडि वावरे, महबूबो के नैन,
आशिक-सिर की गैद से, खेलैं तब ही चैन।

—गगरी दास

नारायण स्वामी जी भी श्याम-सुन्दर की सरोज सी सलोनी
श्रौंखों के आघेठ हो कहते हैं कि —

स्याम-दृगन की चोट बुरी री !,

ज्यों-ज्यों नाम लेति तू वाकौ, सो घाइल पै नौन-पुरीरी।

ना जानौं अत्र सुधि-बुधि मेरी, कौन विपिन में जाइ दुरी री।

“नाराइन”, नहिं छूटति सजनी, जाकी जासौं प्रीत जुरी री।

—नारायण स्वामी

लगोंहे-लोचन

जब तैं लागैं नैन नहिं, जब तैं लागे-नैन,

—रामसहाय दास

सब कोई कहते हैं कि श्रौंखै किसी की श्रौंखों से न लगें,
पर ये ललित-लोचन तो स्वयं ही लगोंहे होते हैं। कहना मानते
ही नहीं; भट्ट उरझ जाते हैं। जैसे कि —

होति मरि। ए उरझौंहे नैन,

उरझि परति सुरझौ नहिं जानति, सोचति, समुझति हैंन।

श्रौंख नहिं बरजै री इन कौं, धनत मत्त जिमि गैन,

कहा करौं इन धैरिन पाळैं, होति लैन के हैंन।

—भारतेन्दु

पेशक, इन के पीछे लेने के देने पड जाते हैं। पर ये कहीं
उलझने के बाद सुरझे भी हैं और फिर गुनन-गरुले-गोपाल से
लगे-लोचन। कौन सुरझाये, किसे जकरत पडी है। यथा —

आँख और कविगण

नलिनी रचि मध्य में ओटि करें, जुग-फूटें जुराफा उडावहि को,
मन-चचुक बीच कौ लोह भयौ, तहाँ दूसरौ रूप दिखावहि को।
“कवि मभु” सनेह की रीति यही, निछुरें जल मीन जियावहि को।
गुनवारे-गुपाल की आँखिन सौं, उरझी आँखियाँ सुरमावहि को।
—शम्भु

अरी बावली !, सुरमाने की जरूरत ही क्या है। गुन-वारे
गोपाल से आँखें तो सात हाथ चौड़ी लिलारी हो तब लगती
हैं। यह तो बड़े सुपुण्य का सेहरा है। किन्तु इन अनोखी आँखों
की अरुथ कहानी है। यथा —

आशिक-दिल-आँखियों का जग मे, सन से अकह-महानी हैं,
फिर न फिरें महबूब करै जब, हँसि चितवन-महमानी हैं।
बेशक वदन परहेज निहायत, इन हि न लालच है जी वा,
हुश्र-जहर का गिजा मुकरैर, ऐसी अजब अयानी हैं।

† “गुनवारे गुपाल की आँखिन सौं, उरझी आँखियाँ सुर
मावहि को”, इस समस्या पर ललित किशोरीजी ने भी सप्त
सूक्तियाँ रची हैं। यथा —

जब रूप के रग रँगी सजनी, तब पाँदि पलोटि सुबावहि को,
मुख-कज मनोज पै भृगिनि सी, लिपटी चिपटीन उडावहि को।
जब मादक-भाधुरी पान पर्गी, तब घूँघट-ओट दुरावहि को,
गुन वारे-गुपाल की आँखिन सौं, उरझी आँखियाँ सुरमावहि को।

×

घख-कोर घकोर बनाह भद्र, ससि आनन सौं सरमावहि को,
मृदु-बोलन गाढ कपोल-घँसी, फँसी रूप-सरोवर पावहि को।
सुर-तान तँ मोही मृगी ज्यों भली, बहुरी बन-धीधि मिलावहि को,
गुनवारे-गुपाल की-आँखिन सौं, उरझी आँखियाँ सुरमावहि को।

उन विन सनम और नहिं सूझै, हरदम एक उसीको बूझै,
 इस मतलब में निपट सयानी, और न कहीं लुभानी हैं।
 मस्त हाल सज सुधि प्रिसरानी, प्यासी मरै परी विच पानी,
 ऐ-गारीव, उस रूप-दिवानी, वह "नागर" अभिमानी हैं।

—नागरी दास

लगौंहे लोचन कुछ और ही होते हैं। उन की लीला कुछ
 निपली ही होती है। देखिये न —

लगौंही-चितवन औरहि होति,

दुरति न लास, दुराथी कोऊ, प्रेम-भलक की जोति।
 धूँघट में नहिं थिरत तनकहू, अति ललचौंही वानि,
 छिपति न कैमैहूँ प्रीति-निगोडी, अत जाति सज जानि।

—भारतेन्दु

लगी हुई निगोटी प्रीति और चितवन को भले ही छिपाइये
 पर वह इहीं दृग-दर्पन द्वारा दीख ही जाती है—प्रतिविम्ब
 भासित हो ही जाता है। लाख छिपायो, पर वह छिपती ही नहीं,
 सब जानहीं जाते हैं। यथा —

छिपाएँ छिपत न नैन-लगे,

उधर परत सब जान जाति हैं, धूँघट में न सगे।
 कितनौऊ करौ दुरान दुरति नहिं, जब सौँ प्रेम-पगे,
 निडर-भए उधरे से डोलति, मोहन रग-रंगे।

—भारतेन्दु

लगौंहे लोचनों को "श्री सूर" ने भी पानी पी-पी कर कोसा है;
 क्योंकि ये धीमान् (लोचन) कुछ विचारते तो हैं ही नहीं, भट लग

ऑर और कविगण

जाते हैं। चाहे फिर दुख की दीवार ही क्यों न उठाये, पर वे नहीं मानते ! नहीं मानते !!, यथा —

नैना नार्ही कछु विचारत,
 सनमुख-समर करत मौहन सौं, जद्यपि हैं हठि हात।
 अबलोकति, अलसात, नगल-छत्रि, अमित-तोष अति आत,
 तमकि-तमकि तरकति, मृग-पति ज्यों, घूँघट पटहि विदारत।
 बुध, बल, कुल-अभिमान, रोस, रस, जोवत तुरत निवारत,
 निदरे पै हूँ सरस-स्याम-अँग, पेखि पलक नहिं पारत।
 स्रमित सुभट सकुचित, साहस करि, पुनि पुनि सुरत सम्हारत,
 “सूर” सरूप मगन मुकि व्याकुल, टरत न कैसेहुँ दारत।
 — श्री सूर

पुन भारतेन्दु जी क्या ही अनूठा प्रेम पगा उलाहना एवं
 अविचारिणी और विगरैल (बामा के) अम्युजाओं को देते हैं। यथा

भई सरि । ए अरियाँ विगरैल,
 विगरि-परी मानति नहि देखैं, वही साँवरौ छैल।
 भई मतवारि धरति पग डग-भग, नहिं सूक्त कुल-मैल,
 तजि कै लाज, साज गुरु-जन की, हरि की भई रखैल।
 निज-चवाव सुनि औरहु हरप्रति, करति न कछु मन मैल,
 “हरीचद” सब सक छौँडि कै, करहि रूप की सैल। †
 — भारतेन्दु

† भारतेन्दुजी की भुवन विदित काव्य-माधुरी सुरसरि के
 कुछ-कुछ इसी भाध पर रसिकेशजों की रसिकता-रजित अप्र
 उकि भी सुन लीजिये। यथा —

प्रीति की रीति ही अजब है--लगोहे-लोचनों की लीला ही
नेराली है। जन्म भर तरसा कीजिये, बाट हेरा करिये, दिन
गेनते गिनते उँगलियों में छाले पटक लीजिये, पर घहाँ क्या !,
ऐसे कि —

श्रॉसडियों भाई परी, पथ निहारि-निहार ,
जीभडियों छाला पन्था, राम पुकारि-पुकार ।

—कबीर दास

वियोगिनी-योगिनी श्रॉखे

हास सतो-गुन, रज अधर, काजर तम, दुति रूप ,
मेरे-दृग जोगी भए, लएँ समाधि-अनूप ।

—कोई कवि

प्रियतम की प्राप्ति न होने पर, वियोग घन्हि से विलुलित-
बर-बाला की बडी-बडी अनियारी-श्रॉखें, जोगिन हो जाती है।
बन-बन प्राण प्रियतम के नाम का अलख जगाती हुई फिरती हैं,
पर दर्शन दुर्लभ। ऐसी ही अलखेली--नायिका की वियोगिनी
योगिनी श्रॉखों पर "देव जी" कैसा रुचिर-रूपक रचते हैं। यथा -

वरुनी-वधन्वर में गूदरी-पलक दोऊ ,

कोए राते-वमन भिगौहे-भेस रसियाँ ,

तुहँ मैंन न मानहि नकहु सीस, बिती समुझाइ कहाँ इन सों ,
दुक हेरति घाइ कै आग मिलैं, पुनि क्याहूँ न धीर धरैं छिनसों ।
अपनी दिसि तैं हम प्राण औ आंग, निछावरि की हे घने दिन सों ,
तन औ मन हारँहुँ रुसे रहैं, "रसिकेस" बस्याइ कहाँ इन सों ।

—रसिकेश

बूढ़ी जल ही मैं, दिन जाभिनिहूँ जागै भौहैं,
 धूम-सिर छायाँ धिरहानल विलखियाँ।
 अँसुवाफटिक-माल, लाल-डोरे सेल्ही पैन्हि,
 भई हँ अकेली तजि चेली सग-सरियाँ,
 दीजिए दरस "देव", कीजिए सँजोगिन ए,
 जोगिन है बैठी वा वियोगिन की अखियाँ।

—दे

वियोगिनी-घाला के योगी-नेत्रों का कैसा साम्यता-युक्त वर्ण हैं। योगियों के उपयोगी सभी पदार्थ इन खड्गजनों की आँखों में खजाने में देवजी पा गये। जैसे कि—राघम्वर, गुदडी (पहले का भिगोहा घख) जल, धूम्र, अग्नि, स्फटिक की माला, स्वर्ण सेल्ही, आदि सब को कविवर "देव जी" ने अपनी अद्भुत-प्रतिभा और अलौकिक कल्पना के सहारे बरनी, पलक, कोये, अँस, भौहैं, लाल-लाल डोरे, आदि में अनोंखी रीति से पलट दिया—गजब का भाव भर दिया और फिर वियोगिनी-घाला की योगिनी-आँखों के लिए दरस दिलाकर सयोगिनी बनाने की "अपील" करना तो और भी हृदय को हरनेवाला है।

कवि-कृष्णसिंह जी की कल्पना भी राधिका महारानी के रमणीय नेत्र योगियों पर कैसी कलेजे में कसकने वाली है। यथा—

कानन-नमीर सनै भृकुटी अपाग अग,
 आसन-अजन मृग-राजन-अनाथा के,
 अरुन विभोगे कोर, प्रिसद विभूति अग,
 त्यागी-नींद विचै निमेख विप बाधा के।

“कृष्णसिंह” काम-कलाविविधि कटाच्छ ध्यान,
 धारना समाधि मनमथ सिद्ध-साधा के,
 प्रेम के प्रयोगी, सुख-सम्पति मँयोगी,
 अति स्याम के वियोगी भए जोगी-नैन राधा के ।

—कृष्ण सिंह

“मुबारक” महोदय भी वियोगी योगी-नेत्रों के निरूपण पर
 चल पड़े। देखिये कैसी हृदय द्राघक उक्ति से अलकृत कर कहते
 । यथा —

डोरे-ललौहि भिंगौहि समाजन, अजन-अजित सेल्ही बनाएँ,
 कोए-पटील जटा पुतरी, पलकें भई रत्नपर जोग प्रचाएँ।
 उजलताई-विभूति “मुबारक” अग-अंगार सिंगार बनाएँ,
 सीकर आस की माल जपें, आँसियों भई जोगिन जोग-जगाएँ।

—मुबारक

नेत्रों की योग-करपना पर विहारीलाल जी की काव्य प्रतिभा
 न मानो। देखिये कैसी उत्तम और अनोखी सरस सूक्ति
 एजते हैं। यथा —

जोग जुगति सिरए सनै, मनौ महा-मुनि-भैन,
 चाँहति पिय-अद्वैतता, कौनन सेवत नैन । †

—विहारी

† विहारी के इस दोहे पर भारतेन्दुजी की भव्य-बुद्धि का
 विकास भी देखिये। यथा —

कौनन सेवत नैन, रहति नितही लौं लाएँ,
 हरि मद-रस सौं छके, छबीले उँमग बदाएँ।
 सेली डोरे-राल हखति, गुदरी-पल अनमिस,
 क्यों न लहँ अद्वैत सिद्धि, पिय जोग-जुगति सिख ॥

जिस प्रकार कोई, सद्गुरु महामुनि से दीक्षित युञ्जव
पुरुष, प्रिय परम प्रेमास्पद ब्रह्म से अर्द्धत (अभेद) चाहता हुआ
कानन (वन) का सेवन करता है उसी प्रकार कामिनी के कमल
भी महा-मुनि मदन से योग-युक्ति अर्थात् प्रिय-सगम की युक्ति
सीखकर कानों (वन) का सेवन कर रहे हैं।

कवि ने योग, अर्द्धतता, कानन पदों को श्लोक के सरोवर
में सराबोर कर जो सरस-सूक्ति की रचिए-रचना की है, वह
अक्रयणीय हैं—अद्वितीय हैं, कवि ससार की जान हैं। गुरु
दस्तये विहारी के कर्त्ता ने उक्त-दोहे का अनुवाद इस कार किया
है, जैसे कि —

महा-मुनि-नैन ने गोया, जुगत हठ-योग सिखलाई,
रहे से नैन कानन चाहते हैं, पी की इकताई।
—प्रियतम

विहारी को इस भाव भगी पर “रसिकेश” भी रपट पड़े मुँह
से लार टपक पड़ी। भूरि भूरि प्रसन्ननीय भाव को मूढ अपना
लिया और खूब अपना लिया। जैसे कि —

नैन-महामुनि नैननि कौं, दृढ कै यह जोग की जुगति सिखाई,
द्वैत-निसिष्ट विहाइ दुहँ, “रसिकेश” अनन्य सु एकु लखाई।

विहारी विहार कर्त्ता क्यासजी की भी सुनिये। यथा —

कानन सेवत नैन, पलक की सेली धारै,
काजर सौं जनु कृष्ण सार, मृग चरम पसारै।
श्रुटि-कृती के तरै, बैठि कर लई मुक्ति सी,
“सुकवि” रसीले-नैन, फरत हैं जोग जुगति सी।

कॉक निवास कछू न भलौ, सँग मुकतनि के अति है कठनाई,
 ए अद्वैतता चाहिवे हेतु, मनौं दृग कॉनन सेन जाई ।

—रसिकेश

"एक दूसरे कवि भी, वियोगी के होनेवाले परम-यागी नेत्रों
 की चर्चा चलाते हुए कहते हैं कि —

तयै बिरहानल में पलक उठाएँ मुजा,
 ध्यान लीन मन निसि वासर विहात हैं,
 डोरे-लाल सेल्ही साज, असुवा फटिक-माल,
 कोए सोई बसन-भिगौंहे दरसात हैं ।
 आठौं-जाम जागै अग बिसद विभूति भरे,
 बोलत न मुख दुख सहै सीत-घात हैं,
 तेरे मिलवे के काज जोगी हौंन हेतु प्यारी,
 जोगी जुग-लोचन वियोगी के लखात हैं । †

—फोई कवि

भारतेन्दु याबू "हरिश्चन्द्र" जी भी निराले-दृग से नैन-फकीरों
 का निरूपण करते हुए कहते हैं कि —

† नैन-योगियों को देखकर ही किसी "कवि" ने कामिनी के
 डुब-युगलों को भी योगी होने का सर्टिफिकेट अपने "फुल-बेञ्ज"
 से दिया है। यथा —

टापे रहै दृग आसन कै, कुटी-कचुकी के पट खोलति ना,
 भाल सु गग प्रवाह बहै तिहि में उठि नैकु झिल्लति ना ।
 कारे भए करि कृञ्ज कौ ध्यान, इलाए तै काहू के डोलति ना ।
 ए तपसी—द्वै गस्तर भरे, दुनियाँ तै दयानिधि बोलति ना ।

—फोई कवि

भए नैन फकीरिनि हो रामा, अपने सैयाँ के करन बा ।
 रूप-भीरु माँगन के कारन, छौंन फिरत बन-बन बा ॥
 प्रेम-दिवानी कल न परत कछु, बाहर बवहुँ अँगनवा ।
 “हरीचन्द”, पिय-प्रेम उपासी, छोड धाम, धन जनवा ॥
 —भारतन्दु

फहिये भगवन् !, इन नैनों को योग-युक्ति साधना में अब
 कुछ कसर हे, यदि न होतो ऐ मेहरवान ! दीदार दिखला दासि
 न । नाहक क्यों तरसाते हो, क्योंकि ये आप के प्रेम की प्यार
 वियोगनी की योगिनी-आँखें, (आप के) दृश्य के सिवा और
 कुछ देखने की इच्छा ही नहीं रखती । यथा —

विदुरै-पिय के जग सूनों भयौ, अब का करिए औ पेरिए का
 सुख छाँडि कै सगम कौ तुम्हरे, इन तुच्छन कौ अब लेरिए का
 “हरिचन्द जू”, हीरन के व्यवहार कै, काचन कौ लै परेरिए का
 जिन आँखिन मैं तुव रूप बरयौ, उन आँखिन सौँ अब लेरिए का
 —भारतन्दु

भला, जिन आँखों में आपका रूप बसा हुआ हो, फिर
 उन से औरों को क्या देखना है । क्योंकि, दूध के आगे छात्र की रूप
 पुछ—कलाकद के आगे गुड की क्या गिनती, दाख के सन्तु
 निचौरी की क्या निश्चय । पर उस बे परवाही को क्या परवाह
 क्या —

नैना लागे बे-परवाही दे नाल,
 एक-पलक भी कल नहिँ पावौँ, रहदौँ हरदम-हाल ।
 दिन दिन जींदा ज्यौँन असादा, उस नागर दे रयाल,
 “नागरिया” बसीवाले दौँ, इश्क नहिँ जजाल ।
 —नागरी दास

उसका इशक नहीं, खासा-जजाल है। इस से रो—अनकही-
 शौखों। अर रो-रोकर नाहक प्रान तजती हो, अर अपने किये का
 फल क्यों न चाखो !, क्योंकि —

घाइ के आगें मिलीं पहिलें तुम,
 कौन सौं पूछ केँ सो मोहि भाँखौ।
 त्यों सन लाज तजी छिन में,
 केहि के कहेँ एतौ कियौ अभिलाखौ।
 फाज विगार सनै अपुनों,
 “हरिचन्द”जू धीरज क्यों नहिं राखौ,
 क्यों अर रोइ केँ प्रान तजौ,
 अपने किये कौ फल क्यों नहिं चाखौ।

—भारतेन्दु

एलित-किशोरी जी भी इन अनकही-आँखों की भाग्तेन्दु जी
 के समान ही शिकायत कर रहे हैं। यथा —

दृष्टिकन-दृष्टिकत दियौ हटि, धन्यौ नुकीली-सैन,
 का करिए फोड गीरु ना, यैरी अपनेई-नैन।

—एलित-किशोरी

हर पन मनभाया, पुभाया—परापर ही दृष्टफता रदा, पर
 के निमंत्र-नैन न माने, न माने। घर के ही धैरी हो गये, फोर और
 नो पा हो नहीं अरु, इहाँ की ही सारी आंग लगारें हुए है—
 इहाँ है, इहाँ की ही परिते लगन लगारें। इमे हमहीं नहीं कहते,
 इति “मागरोदास” जी भी साक्षी हैं, यथा —

माई ! इन अखियन लगन लगाई,
 पहिलें आपु जाइ कै उरमी, फिरि मो कों उरभाई ।
 विनु देखें मुख-कमल कान्ह कौ, अब नहि परत रहाई,
 “नागरि दास” आग-रूइ बिच कै, सैद-वैद प्रिदकाई ।
 —नागरी दास

ये ही तो सारी करतूतों की कारण हैं । अस्तु, इन्हीं सब करतूतों से श्रीमान् “नारायण स्वामी” पूछते हैं कि —

नैनों रे । चित-चोर बनावौ,
 तुम ही रहत भवन रसवारे, बाँके-नीर कहावौ ।
 तिहारे-बीच गयो मन मेरौ, चाहैं सौँहैं खावौ,
 अब क्यों रोवत हौ दर्ई-भारे, कहूँ तौ थॉग-नगावौ ।
 घर के भेदी बैठि द्वारि पै, दिन में घर लुटवावौ,
 “नाराइन” मोहिं वस्तु न चाहिँ, लैन हार दिसरावौ ।
 —नारायण स्वामी

किन्तु स्वामीजी !, जब ये कच्चे चोर हों तब तो बतारें, तो पक्रे से भी पक्रे पूरे-बालाक चोर हं । भले ही आप, वस्तु लेने का लोभ दिखलाइये, लेकिन ये मानने के नहीं । इन्होंने तो बैर सा बाँध लिया है । फिर भला ये क्यों बताने लगे । जैसा कि “धूरदास जी” कहते हैं । देखिये न —

अखियन तब तैं बैर घञ्यौ ।
 जब मैं हटिकति हरि-दरमन सौँ, सो रस नहिं विसञ्यौ ॥
 तब ही तैं उन मोहि मुलाई, गई उतहि कौँ घाइ ।

अब तौ तरकि-तरकि ऐँठति हैं, लौनी लेति बनाइ ॥
 भई जाइ वे स्याम-सुहागिन, घड-भागिन कहिवावैं ।
 “सूरदास” वैसी प्रभुता तजि, हम पै कर वे आवैं ॥

—श्रीसूर

भला !, जब वे श्याम के दीदार से सुहागिन हो रही हैं, तब इधर क्यों आने लगीं—अलौकिक प्रभुता तजने की क्या जरूरत । आह, इन निर्दश्यों की कुछ बात ही मालूम नहीं पडती । मिली भी रहती है और नहीं भी । साती हैं ललित माधुरीजी । यथा —

नैन हमारे निरदई, सत्र कुन-कॉनि लुटाइ,
 मिले रहैं अरु ना मिलै, तिनसौं कहा बस्याइ ।

—ललित-माधुरी

देखी, इन सारी कुल कान लुगने वाले नैन निर्दश्यों की अनोखी-रीति । पेशों के साथ क्या किया जाय । फिर और भी देखिये कि कसूर भी करें और रोयें भी । चोरी भी करें, दिखाई भी दें, पर पकडे न जायें—सजा भी न पायें । वाह रे अनीति !, यथा —

पहिलैं विनु जाने-पिछाने विना,
 मिली धाइ कैं आगैं विचारे विना,
 अपुनेनु सौं तुर तै जुदी जो भई,
 निज लाभ औ हानि सम्हारे रिना ।
 “हरिचन्द जू” दोष सबै इन कौ,
 जु कियौ सबै पूँछि हमारे रिना,

वरिआइ लरौ इन की उलटी,
अन रोहि आपु निहारे विना।

—भारतेन्दु

सब-सुख इन दुखियारी अनियारी आँखों के लिये सुख तो
सिरजा ही नहीं गया। जैसे कि —

इन दुखिया-आँखियाँनि कौं, सुख सिरजौही नाहिं ;
देरै वनै, न देखितै, अनदेरै अकुलाहिं। ❀

—विहारी

❀ भारतेन्दु-बाबू हरिश्चन्द्र जी ने विहारी के इस "रत्न" को इस
प्रकार जडा है। यथा —

अनदेखै अकुलाहि, बिकल-अमुचन सा एवै,
सनमुख गुरुजन लाज भरी प एसन न पावै।
चिरहु लखि "हरिचन्द" नैन भरिआवत छिन छिन,
सुपन नाद तजि जाति, सैन न कबहुँ पावौ इन।

❀

आदेख अकुलाहि, बिरह-दुख भरि-भरि रीवै,
सुनी रहै दिन रैन, कबहुँ सपने नहि सौवै।
"हरिचन्द" सजोग निरह सन दुखित सदाँ हीं।
हाइ निगोदी आँखिन सुख सिरजौही नाहिं।

❀

अनदेखै अकुलाहि, बावरी - के-के रीवै,
उधरी उधरी फिर, लाज तनि सत्र मुख सौवै।
दख "श्रीहरिचन्द" नैन भरिखेल न सखियाँ,
कठिन प्रेम-गति रहति सदाँ दुखियाँ। ए अखियाँ।

इन दुखियारी-आँखों के लिये मानों सुरा सिरजा ही नहीं गया--पैदा ही नहीं हुआ, क्यों कि जर प्राण प्रिय पास होते हैं, सामने ही सुसज्जित होते हैं और देखने का मनोहर-मौका भी होता है, तब इन आँखों से--लज्जावस (स्वेच्छा से) देखते भी नहीं बनता और जर वे इन आँखों की ओट (विलग) हो जाते हैं तब प्रेम के आधिक्य से--विना देखे अतीव वर्णनातीत-व्याकुलता होती है।

कहिये कैसा व्यगमय स्नेह में सरसाया हुआ चित्त-चुराने वाला सुन्दर-चमत्कार है। कितनी उत्तम-उक्ति है। छलित-पदावली में कितना माधुर्य भरा है। वाह ? "देखें बनें न-देखतें" यह एक ही पद ऐसा है, जिसका जयाव ही नहीं।

नहीं मकसूम इन मगमूम-आँखों के लिये राहत,
न देखे देखते बनता, न देखे दिल को है हसरत।

—प्रियतम

ध्यासजी की यहार भी देखिये। यथा —

अनदेखें अकुलाहिं, हाइ अँसुवाँ बरसावत,
नेह भरें हू रूखे हैं, अति जिय तरसानत।
"सुकनि" लखति हू पलक, करुण-सत सरिस सुहाइ न,
प्राण जाइ जो तऊ दोऊ दग कौ दुख जाइ न।

×

अनदेखें अकुलाहिं, ललकि पुनि देखनि चाहत,
इक-टक टकटकिबाँधि, तृपित से अधिक उमाहत।
पलक परे पै कोटि-कल्प से, भीतत हैं छिन,
विधि क्यों रवे निमेष, सुकवि दुखियाँ-अँखियाँ इन।

वरिआई लखौ इन की उलटी,
अब रोवहि आपु निहारे विना।

—भारतेन्दु

सब-मुच इन दुखियारी अनियारी आँखों के लिये सुख तो
सिरजा ही नहीं गया। जैसे कि —

इन दुखिया-आँखियाँनि कौं, सुख सिरजौही नाहिं,
देखै बनै, न देखितै, अनदेखै अकुलाहिं। ❀

—विहारी

❀ भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी ने विहारी के इस "रत्न" को इस प्रकार जडा है। यथा —

अनदेखै-अकुला हिं, बिकल अँसुवन क्षर लावै,
सनमुख गुरुजन लाज भरी ए लखन न पावै।
चित्रु लखि "हरिचन्द" नेन भरिआवत छिन छिन,
मुपन नीद तजि जाति, चैन न कबहुँ पायौ इन।

❀

अनदेखै अकुलाहि, बिरह-दुरख भरि-भरि रावै,
खुली रहै दिन रन, कबहुँ सपने नाहिं सौवै।
"हरिचन्द" सजोग प्रिरह सन, दुखित सदाँ हीं।
हाह निगोडी आँखिन सुख सिरजौही नाहिं।

❀

अनदेखै अकुला हि, थावरी - छे-छे रावै,
उधरी उधरी फिर, लाज तजि सब सुग्न लावै।
देखै "श्रीहरिचन्द" नेन भरिलखै न सखियाँ,
कठिन प्रेम-गति रहति सदाँ दुखियाँ' ए अँखियाँ।

इन दुखियारी-आँखों के लिये मानों सुख सिरजा ही नहीं गया—पैदा ही नहीं हुआ, क्यों कि जब प्राण प्रिय पास होते हैं, सामने ही सुसजित होते हैं और देखने का मनोहर मौका भी होता है, तब इन आँखों से—लज्जावस (स्वेच्छा से) देखते भी नहीं बनता और जब वे इन आँखों की ओट (घिलग) हो जाते हैं तब प्रेम का आधिक्य से—बिना देखे अतीव वर्णनातीत-व्याकुलता होती है।

कहिये कैसा व्यगमय स्नेह में सरसाया हुआ चित्त-धुराने वाला सुन्दर-चमत्कार है। कितनी उत्तम-उक्ति है। ललित-पदावली में कितना माधुर्य भरा है। चाह ? “देखें बनें न-देखतें” यह परु ही पद ऐसा है, जिसका जवाब ही नहीं।

नहीं मकसूम इन मगमूम-आँखों के लिये राहत,
न देखे देखते बनता, न देखे दिल को है हसरत।

—प्रियतम

घ्यासजी की पहार भी देखिये। यथा —

अनदेखें अकुलाहि, हाइ अँमूर्वो बरमावत,
नेह भरें हू खूबे है, अति जिय तरसावत।
“सुकवि” लपति हू परक, कल्प सत सरिस मुहाइ न,
प्राण जाइ जो तऊ दोऊ दग कौ दुग्य जाइ न।

X

अनदेखें अकुलाहि, ललकि पुनि देखनि चाहत,
इक-टक टकटकिर्योधि, तृपित से अधिक उमाहत।
परक परे पै कोटि-कल्प से, भीतत हैं टिन,
विधि क्यों रचे निमेष, सुकवि दुखियो-अखियो इन।

सुकवि शिरोमणि विहारीलाल के इस मनोहर-भजमून पर, रसीले 'रसनिधि' जी इस प्रकार सुरस वर्षाते हुए कहते हैं कि-

भर-भराँइ देखे बिना, देखै पल न अघाँइ,
'रसनिधि' नेही नैन ए, क्यों समुभाए जाँइ।

—रसनिधि

भला रसनिधिजी !, नेह पगे नैन किसी के समभाये कभी समझ भी हैं, जो श्रीमान् के समभाये समझेंगे ! अस्तु समझ लेना चाहिये कि ये जिद्दी-बच्चों की तरह किसी प्रकार न समझ सकेंगे !

अश्रु-चारि-वर्षा †

मजा बर्सात का देखो, तो इन आँसुओं में आ वैठो,
शियाही है, सफ़ैदी है, सफक है अश्रु-वारों हैं।

—सोई शास्त्र

† आधुनिक-कवि प्रभाकर श्रीखण्डेजी (प्रेम) ने अश्रुवारि वर्षा पर एक अच्छी उक्ति कही है। यथा —

जाकर तुम को हृदय में, दी जगह है प्रेम से,
रूठ कर जाते कहा हो, प्रेम धन तुम आँसुवों।
ओट काजल की सलैनी, दे रही धपकी तुम्हें,
क्यों बरसते क्षोभ की, काली घटा घन आँसुवों।

X

कर रहा पलकें तुम्हारी, भाव से हैं मुझ्पा,
कजनों से छोचनों में, बंद हो तुम आँसुवों।
छलिन-छीला ध्योम के, नक्षत्र की चिनगारियाँ,
स्वाधीन-जीवन फूल के, मकरन्द हो तुम आँसुवों।

कवि कोविदों ने अश्रु-धारि-घर्षा पर भी बड़े-बड़े अनूठे अनुमान उठाये हैं। अश्रु-धारि की विविध बहारें बखानो हं—झड़ी ही लगा दी है। जैसे कि कोयोंकी ज्योति ही चपला, भ्रू विलास ही सुर चाप, पलकों का घन (घादल) काजल की कीच, पुतली ही आकाशी तारे, माने हैं। यहाँ तक कि तन-ताप जुगनू, उसास ही समीर, उधर जवासा घर्षा आगमन के कारण मुरस ने लगता है, तो इधर छतियाँ मुरस ने लगती हैं। कहीं तक कोई गिनाये घर्षात का सारा सामान विरहणी की अश्रु-धारि-घर्षा में विरमा दिया है। देखिये न —

जौ लौं उतै जुगनू दरसै, तन-ताप इतै तन लौ दरसै लगी,
जौ लौं समीर उतै सर सै, “नँदराम” उसास इतै सरसै लगी।
जौ लौं जवास मुरी-मुरसै उत, तौ लौं इतै छतियाँ मुरसै लगी,
जौ लौं घनेरी-घटा बरसै उत, तौ लौं इतै अँखियाँ बरसै लगी।†

—नन्द राम

यू मचलना हर घड़ी है, वे सत्रय किस काम का,
किस ने जलाया दिल तुम्हारा, दिल जले तुम आँसुवों
मोतियों की घन लड़ी ढरका किये किस रज में,
क्यों उमड कर बह रहे हो, मन चले तुम आँसुवों

×

लौट आवो क्यों विरह को, छोडते सतस कर,
क्यों भटभटे दर बदर, होकर निरादर आँसुवों
है हृदय मन्दिर खुला, इस में जगह लो शान्ति से
कज-कलिका-कुज के, कोमल-कल्याणर आँसुवों

(कर्मवीर से उद्धृत)

† इसी भाव पर किसी कवि ने कैसी अपूर्व-उक्ति कही है कि वाह
यथा —

नद राम जी का घर्षा निरूपण निरखा ही, अथ एक और कवि का भी अश्रु-घर्षा और धारि-घर्षा का साम्यता युक्त घर्षण देखिये। यथा

उत कारी-घटा, इत में अलकै, वरु-पाँति उतै, इत मोता-लप।
 उत दामिनि, त्यों तिय-दत इतै, उत चाप, इतै भू वक घरा।
 उत चातक तौ पिय-पीय रटै, विसरै न इतै पिय एकु-घरा।
 उत वूँदैं-अगाध, इतै अँसुवा, विरही घन होडा होइ परी।
 —कोई कवि

कहिये, कितना समानतायुक्त सुन्दर-घर्षण हैं। उधर काली काली घटायें ह, तो इधर काली-काली विलुलित कुटिल-अलकावला हैं, उधर बकों की पक्तियाँ ह तो इधर कम्बु ग्रीवा में पड़ी मनोहर मोती लडी हे। उधर दामिनि दमक रही है तो इधर दिव्य-दत की छटा छिटक रही है। उधर सुर चाप है तो इधर वर-भू का विलास है। उधर चातक पिय पिय रट रहा हे तो इधर भी पिय एक-अड़ी नहीं भूलता। उधर अगाध-वूँदें हैं तो इधर अँसुओं की मड़ी लग रही है, अस्तु, इससे ऐसा मालूम होता है मानों विरही-जनों में और घन (घादल) में बरसने की होड पड (लग) रही है।

ब्रजभाषा के सूर्य थीसुर ने भी नैन घन का अपूर्व रूपक बाँधा है—सरस रचना रची है। यथा —

नैन-घन रहत न एकु घरी ।

कवहुँ न घटत सदाँ पानस इहिँ, लागी रहति मरी ॥

आँगन बरसै मेह, नैना-बरसै सेज पै,
 उत साँबिन, इत मेह, होडा होदी सर लग्यी ।

—कोई कवि

विरह-इन्द्र वरसावत निसि-दिन, व्रज पै अधिक करी ।
 ऊरध-साँस-समीर, तेज, जल, उर भुवि उँमग-भरी ॥
 बूढ़ति-भुजा रोम-द्रुम अवर अरु कुच-उच्च धरी ।
 चलि न सक्रति पग पथिक रहे थकि, चदन-कीच ररी ॥
 रम ऋतु मिटीं भई अत्र एकै, इहि विधि उलट परी ।
 "सूरदाम" प्रभु तुमरे मिलन त्रिनु, ऋतु-मरजाद टरी ॥ ❀

—श्रीसूर

देखी आपने साहित्य—गगन के सूर्य की सुन्दर-सफलता ।
 कितना सरस और त्रिपुल वर्णन है, कल्पनातीत कल्पना है । एक
 एक शब्द में कितना माधुर्य भरा है चाह ।

नैन घन घर्षा पर देव जी भी बड़ी ही हृदय द्रावक दाद देते
 हैं । कितनी साम्यता से सयुक्त सूक्ति सृजते हैं । यथा —

धोयन जोति चहूँ चपला, सुर-चाप सु भ्रू रुचि कज्जल कादौं,
 ❀ ❀ ❀ ❀

❀ नैन घन पर श्रीसूर की परू और सूक्ति सुनिय । यथा —
 सखी ! इन नै ननि तैं घन हारे ।

बिनहीं ऋतु बरसति निसि-यासर, सदाँ मलिन दोऊ तारे ॥
 ऊरध-साँस-समीर तेज अति, सुख अनग हुम हारे ।
 दिसन-दसन करि बसे घचन खग, दुग्य पावस के मारे ॥
 इरि-इरि बूँद परनि कचुकि पै, मिलि मिलि अजन कारे ।
 मानौं परन-कुटी सिब कीनीं, विविधि रूप धरि न्यारे ॥
 सुमति-भुमरि गरजति जल छँडति, भँसुवा-सलिल कि धारे ।
 बूढ़ति-भजदि "सूर" को राखै, त्रिनु गिरवर धर प्यारे ॥

तारे खुले न खुर्लीं बरुनी, घन-नैन दोऊ भए सावन-भादों । †

ब्रम्ह जी की वर्षा-बहार भी विलोकिये । यथा —
काल के कान्ह गए मथुरा, मनौं वीत गए जुग वासरतै,
बिरहागिन काम लगाइ-दर्ई दै, दसौं-दिसि देसि बहा दरतै।
“कवि ब्रह्म” भनै मोहि जान जरै ससि ? स्माम घटा-नलसौं परतै,
बिरही बरि बारहि-बार उठै, दृग-नीर किधौं घन धौं बरतै।
—ब्रह्म (शासन)

आँनद घन जी की भी पावसमयी आँखें अवलोकिये । यथा
“घन-आँनद” जीवन-भूरि सुजान की, कौंधन हूँ ना कहूँ दरतै,
नहिं जानिए धौं कित छाइ रहे, इत चातक-प्राण परे तरतै।
बिनु पावस तौ इन पावस होइ न, सु क्यौं करिऐ अलसौं परतै,
बदरा बरसै ऋतु में धिरि कै, त्रिनु पावस ए अँखियाँ बरसै।
—आँनद

घन घोर घटायुक्त घन तो वर्षा ऋतु में और कभी-कभी इन
ऋतुओं में भी बरस कर सुख देता है, किन्तु नेत्राभ्युद प्रवाह अर्थात्
अधु-धारि-वर्षा से तो अहर्निशि आँखें अलंकृत रहती हैं । यथा—

† देव जी के इसी भाष से मिलता हुआ एक उर्दू-शापर
सुन्दर शेर भी है । यथा —

दोनों आँखें मेरी, रोने में हैं सावन-भादों,
एक मादों की घटा, एक घटा सावन की ।

—बजीर अली (सगा)

निसि दिन बरसत नैन हमारे ।

सदाँ रहति पावस-ऋतु हम पै, जब सौँ स्याम सिधारे ॥

अजन थिर न रहति अँखियन में, कर कपोल भए कारे ।

कचुकि-पट सूखत नहिँ कवहँ, उर-विच बहत पनारे ॥

अँसुना-सलिल भए पग-थाके, वहे जाति सित-तारे ।

“सूरदास” वूडत है ब्रज अब, काहे न लेति उवारे ॥

—श्री सूर

ब्रज डूबे या न डूबे, इस से श्रीमान को क्या गरज क्योंकि —

कारौ कृतहि न मानै,

—श्री सूर

श्री सूर की इस सरस और भावमयी सूक्ति के साथ-साथ पुनाय कवि भी कहते हैं कि —

प्रापुन के विछुरैँ मन मोहन, बीती अबहि घरी-एकु कि द्वै है,

स्त्री दसा इतने में भई, “रघुनाथ” सुने तैं वडौ भै है है ।

लाइली के अँसुवान को सागर, वाढत जाति मनौँ नभ छवै है,

बात कहा कहिए ब्रज की अब वूडैँ है है कि वूडत है है ।

—रघुनाथ

श्रीमान् !, आप को लाइली से बिछुडे अभी घडी या दो घडी ही बीती होंगी, अस्तु इतने ही में उन की ऐसी दयनीय दशा हो गई है कि जिस के सुनने से बड़ा भय प्रतीत होता है, अर्थात् आप के वियोग विताडित-नेत्राम्युर्जो से आँसुओं का सागर मानों आकाश को छूने के लिये बढ़ रहा है और ब्रज की बात तो कहना ही क्या, या तो यह डूब गया होगा अथवा अत्य डूबता होगा ।

आँस और फविगण

भक्तताग्रगण्य रसिकवर रसखान जी भी कुछ-कुछ इसी में भरी हुए पेसी ही उत्तम-उक्ति कहते हैं। यथा —

आए कहा कहि कै कहिये, वृषभानु-लली तैं लला दग-नाद
ता छिन तैं आँसूवान की धार, न तोरति जद्यपि लोक निहारति।
वेगि चलौ "रसखान" बलाइ लौं, क्यों अभिमान तैं भौहँ सरोरति।
प्यारे ! पुरन्दर हौहि न प्यारी, अभै पल आधिक मैं ब्रज बोरति ।।
—रसखान

सुना प्यारे ? प्यारी को पुरन्दर (इन्द्र) न समझना, जो फिर को उठाकर बच जाने का गुमान कीजियेगा। अभी आधा पल ही अपने नेत्राम्बुद-प्रवाह से सारे ब्रज को धोरती है—अमा अमौ डुघोयें देती है। इस से श्रीमान् की बलैयाँ लू, शीघ्र चलकर दरश-दान दीजिये। नाहरू ब्रज को क्यों डुबवाना चाहते हो !।

मुझे रौंने नहीं देता, तस्बुर तेरी आँसों का,
वगरना दोनों-आलम को, डुनाता अपनी आँसों से।
—हजरत

गोपियों के अश्रु धारि-धर्पा का जल बहुत सा इकट्ठा हो गया था, अस्तु वह मोरी व पनालों का पीछा छोड़, नदी नालों में निवास करता और निकलता, सिंधु का स्वरूप हुआ जाता है देखिये न —

† रसखानजी के इस सरस भाव पर कोई कवि क्या ही अनूठी-उक्ति कहता कि घाह । यथा —

अरे पयिक ! कहियो इती, वा मौहन सौं देर,
अब दग-जल भरि राधिका, प्रज हि बहावति केर।
—कोई कवि

पिन के आँसुवान कौ नीर, जा मोरी बह्यौ बहि कै भए नारे,
 रे भए नदिया बढि कै, नदिया-नद तैं भए फाँट-करारे ।
 ते चलौ तौ चलौ उत कौँ, “कवितोप” कहैं ब्रज-राज-दुलारे,
 नद चाहति सिन्धु भए पुनि, सिन्धु तैं है हैं जलाहल-भारे ।
 —तोप

इसी भाव से मिलता जुलता “शोदा” साहित्य का क्या ही
 जग भरा यह शेर है कि घाह । यथा —

समन्दर कर दिया नाम उसका नाहक, सब ने कह-कह कर,
 हुए थे कुछ जमा-आँसू, मेरी आँखों से वह-वह कर ।
 —शोदा

नाहक ही—लोगों ने कह-कह कर उसका नाम “समन्दर”
 दिया, वह तो मेरी आँखों से बहे हुए कुछ आँसू इकट्ठे हो गये
 और क्या है ? ।

रत्नाकर जी भी नायिका के नोकदार—नैनों से निकली हुई
 दु-घारि पूरित नदी का निराला ही बिनाद करते हैं । यथा —

जस, रस, मधुर-छुनाई “रतनाकर” कौँ,
 कानन-बरस घटा-घट लौँ नदी चली ;
 यहि वृन-पातलौँ, तमाम कुल-कानि गई,
 गुरु गिरि रोक-टोक है जिमि रदी चली ।
 लास-अभिलास, भौर भ्रामन गँभीर लगी ;
 उँभग-उमगि बढि करत वदी-जली ;
 घोरज-करार फोरि, लज्जा-द्रम तोरि, धोरि,
 नौकदार नैन तैं निकसि नदी चली ।

—जगन्नाथदास [रत्नाकर]

भारते दुजी भी एक उत्तम-उक्ति द्वारा नैनों से नदी हल्लों
हुप निहायत दर्द—अगेज घाअसर-कारक सरस सूक्ति कहते
यथा —

हमारे नैन वही नदिया ।

वीती जानि औधि सर पिय की, जो हम सों वदिया ॥
अनगाहौ इन सकल—अग ब्रज, अजन कों धोयौ ।
लोक-वेद, कुन-काँनि, बहाई, सुरन लहौ खोयौ ॥
इवत हौं अकुलाइ अथाहन, यहै रीति—कैसी ।
“हरीचन्द” पिय महा-बाहु तुम आछवि गति ऐसी ॥

—भारत

श्रीमान् आँसूजी ?, जय तक कि, मोरी पनालोंको सावित बर
नद नदियों में निनाद करते हुप सिन्धु में समा रहे थे तब तक ही
खैर थी, पर अब तो आगे बढ़कर वे और गजब-ढहाना चाहते
हैं । इसलिये प्रह्लाद कवि भगवान को आगाह करते हुप उर
जी से कहलाते हैं कि—

जोग देंन गयौ हो वियोग-वारि-वारिध में,
इवति बचौं हौं नाथ । नारी—नैन यों बहैं
गग की सहस अधर-दुधार-धार,
इन्द्र-कोपि नाहि जो बचौगे गिर कौं गहैं ।
सागर में न देख्यौ ऐसौ देख्यौ ना अरनी पै कहैं,
मुनिन पै अचैगौ नहि कान खोलि कै कहैं,
“कवि प्रह्लाद जू” मिलाप-सेतु बाँधौ नातौ,
बट के पतौवा पै रावरे भलैं रहैं ।

—प्रह्लाद

शीघ्र समझ जाइये साहिव !, वस देर नहीं है, अश्रुवारि-
ह से प्रलय ही हुई जाती है। अस्तु श्रीमान् को फिर वही बड़
पत्ते के सिवा और कहीं ठिकाना न मिलेगा।

विरह-घन्धि से उत्तापित आँसुओं में कितनी बड़ी-चढ़ी गर्मी
ही है, यह कोई द्वारिका निवासो—श्रीद्वारिका नाथ से कहता
सुनिये और अनुमान कीजिये। यथा —

न्हात समैं दास के पाँड़न परी हो एकु—

नर सिन्धु-तट पै निपट बेकरार मैं।

मैं कही को हैतू, कहि बूझत हौ कृष्ण कौ ती-

कीजिए सहाइ मेरी सकट अपार मैं।

हौं तो बड़वानल, वसायौ हरि ही कौं मेरी,

मिनती सुनाउ जाइ द्वारिका के दरवार मैं,

व्रज की अहीरिन के आँसुवा बलित आइ,

जमना जरानै मोहि महानल-भार मैं।

—दास

अर्थात् व्रज की अहीरियों के विरह बलित आँसु, हरि द्वारा
सुद में बसाया गया मुझ बड़वानल अग्नि को यमुना से मिलकर
सुद में आया महा अनिल सा जलायें ही डालता है। अपनी
पत्त-ग्याला से भस्म करे ही डालता है।

कहिये कितनी बड़ी-चढ़ी उक्ति है, विचारिये और अश्रु-
त्ताप का अनुमान कीजिये।

जब से उसबुत की देखली आँसैं,

इतना रोये कि आगई-आखैं।

—कारिभ

किसी वियोगनी-वाला के होली के समय अथु धारिप पद्माक्षों पर "पद्माकर जी" की पुनीत प्रतिभा का प्रताप का कविल है। निराली निरुक्ति से अलकृत निनाद है। यथा

फागुन में कागुन पिचारि ना दिरगई देति,
 एती बडी-गाह उन काँनन में नाइ आउ।
 "कहैं पदमाकर" जो हितू है हमारी वीर।
 (तौ) मेरे रुहे तैं वा धाम लागि धाइ आउ।
 जोरि जो धरा हैं वाहि बे-दरद द्वारै सुतौ,
 होरी विरहागिनि काँ लूकन सौँ लाइ आउ,
 एरी! इन नैननि के नीर में अरीर घोरि,
 वोरि पिचकारी चित-चोर पै चलाइ-आउ।
 -पद्माक्ष

विरहिणी-प्रजाङ्गना की केसी हृदय-द्रावक दर्द-भरी उक्त उक्ति है और फिर नैनों के नीर में अरीर को घोर कर चित-चोर पर चला आने की दिली दर्द की केसी दयनीय आर्जू है कि क्या कहना है। कवि ने इस अनूठी-उक्ति के साथ अपना कस्तूरी निकाल कर रख दिया है। विचारिये और इसकी उत्तमता का अनोखा-अनुमान कीजिये।

अङ्गना के अविरल अथु प्रपात पर "कवि आलम" अनुमान अलकृत करते हैं। यथा —

अँगु के दहत धाकैं अँगन महतिदुल,
 अँगन हि सीरी करौ अँगनहि आइ कै,
 पूल, जल, चदन, समीर तैं न सीरी होति,

अति ही तपत थार्की सकल उपाइ कै ।
 कहँ “कवि आलम” न डोलै औ न डोलै वाल ?
 नैन-आँसू-धार ढरै वैठी मुरझाइ कै ,
 मानौं बिनु नौरै ही अघार वेगिठीली जाति ,
 फटिक-सलाका हू दुरासी टेक लाइ कै ।

—आलम

आप कहते हैं कि, उस अङ्गना (नायिका) के अङ्ग को अनङ्ग जला-जला कर थिकल कर रहा है, इस लिये आप आँगन (मकान का खुला हिस्सा) तक चल कर ही उस की तपन बुझा आइये, क्योंकि वह इस कदर जल रही है कि फूल, चदन, जल और हवा आदि उपचार करने पर भी सीरी (ठडी) नहीं होती। सारे उपाय कर-कर के हम थक गयीं, आपकी चिरह-बन्धि से थिकल वह न डोलती है और न डोलती ही है, केवल अविरल-अश्रु धारा बरसती मुरझाई हुई वैठी है, सो वह पेसी मालूम पडती है कि आना कोई ललित-लतिका पास के आघार बिन गिरी जाती थी, जैसे दो अश्रुरूपी स्फटिक की शलाका (डडी) लगा कर स्थिर कर दी हो—उसे टेक दी हो। धन्य है आलम आपको और आप की प्रतिभा को।

कहो आँसूओं से नूँ को वो धोयें ,
 अर्भा साक उस ढर की, नूँ से मली है ।

—काइ शायर

सम्माननीय ससृष्ट-साहित्य के सृजेताओं ने भी अश्रु-धारि-
 ष्यां पर अनूठी-अथित कही है। जैसे कि -

आँखें और कविगण

अनुदिनमति : तीव्र, रोदिपीतित्वमुच्चै ,
 सखि । किल कुरुपे, त्व वाच्यतामे मुयैव ।
 हृदयमिदमनङ्गागार सगाद्विलीय ,
 प्रसरति वहिरम्भ, सुस्थित नैतदश्रु ॥
 —इत्यचिरं बवे

कोई विरह विधुरा नायिका, सखी के पूछे जाने पर कि रोज व रोज इतना क्यों रोती है, इस पर वह उत्तर देती है कि सखी! ऐसा कह कर मुझे क्यों व्यर्थ-बदनाम करती है, अरी विरह पागल से अनभिज्ञ स्वस्थ चित्त वाली ! ये मेरी आँखों में आँसू नहीं हैं ये तो कामाग्नि से पिघल पिघल कर हृदय ही पानी हो कर नेत्रों के पाइप द्वारा (फिल्टर होकर) बाहर निकल रहा है।

इस भाव को कविवर विहारी लाल जी ने भी अपनाया है और खूब अपनाया है। देखिये न कैसी दोहे रूपी दुनाली में भर कर हृदय-बेधक गोली मारी है। यथा —

तत्प्यौ आँच अति विरह की, रह्यौ प्रेम-रस भीनि,
 नैननि के मग जल वहै, हियौ पसीजि-पसीनि ।
 —विहारीलाल

⊙ इस दोहे पर क्यासजी की बहार देखिये। यथा —

हियौ पसीजि-पसीजि, हाइ इग द्वार बहत है,
 बाजर नहिं, जर गणें, अधिक रँग-स्याम गहत है।
 “मुकपि” घूँद मिसि टूट-टूक छे निरुति चलयौ सय,
 हाइ पाहि मी पीतम हँ, यह तत्प्यौ आँच अप ।

अस्मत्प्रयाण-समये, कुरु मङ्गलानि,
 किं रोदिपि-प्रियतमे ?, वद-कारण मे ।
 हे प्राणनाथ विरहानल तीव्र-ताप,
 धूमेन वारि गलित, ममलोचनाभ्याम् ॥

—कस्यचित् कवे

—अर्थात् परदेश-गमन के समय पत्नी के रोने पर, पति पूछता कि प्रियतमे !, मेरे प्रस्थान समय मङ्गलाचार न कर के रो रही हो ? इसका क्या कारण है । इस पर नायिका उत्तरती है कि प्राणनाथ !, आपकी विरह घन्टि का उठा हुआ धूँआ आँसूओं में लगा है इसी से ये आँसू निकल पडे हैं और कुछ गलित नहीं हैं ।

अश्रुच्छलेन सुदृशो, हुतपावकधूमकलुपास्या,
 अप्राप्य मान-मङ्गे, विगलति लावण-ववारिपूर इव ।

—कस्यचित् कवे

होमी गयी अग्नि के धूप से धूसिरित आँखवाली उस सुलो-ना का सौन्दर्य जल (आवदार पानी) शरीर में प्रतिष्ठा न कर, मार्गा आँसूओं के बहाने भर रहा है—निकल रहा है ।

एक दूसरे कवि-कोविद, किसी वियोगिनी-बाला की अचि-ल अनुघात प्रवाह से अभिपिचित स्तन-मडल को देख कर, तपेक्षा करता है कि —

अङ्गानिमे दहतु कान्त-वियोग-वन्धि,
 सरक्ष्यता प्रियतमो हृदि वर्तते य ।

इत्याशया शशि-मुखा ? गलदश्रुवारि,
धाराभिरुष्णमभिपिञ्चति हृत्प्रदेशम् ॥

—कविर्भवे

अर्थात् कान्त (प्रियतम) की वियोग-घट्टि मेरे अँसुओं को भी ही जला दे, किन्तु हृदय में वसे प्रियतम को वियोग-घट्टि से अति-उत्तापित ताप न लगे, इस आशय से वह चन्द्र-मुखी धारा-प्रवाह अश्रु-जल बहा कर हृदय देश का सिंचन (सँव) कर रही है।

उर्दू के उस्ताद और प्रतिभा सम्पन्न शायरों ने भी आँसुओं पर अच्छे-अच्छे मजमून फर्माये हैं। जैसे कि —

तिपल-अशक-पेसा गिरा, दामाने-मिजगों छोड़कर,
फिर न उठ्ठा कूचये, चाके गिरेवाँ-छोड़कर।

तिपल (बालक) आँसु ?, मातृ रूपी पलकों का पल्ला छोड़ कर ऐसे गिरे, कि फिर फटे हुए दामन के कूचे से न उठे।

दिखलाये हम ने लेके जो दामन पै दुरें-अशक,
कायल हमारी आँसु के, सब जौहरी हुए।

मैं ने अपने मोती रूपी आँसु दामन पर गिरते हुए (दानव पर रख कर) दिखलाये, तो उनको देख कर, सब जौहरी उनका युनीत प्रतिभा के कायल हो गये, अर्थात् आँसुओं में मोती समान ही प्रभा पाई। जप भी फम नहीं।

अरक के कतरे जो मिजगों पर इकट्ठे हो गये,
तोश ये अँगूर के भी, दाँत खट्टे हो गये।

—जीव

पलकों पर इकट्ठी हुई आँसुओं की धूँ को देख कर अँगूर
गुच्छों के भी दाँत खट्टे हो गये।

तजजी साहिब की तजीयतदारी भी आँसुओं पर निहायत
नौखा अनुमान घर्षा कर रही है। यथा —

यहाँ तरु गिरिया में रोये सहर तक,
गर्ला-कूचे में पानी है कमर तक।

—तजजी

मैं उसकी खुदाइगी (विरह) में सुबह यहाँ तक रोया कि
गी-कूचों में मेरे आँसुओं का पानी कमर-कमर तक हो गया।
ता ने वर को ज्यादा अरक न बहाये घरना, रोजे हसर प्रलय-
का दिन नजदीक ही आ जाता।

हम जेरे राक लेके जो यह चरम-तर गये,
अन्धे कुए भी जितने थे पानी से भर गये।

—तजजी

हाकधि दाग की भी आँसुओं पर दर्द भरी दाद देखिये
साहिये उनके दर्द अगेज कलाम को यथा —

तक ने खून सिद्धमत ली, हमारे दीद-ये तरसे,
हर आँसू ने मुँह धोया, शने-मेहतावे हिजराँका।

—दाग

आँसु और कविगण

आशमान ने मेरे आर्द्र आसुओं से समालकृत नेत्रों से अच्छी सेवा ली कि—मित्र के विरह में जो रात भर रोया किया था और मेरी आँसु के हर-एक अश्रु-कण से विरह-धिपति चन्द्रदेव का मुँह धोया किया, तभी तो वह आँसु उज्ज्वल होता जाता था।

शफक खिली हैं जिमीं पर भी अश्रु लूँ से मेरे,
यह रङ्ग तूने दिखाया है, चश्मे-तर कैसा।
—दाग

पृथ्वी पर खून नहीं पडा है, यह तो मेरी आँसुओं ने आँसु खून धरसा कर, उपा-काल उपस्थित कर दिया है।

मेरे अश्रुओं में हैं, या तेरे दन्दाने-मुसफका में,
गुहर की आव, हीरे की तजल्ली, नूर तारे का।
—दाग

तुझे अपनी दातों की सफाई का बडा अभिमान है, पर तू तो यता कि, मेरे आँसुओं से बढ़कर क्या वे साफ हैं। मोती का आभा, हीरे की दमक, और तारे का प्रकाश तेरे दातों में है या मेरे आँसुओं में ?

⊗ महा कवि गालिय भी आँसु से लहू न टपकते के कायल हैं, यथा —

रगों में घूमने फिरने के हम नहीं कायल,
जो आँसु ही से न टपका तो मिर एहू क्या है।
—गालिय

गालिय साहिव भी अपने दुर्भाग्य की शिकायत के साथ कुछ अनोखे ढंग से आँसुओं का तस्किरा करते हैं। यथा --

घर मेरा, गर मैं न रोता भी तो वीरों होता,
बहर गर बहर न होता तो बयानों होता।

—गालिय

लोग कहते हैं कि मैंने रो-रोकर अपने घर को बहा दिया। मुझे अपनी आँख के आँसुओं की इस शक्ति से इन्कार नहीं, किन्तु मैंने उस के कारण अपनी ही हानि की है इस बात को मैं नहीं मानता। वेशक ! मेरी आँखों ने आँसू बहा कर घर को साफ कर दिया, पर यदि वह (आँसू) ऐसा न भी करते तो भी मेरी बगवादी में कुछ शक न था। क्योंकि पृथ्वी के दो ही भाग जल और थल हैं। यदि आँखें आँसू न बरसाती तो जल न होता बियाबों होता। बरघादी मैं तो फिर भी कसर न थी।

नजीर की भी निराली अर्दाँ से अलकृत अनोखे आँसुओं की अनूवा-बहार देखिये। यथा--

कल जो टुक रोया किसी की, याद में वह गुल बदन,
अशक थे आँखों में या मोती कुचल कर भर दिये †

—नजीर

रोऊँगा आपके तेरी गली में, अगर में यार,
पानी ही पानी होगा, हरेक घर के आस-पास। †

—नजीर

† नजीर के उचित दोनों शेरों का अर्थ स्पष्ट है। इस से उन पर टीका टिप्पणी लिखने की जरूरत नहीं।

—संपादक

पुकारा कासिदे अशक्त आज, फौजे गम के हाथों से,
हुआ ताराज पहिले शहरे-जाँ दिल का नगर पीछे।
सुनो में खूँ को अपने साथ ले आया हूँ और बाकी,
चले आते हैं उठते बैठते, लखते जिगर पीछे।

—नजीर

विरह में प्रेमी के नेत्रों से आँसुओं के साथ-साथ लूट आने लगा है, उससे यह जान पड़ता है कि अगर कुछ दिन यही हालत रही तो कलेजा भी टुकड़े-टुकड़े हो यहकर आने लगेगा। इसी भाव के प्रदर्शन में कविवर नजीर साहब फर्माते हैं कि हर कारारूपी अश्रु यह सन्देश लाया है कि, आज प्रियतम के विरह की सेना ने पहिले जान--शरीर रूपी नगर को और उसके बाद दिव्य हृदय पुर को लूट मार कर के चौपट कर डाला। अतः लूट को तो मैं अपने हमराह—साथ लिवा लाया हूँ। अब पीछे उठते बैठते जिगर—कलेजे के टुकड़े, चले आ रहे हैं। लूट मार के भय से विह्वल चुटियलों—चोट खाये हुए की भगदड का कैसा करण पूर्ण दृष्य है। धन्य नजीर ।

अशक्त आँखों से पल नहीं थमता,
क्या बला दिल ही दिल में आव हुआ।

—सोत्र

उर्दू-साहित्य के महारथियों की कुछ उड़ाने देखी, अब उग्र गुण-प्राही और कविवर अन्दुल रहीम खान-खाना साहिब की सूक्त को सराहिये देखिये कैसा आँसुओं को हृदय मन्दिर का भेदिया बतकर अपनी प्रखर प्रतिभा का परिचय देते हैं यथा —

“रहीमन” असुवा नैननि ढरि, जियन्दुरग प्रगट करै हि ,
जाहि निकारौ गेह तैं, कस न भेद कहि दहि । ७

—रहीम

ठीक भी है, भला जिसे घर से निकालियेगा, वह घर का
क्यों न कहेगा । इसीसे “श्री सूर” ने इनको कपटीके कलक
कलकित किया है । यथा —

कपटी नैननि तैं कोऊ नाहीं ,

घर कौ भेद आनि के आगैं, खोलति ना सकुचार्हीं ।

आप गए निधरक है, उन पै, बरजि बरजि मैं हारी ,

मन-कामना पाइ परि-पूरन, ढरि रीकै गिरधारी ।

इनहि बिना वे, उनहि बिना ए, तरफरात ज्यों मीन ,

“सूर दास” कलजुग की महिमा, कुटिल करम-फल लीन ।

—श्री सूर

अयोध्यासिंह जी उपाध्याय ने आधुनिक हिन्दी-भाषा में
असुओं पर बहुत कुछ उक्तियाँ कहीं हैं । उनमें से कुछ मद्दे-नजर
रखते हैं । इस रस का भी रसास्वदन कीजिये । यथा —

७ रहीम जी की इस सूक्ति पर “नवनीत जी” की जिल्है
लिखिये । यथा —

कस न भेद कहि दैहि, दसानन भ्रात निकारे ,

तासौ मिल रहुनाथ, निसाचर सब ही मारे ।

कहै “नीत कविरान” साज सैना जीव्यौ रन ,

घर तैं कादौ जाहि, भेद क्यौ कहैं न रहिमन ।

आँसू का आँसू ढलकता देखकर,
जी तडफ़ कर के हमारा रह गया।
क्या गया मोती किसी का है रिखर,
या हुआ पैदा रतन कोई नया।

❖

ओस की बूँदें कमल में हैं कदी,
या उगलती बूँद हैं दो मधलियाँ।
या अनुठी—गोलियाँ चाँदी मदी,
खेलती हैं राजना की लडकियाँ।

❖

या जिगर पर जो फफोला था पडा,
फूट कर के वह अचानक वह गया।
हाय ? था अरमान जो इतना-बड़ा,
आज वह कुछ बूँद बन कर वह गया।

❖

पूछते हो तो कहो मैं क्या कहूँ,
यो किसी का है निराला-पन गया।
दर्द से मेरे-कलेजे का लहू,
देखता हूँ आज पानी बन गया।

❖

प्यास थी इन आँसू को जिसकी घनी,
वह नहीं इस को सका कोई पिला।
प्यास जिस से हो गई है सौ गुनी,
बाह ? , क्या अच्छा इसे पानी मिला।

ठीक करलो जाचलो धोखा न हो,
वह समझते हैं, मकर करना इसे।
आँस के आँसू निकल कर के कहो,
चाहते हो प्यार जतलाना किसे।



'आँस के आँसू समझलो बात यह,
आन पर अपनी रहो तुम मत अडे।
क्यों कोई देगा तुम्हें दिल मे जगह,
जब कि दिल में से निकल तुम यों पडे।



हो गया कैसा निराला यह सितम,
भेद-सारा खोल क्यों तुम ने दिया।
यो किसी का है नहीं खोते भरम,
आँसुओं ?, तुम ने कहो यह क्या किया।

—अयोध्यासिंह उपाध्याय

आनन्दाश्रु

पीतम आवत जानि कै, भिस्ती-नैन सिताव,
हित-मग में तू देति हैं, आँसुवन कौ छिरकाव।

—रसनिधि

अति प्रिहासकि से तो आँसू वहा ही करते है—नेत्रों से निकला ही करते हैं, पर आनन्दाश्रुओं का आनन्द भी कुछ कम निराला नहीं है। यह लुत्फ भी कुछ और ही है। देखिये न कोई

कामिनी ? , फान्त (प्राण प्रिय प्रियतम) की कमनीय रूप-मातृ को निरख निरख कर आन-दायु पलक रूपी अञ्जुली द्वारा उल्लास रही है, अस्तु सखी द्वारा पूछे जाने पर वह कहती है कि -

अँसुवा होंहिं न ढीट ? उर, ए अँखियों रिक्वारी,
पल-अँजुरिन निज मोत पै, पानी सींचति वारि ।
—सखी

अरी ढीट !, मेरी आँखों में ये आँसू नहीं हैं जो—मङ्गलस अमङ्गल से डरती है। अरी बावलो !, ये तो रिक्वार पलक-अञ्जुली में आनन्दायु रूपी पानी भर-भर कर निज में (प्यारे) पर वार रही हैं ।

सुकवि मतिराम जी, सयोग और वियोग दोनों में ही आँसुओं के गिरने का कारण पूछते हुए कहते हैं कि -

विनु देखैं दुख के चलैं, देखैं सुख के जाहिं,
कहाँ लाल । इन दृगन के, अँसुवा क्यों ठहराहिं ।
—मतिराम

विहागी लाल जी कुछ और ही कहते हैं, वे कहते हैं कि । मालुम इन नेही-नैनों में क्या बलाय उपजी है कि जो नित प्रति नीर (पानी) से भरे रहने पर भी जरा प्यास नहीं बुझाती। यथा-

नेही-नैननि कौं कछू, उपजी बडी-बलाइ,
नीर-भरे नित-प्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाइ । †
—विहागी लाल

† उक्त दोहा प० अम्बिका दत्त जी व्यास कृत "विहागी विहार" में नहीं है ।
—सम्पादक

आँसुवों से अलंकृत अङ्गना की आँखों को अघलोकन कर
 एक पूछता है कि यह क्या मामला है, क्योंकि उस समय कोई
 कारण अथु विमोचन का न था। इस पर नायिका उत्तर देती हुई
 ब्रती है कि —

ॐ ॐ ॐ ॐ
 ॐ ॐ ॐ ॐ

नीके में फीके हैं आँसु भरौ कत, औ ऊँचे-उसासन गरौ बर्यौ भरौ परै,
 रावरौ-रूप पियौ आँसियाँनु, भन्यौ सो भन्यौ उवन्यौ सो ढन्यौ परै।

—देव

श्रीमान् का रूप-रस जो इन आँखों ने पिया है वही भरा
 रहा सो भरा रहा, और जो उबरा—बढ़ा वही इन आँखों द्वारा
 निकल रहा है। इन्हें आँसु न समझिये। रो नहीं रही हूँ।

इसी भाव को, रघुनाथ कवि यों अपना कर, निराले ही रस
 से रँग-भंगा कर, इस प्रकार पेश करते हैं। देखीये —

आए कहूँ रतिमान लरयौ तिय कै आँसुवान की धार चली है,
 देखि कहा “रघुनाथ” कहाँ तौ कही सकुचे इमि चातुरता छवै।
 रावरे ? क्यौँ मुख-चद चितै, ए कुमोदिन-आँसुँ अनन्द महा भवै,
 ही मैं न बद सर्काँ करि फूल तैं ऊपर है मकरन्द चत्यौ चवै।

—रघुनाथ

कवियों को आँसुवों से अलंकृत आँसुँ अच्छी लगती है। वे
 अकारण ही छेड-छाड कर आँसुवों का आह्वान करा कर उनकी
 अपूर्यता का आनंद लिया करते हैं। चाहें वे आँसुँ उनको इस

हरकत की सजा इन के हृदय में तीर की तरह गढ़-गढ़ कर
करें, पर ये अश्रुओं से तर आँखें अबलोक करने का श्रम
उद्योग करेंगे। यथा -


साहस करि हँसि कै रस के मिसि,
माँगी विदेस विदा मृदु-वान सौं,
सो सुनि वाल ? गई मुरझाइ,
दही बर-बेलि ज्यों धीर-दवान सौं।
नैन, गरौ, हियरौ भरि आयौ,
पै बोल न आयौ कछु वा सुनान सौं।
सालें अजौ उर माँहि गढी,
वे बढो-आँसियाँ उमडी अँसुवान सौं।
—कोई कवि

अर्थात् नायक ने हँस कर रस के मिस (ऊठे) से विदेश जाने
की विदा माँगी। वस, बर-बल्लरी सी बाला ? विरह अग्नि से
घलने लगी, कुछ कहते-सुनते न घना, केवल थडी-थडी आँसुओं से
आँसू उमड आये, सो वे अब तक हृदय में गड रहे हैं। और
आइन्दा फिर ऐसा कार्य न कीजियेगा।

अस्तु वे अनोखी-आँखें धन्य हैं, जिन से प्रेमायुओं को
ऐसी पुनीत घाव अहर्निप प्रवाहित हुआ करती है।

वह फलेजा ? हो कई-टुकड़े थमी,
नाम सुन कर जो, पिघल जाता नहीं।
पूट जायें आँसू वह जिस में फमी,
प्रेम का आँसू, उमड़ आता नहीं।

नैन-निकुंज

नैन-निकुंज 

श्लोकाः

ॐ श्री ॐ

श्लोकाः

नूनमाहाकरस्तस्या सुभ्रूवो मकरध्वजः
यतस्तन्नेत्रसञ्चार सूचितेपु-प्रवर्तते ।

उस सुन्दर भृकुटी वाली भामिनी का, काम-देव आशकारी-
कर है यह सत्य है, क्योंकि वह अहूना (स्त्री) द्वारा आर्खे
लाकर घटलाये हुये स्थान पर फौरन चला जाता है ।

नि स्त्रीम शोभा, सौभाग्य, नताङ्ग्या नयनद्वयम्,
अन्वोन्या लोकनानन्द, विरहादिव चञ्चलम् ।

उस नताङ्गी के नेत्र अपार शोभा के खजाने हैं, अस्तु, आपुस
दोनो (प्रिया प्रियतम) के देखने में, मानों आनन्द और वियोग,
चंचल हो रहे हैं ।

आसा व्रतमती वीक्षणोर्यत्पुर परिसर्पणम्,
सह यात मनस्तत्र, त्यक्त्वा भूयो निवर्तनम् ।

इन नवेली नायिकाओं के नेत्रों का यही व्रत है कि पहले
मन को पिछाडी छोड़ कर, अगाडी जाना और फिर मन के
पक्षों जाने पर उस मन को घड़ी छोड़कर लोट आना ।

अर्जुन कृष्णसयुक्त, कर्ण यत्रानुधावति,
तत्रैव तु कुरुक्षेत्रमिति सुग्धेमृशामहे ।

हे मुग्धे ! कृष्ण से सयुक्त अर्जुन अर्थात् काजल से सरला की काली पुतली, जब कर्ण (कान) के पास जाता है तब मैं ऐसा विचारता हूँ कि तेरे नेत्र अवश्य कुरुक्षेत्र हैं।

एकमेवाक्षि वामाक्षि, रञ्जयाञ्जनलेखया,
जायतामैन्दवेविम्बे, रञ्जनाम्बुज सङ्गम।

हे सुलोचने ? एक कमलाक्षर को ही काजल से (अनौषधी) अलकृत करो, जिस से चन्द्र विम्ब में खजन और कमल का सगम हो जाय—और कवि जी को राज्य भी मिल जाय।

अमुष्य मुपिता लक्ष्मीश्चक्षुपेति न नूतनम्,
न वेद्मि कथयत्यस्या, कर्णे, लग्न किमुत्पलम्।

कोई कामिनी कानों को कमल से अलकृत करे जा रहा है इस पर कवि कहता है कि, यह कुछ नई बात नहीं है, जो नेत्रों के कमल की लक्ष्मी अर्थात् श्री (सोभा) चुरा ली हो और उसकी शिकायत करता हो। किन्तु अब यह नहीं जाना जाता कि कान पर रखा हुआ कमल पुनः क्या कह रहा है।

मृगसम्बन्धिना दृष्टिरसौ यदि न सुभ्रुव,
धावती श्रवणोत्तस लीला दूर्वाङ्कुरे कुत।

यदि इस सुन्दर-भृकुटी वाली भामिनी को दृष्टि मृग की सा न होती, तो कर्णभरण से सयुक्त दूर्वाङ्कुर के ऊपर दौड़ कर कैसे जाती।

तस्याः श्रवण-मार्गेण, चलिते यदि लोचने,
युत प्रकामधवले, धत्तः कृष्णानुरक्तवाम्।

यदि उस-नायिका के नेत्र, कानों के मार्ग से चलते हों, तो त (सफ़ेद) होते हुए भी काले और लाल क्यों हैं ।

श्रूयता कौतुक सोऽपि, स्मर शृङ्गारिणागुरु ,
अमुप्या शिष्यतामेति; श्रवणोन्मुखयोर्दृशो ।

सुनते हैं, शृङ्गारियों का गुरु कामदेव, कामिनी के श्रवणोन्मुख नों तक फैले हुए नीरज कमल से नेत्रों का शिष्य हो जाता है अपूर्व आश्चर्य है॥

भास्वकुण्डल-माणिक्य, प्रभाप्रतिहतेरिव ,
नताङ्ग्या श्रवणोत्सङ्ग मारूढा नयनद्वयो ।

मणी—माणिक से युक्त प्रकाश मान कुण्डलों की कान्ति रुक (विचक) कर, मानों इस, नूतन अङ्ग घाली नायिका के नेत्र नों पर चढ़ गये हैं॥

नयनस्य तुला चक्रे, नलिनेन नतभ्रुव ,
ऊनेन चलिते शृङ्ग, मामरभाद्धिधिर्दधौ ।

न मालूम, बूढ़े विधि—ब्रह्मा ने कमान सी धक-भृकुटी ली कामिनी के नेत्रों की, धरावरी (हमशरी) फलुपित-कमलों क्यों की ।

शायद बुढ़ापे से बुद्धि में कायी लग गयी हो, नहीं तो ऐसी ग-हकत कभी न करता ।

अनङ्ग मङ्गल भुवस्तदपाङ्गस्य भङ्ग्य ,
जनयन्ति सुहृयूनामन्त सतापसन्ततिम् ।

कामदेव को, आनन्द देने वाली, उस कामिनि के कुटिल-

फटाकों की कल्पना, युवा पुरुषों के हृदय में धार-धार सन्तान पैदा करती है।

✓ यदिस्यान्मण्डले सक्तमिन्दोरिन्दीवरद्वयम्,
तदोपमीयते तस्या, वदन चारु-लोचनम्।

यदि चन्द्रमा के बिम्ब (मण्डल) में दो-कमल और लगा दिए जाँय तो उस सुन्दरी ललना के सुन्दर-लोचनों से सयुक्त मुख-वक्र की उपमा चन्द्र हो सकता है, अन्यथा नहीं।

श्रमयति शरीर मधिक, भ्रमयति चेत करोति सतापम्,
मोह मुहुश्च कुरुते, विष विषम वीक्षण तस्या।

उस 'धामा' का विष के समान जो विषमय देखना है वह शरीर को अधिक थका देता है, चित्त को घुमा देता है, सन्तान कारी है और धार-धार मोहित कर देता है।

अतिपूजिततारेय, दृष्टि श्रुतिलङ्घनक्षमा सुतनु,
जिन सिद्धान्तस्थिरिव, सवासना क न मोहयति।

सुन्दर-तारों वाली, श्रुति (कानों) को लॉघने वाली उस कान्ता की अति तीक्ष्ण यह दृष्टि, वासना सहित जैन सिद्धान्त की स्थिति की तरह किस को मोहित नहीं करती।।

नयनच्छलेन सुतनोर्वदनजिते शशिनि-कुलपती क्रोधात्,
नासानालनि वद्ध, स्फुटितमिवेन्दीवर—द्वेषा।

उस सुतनु (सुन्दर तन वाली) के मनोहर मुखद्वारा कुलपति (चन्द्र) को जीत लेने पर, क्रोध से नेत्रों के मिस, नासिका रूपी नाल (डण्डी) में बंधे हुए मानों दो नेत्र-कमल खिल गये हैं।

आयामिनोस्तदक्षोरश्चन रेखाविधिं वितन्वन्त्या ,
पाणिं प्रसाधिकाया प्रापद-पाद्म चिरेण विभ्रम्य ।

उस घर घाला के यड़े-यड़े कमलाक्षों में फाजल लगाती हुई
र करनेवाली सजनी का हस्त-कमल बहुत देर ठहर कर
ल-कटाक्षों के पास पहुँचा। क्योंकि (उसे) कटने का
थान।

प्रवातनीलोत्पल निर्विशेष -
मर्धोरनिप्रोक्षितमायतास्या ।
तया गृहीत तु मृगाङ्गनाभ्य-
स्ततो गृहीत, तु मृगाङ्गनाभि ।

उस विपुल-नेत्रवाली घरवाला ने घायु द्वारा अतीव-विताडित
रूपकती हुई) कमल समान चंचल-चरों से अधीर होकर
वा, अस्तु यह देखना उस नायिका ने हरिणियों से सीखा,
। हरिणियों ने उस (नायिका) से सीखा। यह विचारणीय हैं।

मुसरिन्दोपरि भागमस्य,
नेत्रद्वय रश्चन मामनन्ति ।
प्रफुल्ल्यकाम्बुज पार्श्वगतिं,
दलद्वय भृङ्गयुत मत मे ॥

मुख-कमल पर स्थित जो ये दो नेत्र हैं, उनको कोई कोई
लंजन खयाल करते हैं, किन्तु मेरे मत से तो ये नेत्र खिले हुए
(विकसित) कमल के पास घाले, वे दो-पत्ते हैं जिन पर कि
भ्रमर भ्रमित होकर बैठा हो।

इन्दीवर, लोचन, योस्तुलायै,
निर्माय यत्नेनविधि कदाचित् ।
अतुल्यता वीक्ष्य ततो रजासि,
निक्षिप्य चिक्षेप म पङ्कमध्ये ॥

किसी समय बृढे-ब्रह्मा ने नायिका के नेत्रों की निकार निकल कर समानता अर्थात् हमशरी के लिये अतीव दुस्तर प्रकृत से कमलों को बनाया, अन्तु बनने पर उनकी सी (नेत्रों की सी) बराबरी न पाकर उस में रज पत्रक कर कीचड़ में डाल दिया।

इपुत्रयेणैव जगत्त्रयस्य,
विनिर्जयात्पुष्प मयाशुगेन ।
शेषा द्विवाणी सफलीकृतेय,
प्रियाद्दग्म्भोजपदेऽभिपिच्य ॥

पुष्पों (फूलों) से निर्मित कामदेव के तीन तीक्ष्ण-धारणों में से केवल एक के ही द्वारा त्रिलोकी के जीते जाने पर दो बचे हुए धारणों से प्रिया के कमलाक्षों का अभिपेक कर (धारण) सफल किए हैं। तभी तो उन में इतनी काट है।

सेयं मृदु कौसुम-चापयष्टि,
स्मरस्य मुष्टिप्रहणार्ह-मध्या ।
तनोतिन श्रीमद्-पाङ्ग-मुक्ता,
मोहाय या दृष्टिशरौघवृष्टिम् ॥

मृदु-मुद्गी में जिस कान्ता की कमर पकड़ने लायक है या कामदेव की पुष्पों से सुसज्जित धनुर्दृष्टि (प्रतिच्छा) है। जो हमने

देहने, के लिये मत घाले कुटिल-कटाक्षों से सयुक्त दृष्टि रूपी
इंपुल-वाण घर्षा करती है।

आघूर्णित पद्मलमहिपद्म,
प्रान्तद्युतिश्वैत्यजिता, मृताशु।
अस्या इनास्याश्चलदिन्द्रनील,
गोलामल-स्यामल तारवारम् ॥

जिसने स्नेहता से सयुक्त, घुमाये हुए, पलकों के प्रताप से
मृताशु (चन्द्रमा) को जीता है, ऐसे कामिनी के चंचल-
मलात्त, इन्द्रनील (एक प्रकार की मणि) के समान निर्माल
गोल-गोल टुकड़े स्याम-तारों से सयुक्त मालूम होते हैं।

कर्णोत्पलेनापि मुख स नाथ,
लभेत नेत्रद्युति-निर्जितेन।
यद्यत्दीयेन तत् कृतार्था,
स्वचक्षुषी किं कुरुते कुरङ्गा ॥

यदि नायिका के नेत्रों की कोमल-कान्ति से जीते हुए कर्णो-
त्पल द्वारा ही मुख-कमल सुन्दर लगता है तो, इतने से कृतार्थ
हैं हरिणी अपने नेत्रों का क्या करेगी।

चकोरनेत्रैण दृगुत्पलाना,
निमेष यन्त्रेण, किमेष कृष्ट-
शोर सुधोद्गारमय प्रयत्नै-
विधातुमेतन्नयने, विधातु।

इस नायिका के नेत्र निरूपण करने के लिये ब्रह्माने प्रबल प्रय

जों द्वारा, चक्रोर के चलों से, हरिणी के हृदय हारी नेत्रों से, और कमलों से, निमेष-यन्त्र द्वारा यह सुलोचन रूपी। अमृत करने वाला कोई सार खींचा है।

ऋणी कृता किं हरिणीभिरासी-
दस्या सकाशान्नयनद्वय श्री ।
भूयो गुणेय सकलावलद्य
ताभ्योऽनयालभ्यत विभ्यतीभ्य ॥

क्या इस हृदय-हारिणी कामनी के समीप (पास) से हरिणियों ने युगल-नेत्रों की श्री (शोभा) ऋणस्वरूप ली थी, जो इस ने पुन उन डरती हुई विचारी हरिणियों से गुनन गर्हण सम्पूर्ण श्री बलकर अर्थात् जवर्दस्ती छीन ली।

दशौ किमस्याश्चपल स्वभावे,
न दूरि-माक्रम्य मिथो मिलेताम् ।
नचेत्कृत स्यादनयो प्रयाणे,
विघ्न श्रव कूप-निपात्य भीत्या ॥

चबलता से चाह स्वभाव वाले चल (नेत्र) दूर तक जाकर आपस में परस्पर क्यों नहीं मिले, क्योंकि आगे जाने पर श्रवण- (कान) रूपी कुश्रों में गिरने का यदि भय सयुक विघ्न पैदा न होता। अर्थात् कान रूपी कूप में गिरने का भय ही इनको अलग अलग क्रिये हुए हैं, नहीं तो फौरन पिड़ड़ी से मिल गये होते।

केदारभाजा शिशिर प्रवेशा
त्युष्याय मन्ये मृतमुत्पलिन्या ।

जाता. यतस्तत्कुसुमे क्षणेय,

'यतश्च तत्कीरकटक्चकोर ॥

17) खेत में खचित—पैदा होने वाली उत्पलनी शिशिर ऋतु के आने पर—दधीच ऋषि की व्या से दधित दशा की तरह—पुण्य प्राप्ति के लिये मृत (मरी) है, यह निश्चय है और मैं भी यही मानता हूँ, क्योंकि उस से प्रफुलित फूल के समान नेत्र वाली (उससे) यह नायिका उरपन्न हुई और उस के फूल की कलिका के समान चकोर जैसा चख-कोर बना ।

नतभ्रूवो लोचन-रज्जरीटौ,

विहारमानद्गमिहार-मेते ।

फथ न सानन्द हृदो युवा न

स्तारुण्यमन्तर्निधिमुन्नयन्तु ॥

कामान—सदृश भ्रू वाली कामिनी के भूरि-भूरि प्रसंनीय नेत्र रूपी खजन काम से सम्यधित हो विहार करते हैं, तो फिर भ्रूना से उत्तेजित अर्नोत्ते आनन्द से पगे हृदय वाले युवा पुरुष, यौवन से उन्मत्त नैनों को अपने हृदय रूप खजाने में क्यों न रखें ।

स्वदशोर्जनयन्ति सान्त्वतां, खुरकण्डूयनकैतवान्मृगा

जितयोरुदयत्प्रमालयोरतदरत्नक्षणे शोभयाभयात् ।

उस नायिका के नोदो—(पूर्ण) नयनों की शोभा से—परस जीते गये, हरिणों । अपने निद्रित नयनों को भय विह्वल हो खुर से खुजाने के मिस्रमानों शान्ति देते हैं । अर्थात् पुरी से खुजला नहीं रहे किन्तु शान्ति दे सुखद कर रहे हैं ।

नलिन मलिनः विवृण्वतां, पृथतीमसृशती तदीक्षणे,
अपि खजनमञ्जनाञ्जिते, विदधाते रुचिवर्गदुर्विषम् ।

कमल को मलिन करते-करते गरवोले-गघात्त पृथती (क
प्रकार-की नदी) नदी में नहाये (स्नान किये) और काजल
कलित कमलात्त द्वारा खजन को भी अपनी अनोखी-अमिषी
से दुर्विदग्ध करते हैं ।

श्रुतिलङ्घनमीहमानयोर्मलिनाभ्यन्तरयोरधीरयो,
स्मृतितापकरत्वमेतयोरुचित लोचनयोर्मृगीदृश ।

कानों को उल्लंघने की (तयारी) करने वाले, और अन्तर
भीतर का भाग कुछ-कुछ काजल से कलुपित मृदु-मलिन है ऐसे
अङ्गना के अधीर मनोहर-मृगाक्षों को याद करने वालों को दुःख
हो यह उचित ही है । अर्थात् मलिन-हृदय सब को ही दुःखदा
होते ही हैं ।

कामिनीनयनकजलपङ्कादुत्थितो मदन-भक्तवराह,
कामिमानसवनान्तरचारी मूलमुत्पन्नति मान-लताया ।

कामिनी के कुटिल-कमलाक्षों के कलुपित-काजल की कीब से
निकला हुआ (यह) काम रूपी भक्त वराह, कामियों के चित्त को
नयन में डोलता हुआ—माननियों के मान लता की जड़ खोदता है ।

रमाविलोल-नयने किमु मीन-शाली,
नालोत्पले किमथ वा किमु खञ्जरीटौ ।
किंवा जगत्त्रयजयाय, कृतिर्न जाने,
-फदर्प-भूपरचिता - नवकर्मणस्य ॥

क्या, कामिनी के चञ्चल चपलाक्ष; मीन के मनोहर घालफ
 अयया नील-कमल हैं; धा खञ्जन की खूबियों से खचित हैं,
 काम की कनुपित-करपना की करतूत का प्रथल-उद्योगरूप यह
 नौ-शोक विजय करने वाला धनुष-रचना का नवीन आयो-
 न है।

सुराविधुपरिवृत्तोत्तानताटङ्क पाशा -
 घडिचकित-चकोरी कान्ति चौर तदक्षि ।
 त्रिभुवन-युव चेतो-बन्धसङ्केत-हेतो ;
 सहचरमिव कर्तु पाशमाशङ्क्ययाति ॥

(मुण्ड-चन्द्र के घूमने से हिले हुए ताटङ्क (कर्णफूल) रूप पाश
 चकित-चकोरी की कान्ति घुराने वाली उस अङ्गना की
 प्रतीक शक्ति, त्रिलोकी के तरण-पुरुषों को अपने दाम में
 पाने को (पाँपों के लिये) ताटङ्क (पाश) की तरफ इशारा
 करती है।

यान्ती गुरुजनै सार्धं स्मयमानमुग्राम्बुजा ,
 सार्यग्राय यद्द्राक्षीत्सन्निपत्त्या परोजगम् ।

गुरु-जनों के साथ मार्ग में जाती हुई नायिका ने मन्द-
 बुद्धि-पान के साथ देही-श्रीया (गर्व) कर के जो देखा तो सारे-
 जगत् को स्थित कर दिया । अथ भी कसर न की ।

विरापाक्षी-कृदारस्य, साक्षी-श्रयक्षी-गहेरवर ,
 नापरि शृङ्गियादि देन विद्वो दिग्म्वर ।

इस विद्वत् (बड़े-बड़े) नेत्र वाली पर-ध्याय के कुटिल-
 शक्ति के अक्षर कामारि काम के शत्रु तोन शक्ति वाले महादेव

भी हैं, जध ही तो कामिनी के करारे-कटाक्ष-कोरों से विष नग्न हैं और अभी तक प्रकृति में नहीं आते।

यसा कटाक्षविशिरै स्मर-चौरैण ताडिता,
हृतचैतन्यसर्वस्वा, मोहन्ते मुग्धकामुका।

उस कमलाक्षी के कुटिल-कटाक्ष-घाण द्वारा विताडित हो
हुए भोले भाले मुग्ध कामियों का इस काम चोर ने सर्वस्व (चैतन्य)
छीन कर और भी मोहित कर दिया है।

अस्या करहरणखिडत काण्डपटप्रकट निर्गता दृष्टि,
पट विगलित नि कलुषा, स्वदते पीयूष धारव।

नखों (नाखून) द्वारा फाड़े हुए कपड़े के छिद्र से निकली हुई
प्रगटित-प्रभा समान उस कामिनी के कटीले-कटाक्षों की छान
कपड़े में छनने के कारण स्वच्छ हुई "अमृत धारा" तुल्य बन
करने योग्य है। भाग्य खुल गये "लाहौर" के अमृत धारा की
प्यारक "ठाकुर प्रसाद जी" वैद्य के ?

वसन्त नीलोत्पल पट्टपदाना,
गीतामृत श्रोतु मिवोत्तरङ्गौ।
नतभ्रवो लोचन-कृष्णसारौ,
कर्णान्तिकं सततमाश्रयेत ॥

विकसित-वसन्त में नील-कमल पर बैठे हुए भोरे का गीत
मृत सुनने के लिये उत्सुक जैसे—नायिका के काली पुतली मुख
जो नैन-कुरूप हैं, वे बार-बार कर्णान्तिक—कानों के समीप
आमित से आश्रय ले रहे हैं—अर्थात् यकावट मित्रा रहे हैं।

नयनाञ्चल चञ्चरीक पूरोवलतेऽय यत एव पक्ष्मलाद्या ,
तत एव भवन्ति नीलपक्ष्मप्रकराणा ननु धृष्टयो नवीना ।

उस पद्माक्षी के नैन-कटाक्ष रूपी जो भौरी का प्रबल-
मुदाय है वह जिधर चलना है उधर ही काले-काले पख घाले
णों की धर्पा सी होती है ।

यत्र-यत्र चलते शनै-शनै सुभ्रुवो नयन-कोणविभ्रम ,
तत्र-तत्र शतपत्रघोरणी तोरणी भवति पुष्प-धन्वन ।

सु भ्रू—सुन्दर-भृकुटी घाली कानेत्र-कोण तक का जो कुटिल
प्रत्युक्त—महज क्रीडामय विलास जहाँ-जहाँ होता है । वहाँ
ही शतपत्र घोरिणी कमल-श्री सी पुष्प धन्वा कामदेव की
मिन्दनीय घन्दनवार सी धन जाती है ।

भवनमुवि सृजन्तस्तारहारा वतारा-
न्दिरि दिशि त्रिकरन्त केतकाना कुटुम्बम् ।
वियति च रचयन्तश्चद्रिका दुग्ध मुग्धा ,
प्रति नयन-निपाता सुभ्रुवोविभ्रमन्ति ॥

मन की भूमि में विस्तोरुण मनोहर अवतारों को रचते और
एक दिशा में केतिकी के कुटुम्ब को फैलाते, आकाश में लूध से
नी ज्योत्स्ना (चाँदनी) सी फैलाते हर एक आँखों में अटक
इते उस सु भ्रू—सुन्दर भृकुटी घाली कमलाक्षी के कुटिल-
दाक्ष घूमते हैं ।

प्रणालीदीर्घस्य प्रतिपदमपाङ्गस्य सुहृदः ,
कटाक्ष व्याक्षेपा शिशुशफर फालप्रति भुव ।

सुवाना, सर्वस्व कुसुम-धनुषोऽस्मान्प्रतिसर,
नव नेत्राद्वैत कुण्डलयदृश स निदधति ॥

कामिनी के, हर-एक पद में प्रणाली से बड़े कुटिल-कटव
सुहृद (अपने प्यारे) वाल—मीन के समान चंचल और फाम के
पैदा करने वाले, जहाँ पडते है, वहाँ है मित्र ? कुछ नवीन ह
नेत्राद्वैत घनाते हैं ।

शिलासम्यग्धौ तोज्ज्वल-धवल धारा परिसरा
निमानन्त श्यामानिवविपमवाणस्य विशिखान ।
दृढप्रज्ञावर्माण्यपि हृदयमर्माणि रुजत,
कटाक्षानेतस्या मुनिरपि न सोढु प्रभयति ॥

शिलाद्यो पर घिसी और सम्यक प्रकार (अच्छी तरह)
धुली हुई उज्ज्वल (सफेद) धारा के समान और भीतर से फा
काम सर सदृश दृढ-बुद्धि से ढके हृदय में मर्मन्तक पीडा कर
वाले इस कामिनी के कुटिल कटाक्षों को मुनि भी सहन करने
समर्थ नहीं हैं ।

पिपासुरिव चञ्जल विकट कर्ण-कूपोज्जल,
तत प्रतिचलन्मुहु श्रवण पाशभीतोऽभित ।
तनोति तरला कृतिस्तरल लोचने सतत-
गतागत कुतूहल- मुहुरपाङ्गरङ्गस्त्व ॥


विकट-कान रूपी कूप से डरे, किन्तु जल पान के लुक
और दोनों ओर के श्रवण पाश से भयान्त्रित हो धार-धार छोड़े
दृप चंचल-चपलाक्षो का जो कटाक्ष रूपी मृग है वह निरन्तर
आने-जाने में आश्चर्य कारक है ।

सन्मार्गे तावदास्ते, प्रभवति पुरुषस्ताव देवेन्द्रियाणा ,
 लज्जा तावद्विधत्ते विनयमपि समालम्बते तावदेव ।
 भ्रूचापाकृष्ट मुक्ता श्रवणपथजपो नीलस्माण एते ,
 यावहीलावतीना हृदि न धृतिमुपो दृष्टिवाणा पतन्ति ॥

—पुरुष तब तकही सत (अच्छे) मार्ग पर रहता है, और
 तब ही तक (अपनी) इन्द्रियों पर प्रभाव जमाये रहता है, तथा
 उस समय तक ही शर्म करता है, व तभी तक नम्र रहता है
 जब तक कि—कुटिल भृकुटि-धन्वा (धनुष) से कानों तक खींच
 कर छोड़े हुए काजल से कनुपित काले पल घाले और धर्य की
 धूर उड़ाने वाले, लीलावतियों के दुद्धर्ष दृष्टि-वाण हृदय में न
 रूँ ।





नैन-निकुंज 

पदावली

पदावली

— ३ —

मनोहर को इन-नैननि भाँति,

मानहुँ दूरि करति बल अपनै, सरद-कमल की कौंति ।
 इन्दीवर, राजीव कुसै से, जीते सब गुन जाति,
 अति आनन्द समीड़ा ता तैं, विकसति दिन अरु राति ।
 राजरीट, मृग, मीन, विचारे, उपमा कौं अकुलाति,
 चचल, चपल, चारु अवलोकनि, चित में जात समाति ।
 जय लागि नहिं देखौं नैननि सौं, जुग समान पल जात,
 "सूरदास" रस-रसिक राधिका, निमिष-निमिष अकुलाति ।

। ३ ।

तेरे रे ? नैनां कारे, अनियारे, मत-वारे, प्यारे,
 रतनारे, कजरारे, मीन, मृग-छौना वारे,
 अजन सँवारे, राजन डारे-वारे ।
 नन्द के दुलारे, मोहि लीनी बसी-वारे,
 प्यारे, ऐसे रे अनौखे-नैना काहे सौं सँवारे,
 "कृष्णदास" बलिहारी, तन, मन, धन-वारी सब,
 मिथिना सँवारे नैकु टरत न टारे ।

। ४ ।

लाल-तेरे । चपल-नैन अनियारे,
 नन्द-कुमार सुरस-रस भँनि, प्रेम-रंग रतनारे ॥ ३

कछु अम रीभे चकित चहूँ दिसि, नव-वर जोवन वार,
 मानौँ सरद-कमल पै रजन, खेलति कै अलि-वागे प्यार।
 किधौँ मीन घन-स्याम-सिन्धु में, विलसत लेति कुलार,
 गोवरधनधरि जानि मुकट-मनि, "कृष्णदास" बलिहार।



जादूगर रे । थारे नैन ,
 भवौँ-कमाँन, ताँन करि तैं नैं, तिरछी मारी सैन ।
 लगी करेजे में वरछी सी, घाइल कीर्ती ऐन,
 "जुगल-बिहारी" के निनु देखैं, रचक परति न चैन ।



देखौरी ? यह नैद का छौँना वरछी मारै जाता है,
 वरछी सी तिरछी-चितवन की, सैनों छुरी-चलाता है ।
 मुझको घाइल कर बे-दरदी, मँद-मँद मुसिकाता है,
 "ललित किसोरी" जख्म-जिगर पर, ठडा नैन धुरकाता है



नैनों की मारी री कटारी,
 सुनियो मेरी पार-परौसिन, ढीट भयौ गिरीधारी ।
 सासु बुरी, घर नैनद-हठीली, देवर सुनि देह गारी,
 "मधुर-अती" घर जानि यनै ना, पीर उठी अति-भारी ।



मूलति प्यारौ ? नैन-हिड़ोरें,
 क्षयन-गम, भौँहँ माई री ? दृष्टि-किरन-डौँडी पदुम
 पटली-अधर, सपोल-मिहासन, येँठे जुगल-रूप रति-जौ

नो-चमर, दुरत चहु, ओरें, लर-लटकति फुँदना चित्त-चोरें ।
 रि देखति अलकावलि अलि-कुल, लेति पवन भ्रमभोरें,
 च घन, आड-दामिर्ना दमकति, माँगि इन्द्र-धनु करत निहोरें ।
 कित भए सडल-जुवतिन के, जुग-ताटक लाज मुख मोरें,
 एसिक प्रिया" रस-भाव मुलावति, त्रिविध कटाच्छ-तान तृन तोरें ।



मैं जानी मदन-सदन मौँहन जू की अस्त्रियाँ,
 निरसति मान ह्य्यौ मानिनि कौ, हारि रही सब सखियाँ ।
 कोई इक चित्त-मति चितै कुँवरि तनु, पूरी मन-अभिलसियाँ,
 प्रीभट" अटक छुटी घट अन्तर, मद-मद हँस-मुखियाँ ।



रंगीले-नैन तेरे हो ? कब देखौं गिरि-धरन,
 सरद मुख सुन्दर बन्धौं-वर त्रिविध-ताप हरन ।
 त्याम, सेत, रतनारे-न्यारे, भाव सु-विविधि करन,
 मीन, कमल, राजन, चकोर, अलि, भए भृग हू सरन ।
 राधिका रस-रसिक-लपट, कुच-सरोज भए धरन,
 गावै कहा "कृष्णदामे" हित, मुरली-तान-ढरन ।



लाल ? तेरे लोभी, लोलुप-नैन,
 किदि रस छकनि छके हौ छबीले । मानति नाहिँन चैन ।
 नौदरि नैन घुरो आवति अति, घुरि सी रही कछु नैन,
 "अलिबेली अलि" रस के रसिया, कत बतरे कहूँ रैन ।

प्यारी तेरे ? नैननि कौ व्यौहार ,
 रूप-तुरग चढ़े मद-माँते, मृग-मन करति विकार।
 भौंह-कमान रहीं चढि दिन प्रति, चितग्रन-यान सुचार,
 सहज अरुन अति घूम-धुमारे, खूनी-खून सुनार।
 काजर-रेखु अनी अति-तीरसी, निरखि डरति सत-भार,
 “अलिवेली अलि” प्रान प्रिहगम, परे प्रेम के जार।

तुव मुख-कमल, नैन-अलि मेरे,
 पलक न लगत, पलक विनु देखै, अरबरात अति फिरत न सर।
 पान करत मकरद-रूप-रस, भूल नहीं फिर इत-वत हर,
 “भगवत रसिक” भए मतवारे, घूमत रहति छके मद-नर।

तेरौ मुख-चद, चकोरी मेरे नैना,
 अति-आरत, अनुरागी लपट, भूलि गई गति पलहु लगै न।
 अरबरात मिलिये कौं निसि-दिन, मिलेई रहत मनौं कनहुं मिलक
 “भगवत रसिक” रसिक की बातैं, बिना रसिक कोऊ समझिसकै न।

व्यौपारिन हैं, नैन-विसाल,
 बेचनि आई, विविध गुलाल।
 रग-पौरि के आगें डोलै, डोलै बचन-रसान,
 लेहु बुलाइ भेजि “गुन मजरि” सुन्दर। मदन-दलाल।

सरि ? ए दग, वा. रूप छुभाने,
 मचलि रहे ससि-मुख निरखनि कौं, जा विधि बाल-अबाने।

शोक-लाज, कुल-धरम-खिलौना दए तऊ नहि माने,
 "नाराइन" सोऊ हनि फोरे, ऐसे निडर-खयाने ।

ॐ

मौहन के अति नैन नुकीले,
 निकरै जाइ पार हियरा के, निरखति निपट-भँसीले ।
 ना जानौ बेधति अनियनि कौ, तीन-लोक तै न्यारी,
 ज्यौ-ज्यौ छिदति मिठाति हिण मैं, सुख लागत सुकुमारी ।
 जब सौ जमुना-कुल त्रिलोक्यौ, तब सौ नीद न आये,
 उठति मरौर घक्-चितवनियाँ, पर उतपात मचावै ।
 आग लगे इहि लाज-निगोडी, दृग भरि स्याम निहारौ ।
 "ललित किशोरी" आजु मिलै तौ, सब कुल-काँनि बिसारौ ।

ॐ

नैन नहि मेरे हाथ रहे,
 देखति दरम स्याम-सुन्दर कौ जल की ढरन ढरे,
 वह नाँचे कौ धावति आतुर, ऐसे ही नैन भए,
 वह तौ जाति समात उदधि मैं, ए प्रति अग रए ।
 वह अगाध कहूँ धार-पार नहि एऊ न सोभा पार,
 लोचन मिले त्रिनैनी है कै, "सूर" समुद्र-अपार ।

ॐ

जे लोभी ? ते देंइ कहा री,
 ऐसे निडुर नाहि जाने री, जेसे नैन महा री ।
 मन अपनी कबहूँ बस है है, ए नहि-हौहि हमारे,
 जब तैं गए-नद-नदन दिग, तब तैं फिरि न निहारे ।

आँख और कविगण

कोटि करौ वे हमहि न मानै, गीधे रूप आवै,
“सूर-स्याम” जो कबहूँ त्रासै, रहै हमारी वावै।



लोचन भए अतिही दूँट,
रहति हैं हरि सग लागे, निसि दिन सबल अर्ही।
बदत हैं काहू नहिं निघरक, निदरि मोहि न गस्त,
चार—बार बुझाइ हारी, भौंह मो पर उस्त।
ज्यौं सुभट रन देखि टरत नहिं, लरत रेत प्रचार,
“सूर” छवि मनमुरा ही धावत, निमित्त अखन डार।



रग अनग भरे, प्यारी जू के नैन रसाले,
खजन, मृगन नैन—मद गजन,
मौंहन दगन लरै रति-समर अराले।
रतनारे, सित, कारे प्यारे,
घुटिल कटाच्छ रति-रन कमकाले,
अलि-सुत अबुज, कुमुद विनिंदक,
फेलि-कलह अगरे पिय-पान हराले।
फोर-दार विछुया अनियारे,
सुरमा-साँत धरै अति निपट गैसीले,
“ललित फिसोरी” सुभट अलौकिक,
ना रस-रोत टरै पै दुफ सकुचीले।

विहारी नैन भरि दियौ नैन गुलाल ,
 प्रसक्त है निरसति नहिं क्योंहूँ, देखि सरयी ? यह हाल ।
 घोड़-घोड़ हारी में इन कौं, मीडति है गए लाल ,
 'हीरा सरि' फटि गयौ गुलाल पै, कढ्यौ नहीं नैदलाल । ❀

❀

सरयी ? ए नैना बहुत-चुरे ,
 तब सौं भए पराए हरि सौं, जब सौं जाइ-जुरे ।
 गौहन के रस-यस है डोलति, तलफति तनकि दुरे ,
 मेरी सीस प्रीति सज छाँडी, ऐसे ए निगुरे ।
 जग रीज्यौ, वरज्यौ पै ए नहिं, हट सौं हटक मुरे ,
 अमृत-भरे दिखै कमलन पै, विष के भरे छुरे ।

❀

कमल सी अरियाँ लाल ? विहारी ,
 नसौ तकि-तकि तीर चलावत, वेधत छतियाँ आनि हमारी ।

❀ इसी भाव पर "पद्माकर जी" का बड़ा सुन्दर एक कवित्त
 था —

एक सग घाए नदलाल औ गुलाल दोऊ ,
 भरिगौ दगन बीच आनंद मढै नहीं ,
 घोड़-घोड़ हारी "पद्माकर" तिहारी सौह ,
 दूसरी उपाइ कहु चित्त पै चढै नहा ।
 कहाँ जाऊँ, कहाँ करौँ, कौन सुनै, कासौँ कहाँ ,
 कीजिए उपाइ जातैं दरद बढै नहीं ।
 परी मेरी वीर ? जैसे तैसें इन नैननि तैं ,
 कदिगौ अवीर पै अहीर कौ कडै नहीं ।

आँख और कविगण

इन्हें कहा कोऊ दोष लगावत, ए। अजहूँ न सँनरी,
“श्री विट्ठल” गिरिधारि कृपा-निधि, सूरत ही सुनकारी।



अरी ? तेरे नैन ललौहे, जिन्ह मोहे स्याम-सनैन,
अति ही दीरघ, विमल त्रिलोकनि, कटाच्छन
कोरनि, भारे पिय-रस भीजे, रीमे कैन।
वदन-जोति चदहु तैं निरमल, कुच-फठोर,
भुज—मृनाल, वक टटा वरु टैन
“जनि गोविंद” प्रभु, चलति ललित-गति,
कसौटी-लीक परी मनै सति



उनींदी-आँखें रग भरी, दुरति नहीं पट ओट,
सजन, मान, मृग, छीन भए हैं, वारों लाल छे
दुरनि, मुरनि भ्रमकति अनियारे, चचल करत हैं
“चतुर विहारी” प्यारों की छत्रि, निरसति वारें रस की



नैन माई ? नाहीं करत फहौ,
फहा फरौ, कैसेहुँ नहिं छोरें, जो हठ हरसि ग्यौ।
जावति हुती सहज भग अपने, चपलन उनटि फहौ,
निगम सरूप, धाइ खन खन मैं, तोभित पाह लहौ।
जो भत लयो, प्रथम ही निरगति अठहु सो निरहौ,
“विद्याप्रति” गोपारा, मदों इन, आँखिन लागि रहौ।

अँसियन ऐसी टेर, परी ,

कहा करौं वारिज-मुख ऊपर, लागति ज्यों भ्रमरी ।
हरसि-हरसि पीतम-मुख निरखति, रहति न एकु-धरी ,
ज्यों-ज्यों राखति जतननि करि-परि, त्यों-त्यों होति खरी ।
गढ़ करि, रहीं रूप-जल-निधि में, प्रेम-पियूप भरी ,
सूर दास" गिरिधर-पग -परमति, लुटत निधि-सगरी ।



मोहि लई इन-नैननि की सैन ,

अन सुनति ही सुधि-बुधि सत्र प्रिसरी, लुबधा मौहन-वैन ।
अमल-नैन सिरक तैं आवत, बात कही हँमि ऐन ,
रमानंद" प्रभु नन्द-दुलारे, गाय कही दुहि देंन ।



नैन माई ? अटके साँवल-गात ,

निरसि निरसि सादर चकोर ज्यों, मुख ससि मुरि-मुखिकात ।
कहा करौं यह बनी कहाँ तै, नैकु न इत-उत जात ,
बिप रहैं नौका के रग, ज्यौ, प्रिसरि गई सत्र-धात ।
दृष्टि पट-गीत, सुमन उर माला, निरखति नैन सिरात ,
मकराकृत-कुडल कपोल छवि, अबुज-वन जिमि प्रात ।
सुभग मुजन मनि-भूपन राजति, पद-अबुज सुरा दात ,
विद्यापति" गोपाल विलोकति, निमिप नहीं अनखात ।



लगन इन नैननि की बाँकी ,

देखै हँ दुख, बिनु देखै हँ दुख, पीर होति दुहु-घाँकी ।

टारी-टरति न टरति निनु देरै, जाहि फवति है साँझी,
“रसिक राइ” पीतम-भन अटक्यौ, कहूँ लगति नहिँ टाँझी।



सखी री ? लोभी मेरे-नैन,
निनु देरै चट-पट सी लागति, देरति उपजति चैन।
मोर मुकुट काछै पीतार, सुन्दरता कौ ऐन,
अग-अग छत्रि कहि न परति है, निरसि थकित भयौ मैन।
मुरली ऐसी लागति नवननि, चितवति रग, मृग, धैन,
“परमानन्द” प्रेम कौ ठाकुर, ठाडो देर्यौ सैन।



मन-मृग वेध्यौ नैन-जान सौं,
गूढ भाग को सैन अचानकि तकि मारी भृकुटी-कमान सौं।
प्रथम नाँद बल छोरि निकट लै मुरली-सुर-सपतरु विधान सौं।
पाछै बक-चितै मृदु-हँसि कैं घात करी उलटी सुठान सौं।
है है सुर तत्रही उर अतर आलिंगनि गिरिधर-सुजान सौं।
“चतुरभुज दास” पीर यह तन की मिटै न औपध आन सौं।



लोचन भए म्याम के चरे,
एते पै सुख पावति कोटिक मो-न्तन फेरि न हेर।
हा-हा करति परति हरि-चरननि ऐसे बस भए उनहीं,
उन कौ वदन त्रिलोकति निसिदिन मेरौ कह्यौ न सुनहीं।
ललित-त्रिभर्गा छत्रि पै अटके,- फटके मोसौ तोरी,
“सूरदास” हम पै रिमि कीर्नी प्रेम स्याम सौ जोरी।

स्याम-रँग रँगे रँगिले-नैन ,

घोएँ छुटति नाहिं इहि कैसेहुँ, मिले पिघल कै मैन ।
ए गीधे नहिं टरति उहाँ तै मोसौ लैन न दैन ,
“सूरज” प्रभु के सँग-सँग डोलति नैकहु परति न चैन ।



सजनी ? मोतै नैन गए ,

अब ना आस रही आमनि की, हरि के अग छए ।
जय तै कमल-वदन उन दरस्यौ दिन दिन और भए ,
मिले जाइ हरदी चूने ज्यों एकहि रग रए ।
मोकौ तजि भए आप स्वारी अति रस-मत्त-मए ,
“सूर” स्याम के रूप सामनै मानौ बूँद तए ।



नैननि ऐसी वान परी ,

बिनु देखै गिरिधरनलाल-भुख जुग भरि जात घरी ।
मारग जाति उलटि तन चितए मो-तन दृष्टि भरी ,
तन ही तै लागी चट-पटसी कुल-भरजाद टरी ।
सरबसु हरि, मन हरि, हरि लीन्हौ , देह-दसा विसरी ,
“चतुरभुज दास” छुडावन कौं हठि मैं विधि बहुत करी ।



घरजौ कोटि-धूँघट की ओट ,

तौऊ न रहति नैन अनियारे, निकसि करति हैं चोट ।
पाछै फिरि देखे-कोऊ ठाडे सुन्दर-बर इक डोट ,
“परमानंद” के प्रभु रति नाइक, लई प्रीत की पोट ।

आँस और कविगण

लाल ? तेरी चितवनि चितहि चुरावै,
नद-गाँउ वृषभानु-पुरा त्रिच गैत चलनि कोऊ नहि पावै।
हौं तौ डरि हरि चलति भिम्भकि कै, ललिता दृगन चलावै,
“कुभन दास” प्रभु गोवरधनधरि धन्यौ सो क्यौ न बतावै।



लोचन अति ही लालची भए।
रोकै रहति न प्रेम के माँते पलक-कपाट दए।
लै मन-द्रुत पवन है निकसे स्याम समीप गए,
“सूर” के प्रभु परे सौदागर, विनु धन मोल लए।



तेरे ? लोचन लालचि करति,
पिय के नैननि सनमुख चितवति, भूलै नैकु न टरति।
कबहुँक सु-मुख तिरौछे है कैं, नन-रँग कौ मन हरति,
“कृष्ण दास” प्रभु गिरिधर नागर, सैननि टै-दै लरति।



स्याम ? तेरे डहडहे नैन-कमल, फूले निमल-सरोवर,
सोभित तारे, अति कजरारे, भानों घीच परे री ? मधुकर।
दुरनि, मुरनि, चितवनि ललचौंहीं चपलौंहीं अँसियाँ मन-हर,
वरुनिनि की छवि देखि सु रोके, सुबस किए तैं नद-कुँवर बर।
लोचन-ललित काम-दुख मोचन, वरु जीते हैं समर सर,
“मुरारि दास” प्रभु विहारे ऐसे दृग, मृग-सुभाव, हाव कर।

प्यारी । तेरे लोचन लैने-लौने ,
 सके आल-वाल रँगीले प्रिसाल पाछें भए न आगै हौने ।
 य रिझौने मुसिकाइ चलति जय कौन काम के टटावकटौने ,
 'नद दास' नद-नन्दन नैननि, नैकु नाहि नै हौने ।



अरी ? तेरे नैना लौने, जिन मोहे स्याम-सलौने ,
 प्रति ही दीरघ प्रिसाल-प्रिलोकनि, कारे पिय-रस रिभिए कौने ।
 दन जोति चँद हु तैं निरमल, कुच-कठोर अति हौने धौने ,
 'तान सैन' प्रसु सौ रति मानी, कचन कसनि कसौटी के सौने ।



ए अँखियाँ प्यारे ? जुलुम करैं ,
 र महरैटी, लाज-लपेटी, मुकि-मुकि घूमें भूमि परैं ।
 गगरी प्यारे ?, होहु न न्यारे, हा हा तो सौ कोटि ररै ,
 'राज सिंह' कौ स्वामी नगधरि, विनु देखै दिन कठिन भरै ।



अरी ? इन अँखियन सौ पचिहारी ,
 ए मेरे वस नाहि भई, हौ अपने वस करि डारी ।
 इत उत उमकति रहति चकित है, देखे बिना दुख्यारी ,
 जन ही दृष्टि परति मौहन-मुख, जाति न तनकि सम्हारी ।
 कव लागि लै निबहौं इन भौतिन गृह, कुल-कौनि प्रिसारी ,
 "नागरि दास" भई ए बैरिन दैउ कहा कहि गारी ।

हो रँगीली-ब्राजी लागि रही नैयों में,
जॉणों काम कटाच्छों हीं का, देखि दास दै सैणों में।
काँपै अग अनग-रग सुर-भग हुबौ वैणों में,
“रसिक विहारी” मन फूल बढि भई, हार जीत छै सैणों में।



अमाँती-अँसियाँ दरस-दिवानी,
रूप-आग त्रिच वेसक हुई गिरदी, खुभी अँन अरराना।
इश्क-अमल सैं मुकी रहैदी, छिन छिन वरसति पाना,
“नागरि” नवल इते पर दिलवर, हूवा रहति गुमाना।



अरो ? इन अँसियन वैसै समुभाऊँ,
ए षत जाइ मिलति वरजोरी, हों गहि गहि लै आऊँ।
तुम जु कहति यै निडर भई, हों विनु देखैं अबुलाऊँ,
“नागरि” श्याम गई हों देखनि, वा दिन कौं पछिताऊँ।



ए अँसियाँ काहू की न भई,
है परसिद्ध ससार कहानी, कहति हों नाहि नई।
कहिऐ कहा महा-अरवीली, वरजी तितहि गई,
“नागरि दास” लाल गिरिधर-कर मोकौं बाधि दई।



तीरे नैन फन्हाई ? सँडे पल-पल खून करदे,
मौँहें तो कमान-तर्णी, पलकै वीर परदे।

कित्ते घायल परे कराहैं, दिल नहिं धीर धरदे ,
 “रखिक विहारो” नित वार करदे टारे नही टरदे ।



कन्हैया, माई ? आँखिन होरी मचावै ,
 आँखियन में अनुराग-अरुनई, आँखियन रग रचावै ।
 आँखियन में ललिचाइ तालची, आँखियन में ललिचावै ,
 “नागरिदास” पैठि आँखियन में, फिरि आँखियन तरमावै ।



दुरत नहीं पट ओट आँसै-रुनौवडी ,
 मौहिन तन दै रहों पीठ ए, ईठ पगु पग-पावडी ।
 लगे रुन के लोभ सों, रोकै नैकु रुकैन ,
 कहा कहौ इनकी दसा, महा-लालची नैन ।
 कुकीं लाज के भार परति हैं, उमडनि नेह अमाँवडी ॥
 रूप-रासि-धन पावहीं, छिनकि न तऊ अघाँनि ,
 “नागरिया” दृग-लालची, तजति न लालचि-गानि ।
 सन दिशि सूधै चलति नागरी, उहि दिशि आँगडी वाँवडी ॥



राधे ? तोरे नैन अवि-बाँके ,
 घचल, चमकति, -चलति दृगचल, मदन-भूप के हाँके ।
 खजन, भीन, कुरगन की छत्रि, एकहि छिन सन डाँके ,
 “श्री रयुराज” निरखि जिनकी मन-मौहन के मन थाके ।

हरि के दृग हलकारे, घटकि चलै चहुँ-ओरै ,
 प्रीति-मत्रिका, प्रेम-खलीता, काम छाप धरि दौरै ।
 कामिनि-नैन द्वारि-द्वारे में, बहु त्रिधि करै निहोरै ,
 “श्री रघुराज” नचाइ पूतरी । ब्रज-वनितन चित-चोरै ।



प्यारे ? तेरी नैन-अनी अति-चोली ,
 रस की बाढ, रग आनंद कै, मदन-भूप की पोसा ।
 फूटति, लगति, सुरति सब छूटति, हनहिं जाहि जब घोसी ,
 “श्री रघुराज” कहाँ तुम पाई, ऐसी चीज अनौसी ।



धूँघट वाली ? तोरे नैना, जैसे व्याधा टाटी ओट
 रसिक-भृगन पे हाइ करति हैं , छिपै-छिपै नित चोट ।
 भारत नाहिं घाइल करि छाँडति, ऐसे मन के लोट ॥



कैसी मारी रे ? नजरिया, नैना जादू से भरे,
 आँस कमल की कलियों तिरछी-भौह कमान करे ।
 नक-बेसर, नधिया, लटकन अरु, पलकन-तीर घरे ॥



नैन की मत-मारौ तरवरिया,
 में तो घाइल बिनु चोट भई रे? कहर करेजे करिया ।
 काहे कौ साँन देति भौहन की, काजर नैननि भरिया,
 “हरीचंद” निनु मार मरत हम, मत लावौ तीर-बटरिया ।

मेरे ? नैना मानति नाहीं,
 लोक-लाज-सीकर मैं जकरे, वऊ उतै खिच जाहीं ।
 पचिहारे गुरु-जन सिख दैकैं, सुनति नहीं कछु कान,
 मानति कछौ नाहिं काहु कौ, जानति भए अजान ।
 निज चवाव सुनि औरहु हरखति, उलटी-रीति चलाई,
 मदिरा प्रेम पिऐं पागल है, इत-उत डोलति धाई ।
 परवस भए मदन-मौहन के, रग-रंगे सब-त्यागी,
 "हरीचन्द" तजि मुख-कमलन अलि, रहैं कितै अनुरागी ।



नैन ए लगि कैं फिरि न फिरे,
 निथुरी-अलकन मैं फसि-फँसि कैं, रहि गए तहीं धिरे ।
 पचिहारे गुरुजन, सिख दै कैं, नाहिंन रहति धिरे,
 "हरीचन्द" पीतम-सरूप मैं, डूबे फिरि न तरे ।



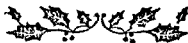
सखी ? रो ए अँखियाँ रिम्बारि,
 देखति ही मौहन सों रोभी, सत्र कुल-काँनि विचारि ।
 मिलाँ जाइ जल-दूध मिलै ज्यों, नैकु न सकीं सम्हारि,
 सुन्दर-रूप त्रिलोकति रपटी, काचे घट जिमि धारि ।
 अत्र निनु मिलैं होति हैं व्याकुल, रोयति निलज पुकारि,
 अपने फल करि हमहिं कनौडी, औरु दिवावति गारि ।
 लोक-लाज, कुल की मरजादा, तन सम वजी विचारि,
 "हरीचन्द" इन कौ को रोकै, विगरीं जग हि निगारि ।


शॉस और फविगण

सखी ? ए नै ना घहुत-धुरे,
तन सौ भए पराए, हरि सौ जव सौ जाइ जुर।
मौहन के रस बस ह्वै डोलति, तलफति तनकि-धुरे,
मेरी सीख, प्रीति सन छाँडी, ऐसे ए निगुरे।
जग-सीभ्यौ, वरज्यौ पै ए नहिं, हठ सौं तनकि-धुरे,
“हरोचद” देखति कमलान से, विप के बुते-धुरे।



तोरे पर भए मत-वार रे नयनवा,
लोक-लाज, जस-अजम न मानै, सरस-रूप रिक्तवार रे नयनवा।
मदिरा-प्रैम पियै मतचारे सब सै करत निगार रे नयनवा,
“हरीचद” पिय-रूप दिवाने, करत न तनक विचार रे नयनवा।



नैन-निकुंज 

कवित्त

कवित्त



महा-कजरारे, मृग-सावक तैं न्यारे, ५५
 दूरि खजन पिडारे, निरखे तैं जाहि चैंन हैं,
 कैधौ अलि कारे, मनौं मूर्खें मतवारे,
 किधौं तामरस वारे, किधौं खजर के ऐंन हैं ।
 कैधौं जुग-भीन वमें सुन्दर-सरोवर में,
 कैधौं काम खरसान चढे तीरे अतिपैंन हैं,
 औरु अग अगन की सोभा "मान" कहा कहै,
 देखौ स्याम ? साँवरी के कैसे नीके नैन हैं ।



नैन अरसीले, सरसीले, अति-रस भरे,
 बियस-दसीले, औ रंगीले रंग-भंगे से,
 निपट हठीते, अरवीले, रसकीले जनु,
 गुनन गसीले, गरवाले रम पगे से ।
 षडु मुखिषौंहे, तिरछौंहे, सतुचौंहे षडु,
 होति जाति नैदि, मग गौंदि पग लगे से,
 एनिव-सलौंदि, षडु लाल ललिचौंदि जनु,
 जाचक जचौंदि दिग डोलै दग-भगे से ।

हिरन हिराने फुँ पहारनि में हेरि नैन,
 मान हूँ समाने जल, कज, रतन पाके हैं।
 रूप की बजार मद पीकै मतनारे भए,
 कैधौ हुइदार बने अनेंग की अती के हैं।
 “नद राम” कैधौ ए कटार हैं कटाकर की,
 आँकर के अन्त करि भाग बरछी के हैं।
 सान पै धरे हैं रसरसान पै धरे हैं किधौ,
 कैधौ पचवान इन्हें-ओपे ओप नकि हैं।



कारे कजरारे, रतनारे, अरनिंद सम,
 चपल-दराज अनियारे सुख कारी हैं।
 “भनत दिवाकर” कुरग, वान, रजन से,
 गजन करति स्याम अजन किनारी हैं।
 मुकि-मुकि भाँकति करोरवा लगे साँन भरे,
 लागै वनवारी कै लोह की कटारी हैं।
 मोरि-मोरि लेति मुसिकाइ हग घूषट में,
 मारकै फिरतिज्यौ सिकारकौ सिकारी हैं।



लजीले, सकुचिले, सरसीले, सुरमीले से,
 कँटीले औ कुटीले, चटकीले, भटकीले हैं।
 रूपके लुभीले, कजरीले, उनमीले, बरछीले,
 तिरछीले से फँसीले औ गसीले हैं।

“ललित किसोरी” ममकीले, गरवीले, मनौं,
 अति ही रसीले, चमकीले औ रंगीले हैं,
 छपि के छकीले, कहु नीले से नसीले अलि ?,
 नैन नदलाल के नचीले औ नुकीले हैं ।



भूपन के भार तै सँभारति बनै न अग,
 मद-मद चाल तै गयदन लजाती हैं,
 जोरि-जोरि-जोरि हिल-मिल कै निकुज मॉहि,
 आवत चली यौ सबै आपुस में भाती हैं ।
 ठाढ़ी “कमला पति” छत्रीलौ-छैल देखि तिन्हें,
 तिरछी-चितौनि हीं तै लखि मुसिकाती हैं,
 मैन-मदमॉती, इतै वार वार आइ लखि,
 नैन-तरवार वार करि-करि जाती हैं ।



होते अरविन्द से तौ आइ कै मलिंद-बृद,
 लेते मधु-बृद बुद तुद के तरारे से,
 सजन से होते तौ प्रभजन परस पाँइ,
 उडते दुहँ घाँ तें न रहिते नियारे से ।
 “ग्वाल कवि” मीन से, मृगीन से जु होते तौ,
 जल, वन मॉहि दोऊ दौरते करारे ए,
 याते नैन मेरे खरे लोह से हैं काहे तैं कि,
 सँचि लेति प्यारी चर-चुवन विहारे ए ।

मीन, मृग, खजन, रिमान भरे नैन-वान,
 अधिक गिलान-भरे, कज कल ताल के,
 राधिका-छवीली की छहर-छप्रि छारु भरे,
 छैलता के छोर-भरे, भरे छप्रि-जाल के।
 "ग्वाल कवि" आँन भरे, साँन-भरे, स्याँन-भरे,
 कट्टुक अलसाँन-भरे, भरे साँन-माल के,
 लाज-भरे, लाग-भरे, लोभ-भरे, लाभ भरे,
 लाराी-भरे लाड-भरे, लोचन हैं लाल के।



धरि-धरि आयौ है करीर-कुजताई तौ पै,
 करि ततवीर पीर हरि लास-लाखे-गुनि,
 नैयन की भीर हू जो सग वलवीर मेरे,
 देखि तहाँ वीर चीर-वपक से नाखे बुनि।
 "ग्वाल कवि" सोभातै मरीर में उझाह रहौन,
 कढी चँद-चीर चारु जाँहि नहिं भाखे गुनि,
 वीर के न देखे, पच-वीर के न देखे, पेरे,
 जैसे तौरकस हग, वीर कसि राखेगुनि।



खेल को न रही सुधि, बुधि की चलै न कट्टु,
 हौन लगी बढवार रिहहा के बेल की,
 ठेलगी हिए में पीर, धोर जिय कैसे धरै,
 करै को अपीर चूँदै मल-मल तेल की।

फेनि की फला कौ चित चाखौं करै "लाता करि",
 है है कन हाइ वह घडी रँग-रेल की,
 देन की, गुलेल की, न सेत की कठिन मेल,
 जैसी चुभी पेट वा प्रिया के नैन-मेल की ।



पैन बहै फाहूँ मौ, अचैन करै फाहूँ पौ,
 धैन करै फाहूँ पौ जतानै सैन सेज से,
 फहूँ मौ इमारि अंगियान के इमारे करै,
 फाहूँ सौ पहति लाउ छल्ल मँ कहे जेसे ।
 "गान करि" प्यारे सौ खेलि-खेलि मार-कौसे,
 लेति मन धन री । हँसि फँ मजेजे से,
 नैन परे जे, पतरजे फाम-याती करि,
 दिने परेजे धीच गरेजे नैन नजे से ।



गगन-नारन, मीन-भात के उमों के देति,
 तौके देति गृग-गद फज के तहों के हैं,
 टौर-टौर भँवर धमति जाके ताके मग,
 "मागता" पषोर परें चपल-चलाके हैं ।
 पने नारना के, ना उमा के, ना पिनीचना के,
 परदन हरीन पच-भात प्रवि ताके हैं,
 है न मनुषोता के परमाने नैना के नैन,
 जे नुगना के नैन-भोंके राधिका के हैं ।

गजा गिले रज्जन की और-भै कजन की,
 वार त्रिधु मजन की अजन समेति हैं,
 नेह-भरे सागर, सनेह-भरे दीपक से,
 मेह-भरे वादर, सलौने लखि-लेति हैं।
 तरल-त्रिपैनी की तरगनि में "तारा कवि",
 मानों सालिगराम के असनानहि निकेति हैं,
 मृग-भद लागे, साखा-मृग दृग दागे में,
 द्वाजन में पागे नैन ऐसे सोभा देति हैं।

ॐ

परम-श्रवीन मीनकेतिक के मीन किधों,
 सुख के सरोज हैं कला से प्रिय भान के,
 खजन मिले हैं किधों, सरद-मुख-चन्द सौं कि,
 जोरे हैं कुरग रथ-वाहन समान के।
 मुनिन के मन हूँ उपजावति अनेक-भाव,
 मेरे जान एही हैं त्रिखिलि पच-दान के,
 चाल ? तेरे नैननि की बिसाल-साल सौतिन के,
 "बलभद्र" साने हैं सुहाग सरसान के।

ॐ

चचल-बिसाल मीन, रज्जन मृगा हैं वेसु,
 ताकनि-तिरीछी भई जव दृग जूटी की,
 मृदु-मुसिकाइ, रूप-मलक दिसाइ फेरि,
 मोर-मुख दीन्ही जोर, डोर प्रीति-दूटी की।

“भनै रघुनाथ” भरी आँद-अट्टी लखि,
 छूटी मान-वान कान्ह सहि रत-बूटी की,
 छूटी सौति-साँन, आँन-मैंडि सत्र पृटा देखि,
 नेजा, मैंन-बूटी सैन नवल-बूटी की।



सूर सूरमों के सैन काम-जग जीतन कौं,
 साजे हग अक-कोर कौन नैं सँवारे हैं,
 भनत “दिवाकर” सुधाकर न लेस लखै,
 चकित सुरेस, छोडि आसन सिधारे हैं।
 बैठि कै नजीक चारु-चमर डुलावै फेरि,
 हेरि जोड-दारन कौं करति इसारे हैं,
 अपमा मिलोकति हू लोक मैं न आवै प्यारी,
 वरुनी-मिलास जैसे राधिका तिहारे हैं।



तेरे जुग-नैननि की वरुनी वनी-धनी,
 मानों द्वै-मीनन की वनीन के लुज हैं,
 सील के दु-रूप चरन-पल मुख बन्धन पै—
 फचन-कँगूरा ए मनोज रचे मुज हैं।
 भनै “रघुनाथ” किधौं मोभा के मरोजर पै,
 सुवर धंधाननि पै दर-दुन-मुज हैं,
 पुरो-मनोहर किधौं पातुरी के पैल-छोर,
 कैधौं नैन-मुभट सुधारे सति-पुज हैं।

वॉके, सक हीने, राते-कज छनि छनि, माँते,
 मुकि-मुकि भूमि-भूमि काहू कौ बहू गनैत,
 “द्विज देव” की सौं ऐसी वानिका वनाइ बहु—
 भौतिन वगारै चित्त-चाहना चहूँघा-चैत।
 पेलि परै पात जो पै, गातन उद्धाह भरे,
 वार-वार तातै तुम्हें धूमती कछूक-बैत,
 ऐहो ब्रजराज ? मेरे प्रेम-धन लूटिबे कौं,
 वीरा खाइ आएँ किधौ आप के अनौंसे-नैन।



रूप-रस चारै, मुख रसना न राखै फेरि,
 आँखै अभिलारै तेज उर सौं ममारि ती,
 “कहै पदमाकर” त्यों कौनन विनाहूँ सुनै,
 ध्यान के बैन यौ अनौंसे अग धारिती।
 विना पाँइ दौरै, विनु हाथन हथियार करै,
 कोर के कटाच्छन पटा से भूमि मारिती,
 पौरन विनाहीं करै लासन ही वार आरै,
 पावती जो पाँखै तौ कहा धौं करि डारिती।



कमलन फीके हैं, सँवारे सुघरी के हैं,
 सुन्दरता सी के हैं, सती के हैं, रती के हैं,
 खजन अनी के हैं, गजन मनी के हैं,
 कै रजन-धनी के हैं, कै भजन-अमी के हैं।

ऐसे हरि नाँके हैं, न ऐसे हरिनी के हैं,
 न राज-रमनी के हैं, न काम-रमनी के हैं,
 नैन मैन जी के हैं, कि ब्रैन-ब्रैन जी के हैं,
 कै सोभा मूल ही के हैं, कै प्यारी प्रान-पीके हैं ।



खजन रिजाति, जल-जात ही लजाति हेरि,
 हिरन हूँ हिरात, मुकता न ठहरात हैं,
 पचसर कीन्हे रद, भौरन के भूले मद,
 नट से विचित्र चित्र हिय हहरात हैं ।
 दीपक मलीन, छीन, मीन लागै मेरे जान,
 भीने तीन-रग तातै अति इतरात हैं,
 "परबत" प्यारे मकसूदन । विहारे दृग,
 मारत निसक ना कलकहिं डरात हैं ।



आगै हुती और, अब और सौं भई तू और,
 ठौर न रहति छिन छोड़ी संग-सखियाँ,
 मीहन कौ नाम सुनि रूखी हूँ लजौंहीं होति,
 जात तिरछौंहीं, ठाड़ी रहति न रखियाँ ।
 ऊँची भौंई, नींची दीठ, दीठ नमिलाति सौंई,
 "नागर" नवल-नेह घाखी रस घरियाँ ।
 भौंड़ी भली जानिबे कौ, छौड़ी तौ न फेरै कोऊ,
 औंड़ी घात फहति "कनौड़ी" तेरी अँखियाँ ।

कहति विसाया बदि, बडी-आँखै प्यारीजूकी,
 जैसी सीप सिन्धु के भूकोरन की मखियाँ,
 ललिता न भानै, हठ ठानै यौ बरानै—
 आँखै लालकी बडीहैं ज्यों पकजकी परियाँ।
 “नागर” वहसि सुनि नैन-नैन जोरिबे कौ,
 सर के हैं नीरै मूमि आई सब सरियाँ,
 रीमि प्रान-बारे न सम्हारे अग रग-भरी,
 जा समें नपाँ हैं लगि अँरियाँ सौ अँरियाँ।



हाँसी है तिहारे भाइ, औरन कौ घर जाति,
 नाँहक परायौ मन लैन क्या उमहिए,
 तुमही कै बडी, बड लालन अनैसी आँखै,
 धरजौ जू कैसेँ लोक-लाज लै निनाहिए।
 दोऊ-कर जोरि-जोरि विनती करति हहा,
 “नागर” हौ नैसुक दया की रीति गहिए,
 डारति हैं मारें, परी गौहन हमारे इहि,
 रावरी-चितौन कौ सम्हारै नैकु रहिए।



मैतिन तें सोरे औ ईगुर तें राते-रते,
 काजर तें कारे, भारे, पानिप के पानि हैं,
 मलिकें कटारी से औ टामिन डरारी से,
 औ तागत हैं फारी से, जुगल मेरे जानि हैं।

डोंके के परैया किधौ मन के लुटैया—

औ बस के करैया औ चाखन की रानि हैं,
मग मन-मोहन से, बधिक धरोहर से,
मन के सु सौहन से पारथ के बानि हैं ।



नैननि कौ कमल कहौ वेतौ मुरभाइ आली ?

जो पै कहौ मृग-नैनी बेतौ सब कारे हैं,
जो पै कहौ मीन, बेतौ जल तैं न आवैं तीर,
जो पै कहौ खजन बे सेत-रग सारे हैं ।
चपल-नुरग कहौ धावै क्य पायक से,
दीपक की जोति कहौ बेतौ हैं न जारे हैं,
ससि ऐसे सीतल कहौ तौ बौ कला-हीन,
तेरे नैन जीतिवे कौ तीन-लोक द्वारे हैं ।



आङ्गे-अनियारे, चटकारे, कारे-रुजरारे,
मृग-दृग कारे अरी । एतौ रतनारे हैं,

चवल छवीले, रग-जायक रँगोले चारु,
वीरघ-रसीले रस-राते सुकमारे हैं ।

मैन-भद-भौंते से उनींदे से रहति नित,
भुकि-भुकि उघरति मनौ चक मतवारे हैं,

अनन अनूठे नैन देखे प्राण प्यारी के जु—
जहाँ-जहाँ देखे वहाँ जीवि-जीवि द्वारे हैं ।

दूर ही तै सौँही चारु, अचल हसौँही ऊँची,
 भौँहन के सग सौँही सुभग-नरेली की,
 आयौ जब ढिंग तन सुपरन-वेली पै,
 लीन्ही अनुहारि है सुपज-जुग केली का।
 पुनि अध-खुली, इन्दीवर की कला सी आइ,
 परी हैं तिरीछी-दीठ ठसिकै सहेली की,
 विविधि कटाच्छ भौँति, मेंन-सर भौँति-भौँति,
 ऐसी खुलीं अँरियोँ, अनूप अलवेली की।



सरस-रसौँही, चारु-चातुरी पदौँही, मीन,
 मेंन दरसौ ही, सुधिरौँही तान लाल की,
 रेंन की जगौँही, उरभौँही, ठलकौँही, भरि-भार-
 गरि चौही, करकौँही, रूय-रूयाल की।
 भाग-वर सौही, भरी भाव चरसौही,
 अनुराग वरसौही, हरसौही, प्रज-याल की,
 ललित-ललौही, ललकौँही औ हँसौही मोही,
 सजल-लजौही, अँर जौही आजु बाल की,



राजें रतनारे-दृग ऊपर उजारे भरि,
 प्रेम-मतवारे पिय-मेंन मुख-दैन हैं,
 गजन कमल, भृग, मीन मद-भजा हैं,
 अजन लसे तें न रहति उर दैन हैं।

“नदन” सुकवि नैद-नन्द पै दुरे नैकु,
 रोप भरे देखे यातें कहे कछु बैन हैं,
 ऐसे देखे मैं न, नैन-ग्रान से विराजें ऐन,
 आजु तेरे अजब गुलाबी-रग नैन हैं ।



रति-रँग राते, प्रीति पागे, रैन जागे नैन,
 आए अब इतै मूमि घूमि छविके छके,
 सहज विलोल भए, केलि की कलाननि तैं,
 कवहूँ उँमगि रहे, कवहूँ जके थके ।
 नौकी पलकन पीक-लीक मलिकति अति,
 रस बलकनि वन मदन कटू सके,
 सुखदसुजान ? “घनअँनद” जू पोखे प्रान,
 अजरज अँखिन उधारे लाज के टके ।



तेरी भौह धनुष धरति करि कोप ओप,
 चपक के चाप के हू रँचति खटाति हैं,
 तेरी ए अलक ता मैं ललित-कलित गुन,
 मधुकर मय गुन कथति डराति हैं ।
 कहे “नीलकठ” सन तेरे अग-अग हेरि,
 नातरि अनग से समर सुहाति हैं,
 जग-जैतवार कोटि तेरे ए कटाच्छ ना तौ,
 पाँच-पाँच धानन तैं जहाँन जीते जाति हैं ।

हिय हरिलेति हैं, निकाई के निकेति हँसि,
 देति हैं सहेति निररति करि सैन हैं।
 सैन हरिनीनि दृग-ही तैं अति-नीके राजें,
 हरति हैं दरद, करति चित वैन हैं।
 चाँहति न अजन पै रसिक-जन गजन है,
 रजन सरस राग रीते अति ऐन हैं,
 दीरघ ठरारे, अनियारे, नैकु रतनारे,
 कज सौ निकारे कजरारे तेरे नैन हैं।



नैन अबला के नैकु निररै निहाल होति,
 हेरें रहि जाति मृग, मीन लट गए हैं,
 “भनै उडिदाम” फाम-यानन की नौजन पै,
 कहाँ यह रग कनि-कोटि नट गए हैं।
 भौर रूप, सरस-सनेह के सरोवर में,
 सुख-सने कमला-दल हरि डट गए हैं,
 आँन अवलान के गुमान गट गए मानौ,
 सैन चढ़ि फेतिक सुजान पट गए हैं।



पारिज-विषाने, तारि रजत-गिसाने, मृग,
 मीन, मुरगाने, घन-वा विहरति हैं।
 भौर-भहराने, आत-उपमा न आने, परि,
 हेरि-हेरि क्षरि-नात दिय दहरति हैं।

बड़े, पिसाल, बाँके, प्यारी के अनूप-दृग ,
 कहत कछु पै रौम-रौम थहराति हैं ,
 मेरे जान आनंद सैं चारैं-चक जीतिने कौ ,
 भूप-मकरध्वज के धुज फहराति हैं ।



हम हीं में रहति, पै न कहति औ दहति देह ,
 निरह-अगिन-छक आनि उर डारिती ,
 दई हैं बनाइ विधि अविधि की वैरिन पै ,
 “अमरेस” इन्हें मारि हमहीं तौ हारिती ।
 होति ना निगाह जो रिसाइ नैकु राखै मूँदि ,
 उधरै निगोडी भग-दूनौ पग धारिती ,
 लाज कौ न राखै , लोक-लीक गहि दूरि नाखै ,
 वर-जस आँखै हमें पर-जस पारिती ।



आसा-द्रुम सघन, सुहामने सुखद-स्वच्छ ,
 रच्छति अवधि-धेलि हिम-हरसाने में ,
 “नयनीत” अतर-अमोल, अनुराग-जाग ,
 कुम-कुम मलय डोरे सुख-सरसाने में ।
 तट के गुलाबन के फूल से रहे हैं भूलि ,
 घरनी उसीर, नीर-नैन भरलाने में ,
 आँपम की तपत मिटावति पिचारी प्रान-प्यारै ,
 मूँदि राख्यौ आजु दृग-खससाने में ।

पकज की पाँखुरी से, परम प्रतीने भीने,
 होति न अर्घीने रूप-जल में तरे रहें,
 "ईसजू" वरानैं त्रिधि आनति अचभौ मोहि,
 अतर-सुभट सौ क्यौ कपट भरे रहें।
 नीत में नवीने, नौने नेहनि भरीले नित,
 नौकदार-नेजे लिएं नट लौ तरे रहें,
 निपट-नसीले, नींके प्यारी के लजीले-नैन,
 पट में दुरे हैं तौऊ घट में धरे रहें।



कैधौ मुख-रुज पै मरजाद सौ लरति मीन,
 दीन करि मोहे, अर्घीन करि ताके हैं।
 "नवनीत" पूरब-अनुराग के अनौखे-दूत,
 पोखति प्रतीति, रीति, प्रीति-परिपाके हैं।
 दूरि ही तै वेधति, अनेक-अबलान हिय,
 पिय-परिपोषक प्रतीन छवि-आके हैं।
 हैं न मृदुता के, ऐसे मैन-मृदुता के, जैसे,
 चचल-चलाके-नैन नन्द के लला के हैं।



प्रेम-रँग पगे, जग-भगे, जगे जामिनि के,
 जोवन की जोति जगि जोर उमगति हैं,
 मदन के माँत, मत-यारे ऐसे घूमति हैं,
 मूमति हैं मुक्ति मूक्ति भँपि उपरति हैं।

“आलम” सो नवल निकाई इन-नैननि की ,
 पॉखुरी-पदुम पै भँवर थिरकति हैं ।
 चाहति हैं उड़िबे कौ देखाति मयक-मुख ,
 जानति हैं रैन तातें ताही में रहति हैं ।



चलति चितौनि चारु चित्त तें न दूरि होति ,
 हेरि-हेरि वार-वार नेह सरसायौ री ? ,
 छापौ री अनग अग, तायौ री अनेक पाँति ,
 पायौ री । न बँन अरु लोगन हँसायौ री ?
 मनति “तिलोक” जो में जानिती इननि की घात ,
 राखिती जतन करि घूँघट-कसायौ री ? ,
 मिले भरपूर, चकचूर करि दूर भए ,
 मेरो मन हाइ इन नैननि फँसायौ री ? ।



भाजु कमल-नैन जू सौ मोसौ ऐसी होइ-मरी ,
 औरै का सखिन की घातें अब देखिये ,
 दरपन लै फान्ह घोले मेरे बड़े-नैन हैं जू ,
 (तौ) हौं हूँ कही प्यारे ? नहि ऐसे तौ देखिये ।
 दीरघ-बिसाल मेरी राधे ? के सु राजें अति ,
 कही लाऊ चलिये जू न रस कौ बिसेखिये ,
 आएहैं हराबी हहा प्यारी ? में बलि बलि जाइँ ,
 एक-वार आखिन सौ औरै नाँपि देखिये ।

मनँ कीजो मेरी आली ? जियमँन ऐसी आनँ ,
 हम तौ हितू सो वात हित की बताइ हैं ;
 जानति है पाँइन सौ नाँपे हैं तीन-लोक ,
 सु याही के भरम-भूले भरम गँवाइ हैं
 दर्ई की सँवारी बृपभानु की किसोरी तासौ ,
 सर-र किए तँ हरि ? पाछँ पछिताइ हैं ।
 राधे-चन्द-मुखी के कनौडे हैं कमल-नैन ,
 आँखिन सौ, आँख नाँपि कैसँ जीतै जाँइ हैं ।



रति के मुरीद, महबूब बे-दरद दौनौ ,
 पानिप के प्याले पल अलाफि न मैनी ,
 सित औ अक्षित डोरे-सुरर सुधारे अली, ?
 कोए कल-कलम निसि पथ नऊ ठेलैगे ।
 अजन इलाही नूर-पगे हैं "मुकुन्द" कहँ ,
 नजरन की आसा, मन-मथ जीति रेनैगे ,
 राधे । नैन-सैन-वान विहद-अभि छाके बाँके ,
 मैन-सर घालि नद-लाल पर मैनी ।



—ऐसे मैं न काहू के, न ऐसे मैंन का हू के,
 न ऐसे मैंन, काहू के, सँवारे दाह-दोर के,
 और हैं न-कारे, ऐसे और हैं न कारे,
 ऐसे और हैं न कारे, कज-मुजुल मटोर के ।

घर-सुखमा के हँ, सरस-सुखमा के हँ,
 सर से हँ "माखन" कटान्छ पैन-धोर के,
 देरे हरि नीके नैन, देरे हरिनी के नैन,
 देरे हरि नीके नैन श्री के हे न और के।

७

दौरप, उजारै, पजरारै, भरे प्रेम-नैर,
 फोर-नैर पेने, दत्त राजति भँवर मे,
 सुपर-नैरां पै "सुधारक" सुधा के गैरे,
 छवि के विद्यैते के अमता मे पर मे।
 ता के जहाज विधीमान के विरान-जात,
 राधिका सुजान, आजु तेरे हग दर मे,
 पाहर पपोर भण, गृग-दाग मोत हाण,
 गंगी गपास भण, गपरीन पर मे।

९

कारे, झपकारे, रतनारे, अनियारे से,
 सहज ठरारे, मनमथ मतारारे हैं,
 लाज भरे भारे, भारे, चपल चितारे तारे,
 साँचे के ढारे, प्यारे रूप के उजारे हैं।
 आधी-चितवनि ही मैं किए तैं अधीन हरि ?
 टौने से वसोकर के लौने परिहारे हैं,
 कमल, कुरग, मीन, रज जन भँवर वृष—
 भानु की कुँरि तेरे दृगनि पै वारे हैं।



प्यारी के दृगनि मैं झमकि दृग-पीतम की,
 पीतम के नैन सैन प्यारी मन-रज हैं,
 चाउ मैं सिंगार-मार, मैन ही के सुधासार,
 दूध तैं पत्तार धरे माधुरी के मज हैं।
 “हरदयाल” सुकवि रसाल उपमा-बिसाल,
 लाल मन लाल हैं कि मैन-सर-स्रज हैं,
 कज विच रज हैं, कि रज विच कज हैं—
 कि कज हैं, कि खज है, कि दोऊ कज-रज हैं।



तेरे नैन प्यारी अनुराग के अनूप कज,
 ता ऊपर मेरे नैन-भँवर अतोर हैं,
 “नयनीव” तेरे नैन मैन के मुसाहिय तौ,
 मेरे नैन ठाढ़े करैं विनती कर-जोर हैं।

तेरे नैन फातिल हैं कतल करैया महा,
 मेरे नैन सनमुख तैं सुरति न मोर हैं ,
 मेरे नैन, तेरे नैन, तेरे नैन, मेरे नैन,
 मेरे नैन चोरिवे कौ तेरे नैन चोर हैं ,



सुनति हूती ही (कि) लौनी नन्द कौ दुदौना सुती,
 आजु अरलोकौ भोर जमुना किनारे में ,
 यही-वही आँखिन तैं मो-तन निहार्यौ नैकु,
 ता खनि तैं भई बलि अजब-लचारे में ।
 परी मेरी घोर ? मोहि जानि न परति फछू,
 "भनै रगपाल" जऊ केतकि विचारे में ,
 कैधौ उन नैननि में, नैन ए हमारे वसे,
 कैधौ वेई नैन घसे, नैननि हमारे में ।



प्रिय-भन-भूत किधौ, प्रेम-रथ सूत किधौ,
 भँवर अभूत-थपु यास के सुरग हैं ,
 चित्त-पति चहुँ-घोर, पीतम के चित्त-घोर,
 चँद के चफोर, किधौ "केमय" सुरग हैं ।
 घात-भद भजन हैं रोलिये के रजन हैं कि,
 रजन सुँवरि कामदेव के सुरंग हैं :
 सोभा-खर तीन भीन, पुबलय रस भँति भीन,
 नलिन नपीन बिधौ नैन मटु-रंग हैं ।

कैधौ रूप-सागर के रतन-जुगल किधौ,
 भूप मीनकेति के, कै तन हँ सुनस के,
 नेह भरे, मदन-सदन प्रदीप किधौ,
 रसराज चाखिबे कौ चरैया हँ सु रस के।
 सुनति सुदेस कै सुनेस से महीप किधौ,
 बस कीबे काजु इन्दरीनि घास-दस के,
 लगै हिय ऐन, कसकति दिन-रँन किधौ,
 प्यारी। तेरे नैन-तीर मन-तरस के,



सुखमा मलिन्द के अतिन्द अरिचिन्द हँ,
 फरिन्द हँ नरिन्द के रागे हँ धर जग के,
 "श्रीपति" प्रवीन रूप-भर के ततिन-मौन,
 हरिन तथीन तेह-पात मग्न ब।
 गरी मेरी प्राण प्यारी? तोचा निहारे प्यारे,
 उरज सुगारे बिय निरह तमग के,
 रति-रा धीर है, मिंगार पुन-धीर है,
 मँवारे आदे धीर हँ, सु मरान-तरस के।



कैधौ रग-राग रग, रतिग, जगिग किधौ,
 ततिग विविग विग पतिग सु भग्न ब,
 कैधौ जग जतिधे धी राग रतिग, हास,
 बरदा बगान 'केगौ दाग' बग्न बग्न ब।

प्रत घात पातक कि चित्त चोरिवे कौं तम,
 देखिवे कौ नन्दलाल लाल करैकाल के,
 लागि रही लोक लाज, रजन सु नैन किधौ,
 पिय-भन-रजन कि अजन हैं बाल के ।



आधी लै उसास मुख आँसुन सौं धोवै कभू,
 जोरै है कभू आधे-पलनि पसारि कैं,
 नींद, भूँस, प्यास, ताहि आधी हू रही न तन,
 आधे हू न आखर सकति अनुमारि कैं ।
 "द्विन-देव" की सौं ऐसी व्याधि-अधिकानी जासौं,
 नैकु हू न तन, मन राखति सन्धारि कैं,
 जा दिन तैं जोरि मन-मौहन लला पै दीठ,
 राधे । आधे-नैननि ते आई तू निहारि कैं ।



मीन है कमीने परे पानी में निहारि-हारि,
 हारि कैं चकोर अति चुगति-अंगारे हैं,
 "भूपति" भनति मजु-कजन सु राजन के,
 गजन-गरव करि हारि कैं निकारे हैं ।
 हारे-रतनारे, सारे-कारे औ सितारे सेतु,
 उपमा सिता-सित तरगति में भारे हैं,
 प्यारी । हरे मान-दृग पानि पर सौंन घरे,
 कैवर-कसीमे ये कमान-यारे, यारे हैं ।

पतिव्रतता के मजु-मन्दिर मजा के किधौं,
 लखि मृग थाके, चारु सर सुखमा के हैं,
 कैधौं छैम-छाके हैं अमद भौन भाँकें हैं,
 न ऐसे रमा, रभा के, उमा के और काके हैं!
 "भनै रघुनाथ" धाम कैधौ सीलता के प्रेम—
 सागर के मीन नैन-आँके राधिका के हैं,
 पिय-मुददा के, वसीकर वसुधा के किधौं,
 सुधा-सिंधु-मडल में कुड द्वै सुधा के हैं।



खजन, चकोर, मीन, मृग-सिसु, सारस सब,
 थारिऐ कपोत हू अनूप-ओप गौरी के,
 तीखे-तीर, खजर, कटारी, तेग, नेजन त,
 बाँक, बिछूआ ते हैं वकैत-बर-जोरी के।
 "भनै रघुनाथ" हैं लर्जाले लालची हैं लोल,
 पकज, गुलाब-रग रति मद भोरी के,
 ललित-बिसाल, यौं रसाल कजरारे लाल !,
 मृदु रतनारे-नैन नवल किसोरी के।



ऐसे हैं न मैन के, न देते ऐन-सैन के,
 जगैया दिन-रैन के जितैया सौति-सीन के,
 कमल-कलीन के सु मुबलित करन हार,
 कानन की कोरन लौं कोरन रँगान के।

“भक्त कविन्द” भवती के नैन-साइक से,
 देखे नैन-पाइक से, नाइक-नगीन के,
 साँचे हैं अमीन के, अमीन मानों मीन के,
 बखानें को मृगीन के, रगीन, पन्नगीन के ।



काजर तैं कारे, अनियारे, डारे मद-वारे,
 कमल-ढरारे, किधौं, अमृत के दौना हैं,
 खजन-सँवारे किधौं खजर-खरसान धरे,
 कैधौं मन-मौहन के मन के हरौना हैं ।
 रूप-जल न्यारे, रस-वारे से डगमगाति,
 नमल-दुलारे, किधौ मृगन के छौना हैं,
 “मदन” निहारे, पछी सीस देंन-हारे अली ।
 तेरे-नैन ऐन मानौ नैन के खिलौना हैं ।



कैधौ रूप-सागर में आँचि बडवागिन की,
 विरह निखाल-ज्वाल जा मधि बिकासी है,
 कैधौ दल-भकज के ऊपर अरुन-रेखु,
 कैधौ नेह-दीपक की अरुन-सिखा सी है ।
 गोरी ? तेरे-नैननि के घीच लाल-रेखें सुतौ,
 रेखै अनुराग ही की प्रगट प्रकासी है,
 कैधौ अनियारे, अति-कारे, बट-पारे इन,
 तारेन की फ़ौंसो पिय-जिय है निकासी है ।

काम की कमान तेरी भृकुटी-कुटिल आली ?
 तारें एते तीछन ए तीर से चलति हैं,
 घूँघट की ओट, कोटि करि कैँ वसाई-काम,
 मारे विनु-काम कामी केते ससकति हैं।
 तोरे तैं न दूटैं ऐ निकासै तैं न निकसति,
 पैने निसि-यासर परजे वसकति हैं,
 “सेनापति” प्यारे । तेरे तम से तरल तारे,
 तिरछे-कटाच्छ गड़ि छाती में रहति हैं।

०

फोटि-कोटि वजन औ रजन, मृगा-भद,
 फोटि-कोटि मीनन की चपलता अपार हैं,
 फोटि-कोटि तीच्छन-वटाच्छन की रातै-धरि,
 फोटि-कोटि धाजै-धटा अति ही उदार हैं।
 “भनै पागेम” फोटि-कोटि चपलाई चार,
 मुममा अनूप-रूप सोभित सिंगार हैं,
 कोटि-कोटि तोरा छसोदरी ? विहारे जुग,
 प्रगटे है पाग-कोटि अद्भुत प्रकार हैं।

०

केगें रूप-शागर में पून्वी दे कमान बही,
 गगौ अरविद, मृग, मीन भए खरे हैं,
 केगें अरविद, मृग, मीन भए खरे बही,
 जेहि छै ? तु जान पै नी अरि हरे हैं ?

कैसें री सु-आनन पै नैन किए डेरे कही ,
 जैसें नँद-नदन निहारे आइ नेरे हैं ,
 कैसें नँद-नदन निहारे आइ नेरे है ,
 जैसें आवदार ए नवाव-नैन तेरे हैं ।



सुन्दर-सजीले, सहजीले, सरसीले कोर—
 काजर-कजीले त्यों, बकोर सचुपाने से ,
 नौचति-नसीले, काम-साइक बसीले, चहकीले ,
 चटकीले, मटकीले औ अयाने से ।
 धाजति छवीली के छवीले ए रँगीले-नैन ,
 हौसन हँसीले, सौन चूमति दिमाने से ,
 "रसिक-किसोरी" नेह-लाजनि लजीले चारु ,
 सुधा से रसीले हैं सरोज सकुचाने से ।



तांसे-तेज ताव-भरे, सीसे दाव, धाव-भरे ,
 बाँह चित चाइल चलाकी सौं कडे रहें ,
 खनरीट गजन, कुरग मद-भजन ,
 अनूप-रूप रजन, मजेज में मडे रहें ।
 "पहित भनत" प्रीति-भीतम के पोरे ए ,
 अनौखे-नैन तेरे रस-रीतिन रडे रहें ,
 पोखे-बाव चौगुने, सुदाग-सने सौ-गुने,
 हजार गुने हिय पै हरीफ लौं पडे रहें ।

हित उपजौने, नेह-मेह धरसौने,
 देह-दीप धरसौने, अरसौने सर-सौना हैं,
 हिलग लगौने, मपकौने, छपकौने छैल-
 छलन-छलौने, अनरौने, रस-दौना हैं।
 “भरमी सुकवि” छवि मन के हरौने देखे,
 सहज-सलौने-लौने कानन लगौना हैं,
 रंग-रस-भौना, हेरि हारे मृग-छौना,
 कौने, कीन्हें तेरे-नैन प्यारी कामरु के टौना हैं।



कातिव-कमान कोर-कारे दिल रोज-रोज,
 वरसै घदन-जोव शाही-सुख-ऐन हैं,
 शान-सुख शोऊत सियाह शोख सुर्मई की,
 रोशन-चिराग मिस्तल आलम के दें हैं।
 स्याम के सलौने-चश्म इन्तजार जाके रहें,
 शर्म से तकैना तऊ लाखौ करै कैन हैं,
 नौक-भरे, भौक-भरे, नये-नये, नये “नूर”,
 नाज-भरे नाजूक ये नाजनी के नैन हैं।



मरति जियावत है, आवत हँसावति हैं,
 चित उचटावति हैं, काम कै दिलौना हैं,
 सुमति सुघर घरे, घने मन दल-मले,
 भल-मन चले तीरे घाव के अगौना हैं।

रूंधिवे कौं गज ऐसै, काटिवे कौं खरग जैसे,
 बेधिवे कौं बानसे, निकासिवे कौं पौना हैं,
 दाना-टौना कहति सुटौना कहूँ ऐसे होति,
 एतौं दृग कौंमरू के टौनन के टौना हैं ।



आँरै आम कोसी फौकें, कोहैं कमल कोसी—
 पाखै, प्रेम-रस चारै हिय तैं न निकसति हैं,
 काम-सर नारै, धीर काहू की न राखै,
 राखै जे समद मारै, ईठ दीठ कसकति हैं ।
 “कृष्णलाल” साधै, सुधा पूरति गवारै—
 माँहि घूघट-गवारै तो सी तो मैं विलसति हैं,
 कौन अभिलाखै, खासी उपमा न भाखै,
 प्यारै रावरी ए आँरै हमें लारन बकसति हैं ।



कोऊ कहैं स जर, कटार, छुरा, चाँक—
 कोऊ, कोऊ कहैं किरच सकेले बे-नजीर हैं,
 धोऊ कहैं सैफ हैं, सिरोही, कोऊ नोमचा से,
 कोऊ कहैं ग्यास ए हुसैनी-समसीर हैं ।
 कोऊ कहैं भाले, कोऊ साँ गैसा बरानैं ताहि,
 कोऊ कहैं घरछी बुम्माई निप-नीर हैं,
 मेरे जान सनम ? कटीले ए तिहारे दृग,
 नैन पैन-मैन के अनौखे घोरे-तीर हैं ।

वातुरी कै चुगल, चवाई चित चाह के कि-
 पाहरू ए प्रेम के, प्रवीनताई परसै,
 अजन् वलित कोरै सज-मद गजन ए,
 चोरै चित चाँहि-चहुँ ओरन सौं दरसै ।
 मदन सरोज में मलिन्दन के सुमीति मजु,
 “सेखर” सनेह के भरे से भाव सरसै,
 काम के तुनीर केसे तीर-नैन कामिनी के,
 ताकि-ताकि तरुनी तिलोत्तमा सौं तरसै ।



नेह स्याम-सुन्दर सलैने की सु सीखी गति,
 सुरति समोद अभिराम उमगीना मैं,
 डोरे डीठ अरुन ठगोरे ठीक ठाहियतु,
 “कवि पजनेस” भौन मजुल पगीना मैं ।
 खुलत, डुलत, दग पूतरी सु स्यामता मैं,
 आतुर लली के लौने लगन लगीना मैं,
 मानौं गुन-आगर सुवार वरनी के मधि,
 नागरी ? नवल नीक नाँचति नगीना मैं ।



काजर-कलित कोरै, कज से सु रस-पुज,
 तीखे-तीखे तरल वसीकरण जी के ए,
 मीन गति सुरति, मनोज मन-रजन ए,
 गजन गुमान, रसीकरा हूँ पी के ए ।

सान घरे "सेखर" निधान मुखमा के बाँके,
 छाके नेह-आसव, नसाके नितही के ए,
 सीलसने सलज सलौने सुखदेँन प्यारी ?
 नेह भरे निपट-नुकीले नैन नीके ए ।



माँन मुरमानी भागि पानी लुकानी जाइ,
 हिरनी हिरानी वन-वन भटकानी हैं,
 भौरन की भीर भरमाँनी, मडरानी फिरै,
 पक मैं परानी कज-कलिका फरानी है ।
 जोवन जवानी के जलूस मैं दिवानी "सोभ"
 सौतिन की देखि-देखि छवियाँ पिरानी हैं,
 जोगी, जती, ग्यानिन की मति बहिकानी—
 यातैं आँरै हम जाँनी ए सनेह की निसानी हैं ।



भूपति है प्रेम, लाल-डोरे हैं निसान तेई,
 चचलता चतुर-चुरग भीर-भारी है ।
 देखियौ अनेक भाँति तेई असवार खरे,
 काजर-समोई करि कुरसी सँवारी है ।
 वरनी-बँदूक की पाँति सी लई है पिय,
 निरह-नानीम मारिवे कौ पैज धारी है,
 "सूरत सुकवि" स्वच्छ स्याम-रँग बागे वने,
 प्यारी तेरे नैननि मैं नीकी असवारी है ।

देखति ही सब के चुरावत हूँ चित्तन कौ,
 फेरि कै न देती यौ अनीति उमडाई हूँ,
 “कवि मतिराम” काम तीर हूँ तैं तीच्छन,
 फटाच्छन की कोरैं छेदि-छाती में गडाई हूँ।
 खजरीट, कज, मीन, मृगन के नैननि की,
 छीन-छीन लेति छवि ऐसी तैं लडाई हूँ,
 तेरी श्रौखियाँन में त्रिलोकी यह बडी-यात,
 एते पै बडी-बडी पावति बडाई हूँ।



नीति-भग मारिवे कौ ठग हूँ सु-भग-भन,
 बालक-विकल करि डारिवे कै टैंने हूँ,
 दीठ-खग फ्रादिवे कौ, लासा-भरे लागैं हिय,
 पीजरा में राखिवे कौ रज्जन के छैने हूँ।
 “दास” निज प्रान-गथ अतर तै बाहिर न,
 राखति हूँ केहू कान्ह कृपन के सैने हूँ।
 ग्यान-तरवर तोरिवे कौ करिवर जिय,
 रोचन तिहारे तिय लोचन सलैने हूँ।



टारै हू टारैं न, जतन अनेक लीन्हैं,
 नैकु ही निहारति में घाइल करि डारै हूँ।
 डारै हूँ, जलज गार केते सर-सरितन के,
 खजन रिसाने अलि केते जिय हारै हूँ।

धारे हैं, हिरन हहराने, महराने मुके,
 "दास" कहें ग्यान लखि कानन सिधारे हैं,
 धारे हैं, धरारे तीखे सान-धरे अनियारे,
 नैन हैं कि तेरे ए अनग के कटारे हैं।



करकति रहति, धार-ठरकति अंसुवन की,
 हरकति लाज तन-तपन पसारे हैं,
 पल न परन देति कल कल-पावत हैं,
 जैन न जतन जन-जी पै निरधारे हैं।
 है कै निरदर्शरी। उन्हें ऐसैं न चितै री वीर ?,
 "गोकुल" के नाथ वे तो रावरे पियारे हैं,
 ईच्छन मैं गडैं क्यौ न रीच्छन विलोकति ही,
 तीच्छन-कटाच्छ भरे ईच्छन तिहारे हैं।



स्रजन-मलीन, मीन, मृग वन मॉम लीन,
 कज छत्रि-छीन कीन, पाँइन के घेरे हैं।
 धारप-ठरारे, रूपकारे, रतनारे-ऐन,
 मैन-भतवारे, ऐसे मैं न कहूँ हेरे हैं।
 तरुनी चपल-मन बाँधिवे को फदा—
 "ऊधौ" लाल-लाल डोरे लखे रूप के घनेरे हैं,
 बड़रे-पिसाल हिणें किए हैं दुसाले ए—
 रसाल नटसाल लाल प्यारे दग तेरे हैं।

भाजे हारि खजन, लजाइ कज पक वसे,
 मार-रस भजन अनौखे-नैन ऐन है,
 तीखे-तीखे नैन-मान भृकुटी-कमान तान,
 वेधे तन-प्राण करै अति ही अखैन है।
 कहै "कवि राम" याकी कहाँ लौं पढाई करौ,
 मँहनी जगत को पढाई गुरु-मैन है,
 पीन-मृगराज वन दीन-दुरख भँजन ए,
 लाल-मन-रजन ननेली तेरे-नैन है॥



जीते मृग, मीन ते धनीन में घसाए—
 जीते खजन नयान ते ठहरे न ठान के,
 जीति लान्हे भौर ते भ्रमत ठौर-ठौर डोलें,
 जीते हैं चकोर करै असन कृषान के।
 "भनवि कविन्द" तानि भृकुटी-कमान प्यारी,
 फान्ह जीते, जीते मान सुर-अनितान के,
 अम कजरारे-नैन असित गुमान खान,
 दीन वै धरे हैं फेरि यान पच-या के।



फाटा अमानवा में, खजन चपलवा में,
 धावा में मांग, धावा में पड़े पँ के,
 प्रेम में चकोर, पोर नैम के निपादिये में,
 फरै "खुदाय" ठग ठगिये में रींग के।

ढसिये कौ भौर, डीठि फँसिये कौ वँसी,
 गसिये कौ जत्र, हेति चैन हू अचैन के,
 या में हँ न भूँठि प्यारी। हिय में आइ लगिये कौ—
 प्यारी जूके नैन ऐन तीरे-बान में के ।



राखति सलूक मिले मदन-महीपति सौ,
 सुतनु सरकि जाति कौनन की ओर हैं,
 चपरि हरति ब्रज-बालन के मन, धन,
 मारति मरोर भरे जोवन-मरोर हैं ।
 जागति हूँ मूँसेँ, सावधान कौं बियस करै,
 चपल-चितौन सर वेधति सजोर हैं,
 मोसौ कहि आली ? ब्रज-लाडिले के लोल-दृग,
 ठग हैं, कजाक हैं, डकैत हैं कि चोर हैं ।



धीर। किति जै ऐ काहि जाइ दुख सुनै ऐ निज,
 कोऊ ना लसाइ ऐसौ होइ मेरी ओर हैं,
 परी रति-राज, रस-राज रितु-राज तिहु,
 रसिक-निहारी बड़े हिय के कठोर हैं ।
 चितवति यचति न हटिकें हरति घाइ,
 कीजै फहा लालन के दृग वर-जोर हैं,
 भोर के सु ठग, बटपार सावधान के हैं,
 घोए के जु फँसीगर, जागत के चोर है ।

जीते जिन तामरस, अलि-कुल, मीन-कुल,
 कारे कजरारे सोहें पिय सुख दें के,
 जीते जिन स जन ओ मुकता डरनि जीती,
 जीते हैं चकोर किधौ दोपक हैं रँन के ।
 कमल डरारे किधैं। प्रेम-मद मतवारे,
 तेवन सुहाइ धरे जागे सुख सँन के,
 मृग हैं भड़ैत किधैं। पाइक सँडैत दोऊ,
 प्यारी तेरे नैन किधैं जोघाएँन मँन के ।

ॐ

पजन प्रचीन टेरें सैननि सँफेति प्यारी,
 प्यारे कौं कौसो जुत ननद जकैती सौ,
 फोर कजरारी ता पै फरकति फेरि-फेरि,
 धिर ख रीटन फौ धिरकि यकैती सौ,
 धार मुग धार ता पै फरि फगरप्य का पै,
 किमि सरमान धार फँकति फकैती सौ,
 कामिनी कौ नोकौ विधु-मदा विराजै आज,
 मँन-सर फाड़े नैन पाइ-यकैती सौ,

●

फाजर फराटे, रतारारे औ फटाख्ख फाटे,
 डारे काम-घाँबे पुनि पाणिर मठरे हैं,
 रागें पुनि मोठे, चनघाँगे पुनि पै। अँमात्रि,
 पुनि मुगिफाँगे, इगणों, मठरे हैं ।

अधिक दुसौहे, चपलौहे, निठुरोंहि सुचि,
 सोहैं, मन मोहैं, दृग "दूलह" पियारे हैं,
 तीसे फिर रूखे, विष वींधे, सर साँधे हनि-
 डारैं, फिरि मारैं, दर्ई मारे हत्यारे हैं ।



सारी-नील जारी की सु थोट तैं चलावै चोट,
 मारै तकि-तीर सो प्रजीनता घनेरी हैं,
 रच हू न चूकति अचूक सर मूकति हैं,
 लैंचि कै कमान-भौह करति करेरी हैं ।
 कुटिल मटाच्छ-जान लागति विसिय आन,
 "रसिक-विहारी" गति जाइ ना निवेरी हैं,
 मन मृग भेरो करवर तैं गह्यौ है हठि,
 जाने जुग-नैन अहैं अजब अहेरी हैं ।



"रसिक विहारी" देखि साँवरौ सलौनौ -गात,
 अति ललचाति दोऊ होति अनुराग ने,
 जस हू न देखै, अपजस हूँ न देखै रच,
 जाइ कै लगति धाइ ऐसे भए लागने ।
 कहा करौ हाइ-हाइ नैकु हूँ न सकुचाहिं,
 जो पै वरजौ तौ होति दूने-दुख-दागने,
 चपल निलज्ज जुग लालच भरे निसक,
 हेरि रूप-दानी चलिजाति नैन माँगने ।

पल-दल सपुट में मुदें मन-मोद मात्रै,
 आरस-विभावरी है होति भीर-हाई है,
 द्वै-सरोज, बीच घसति रसति (सरस) कैसे,
 लसत सु ऐसे अचरज अधिकारि है।
 बाहर तैं रूप-भकरन्द करै पुन्य बडा,
 भूति गति हैरे यौ मतिहि हिराई है।
 नयौई रासिक "घन आँद" सुजान यह,
 कैधौ प्यारी तेरे नैन सैन को निरुई है।



आलस-थलित कोरै, काजर कलित,
 "मतिराम" वे ललित अति पानिप धरति है,
 सारस-सरस सोहैं, सलज-सहास सग,
 स-गरन, स-विलास द्वै-मृगन निदरति है।
 बरुनी-सघन बक तीच्छन-कटाच्छ बडे,
 लोचन रसाल उर पीर ही करति है,
 गाढे है गढे हैं न निसारे निसरत मैन—
 बान से बिसारे न बिसारे बिसरत है।



अरुनाई, चपलाई कहै का कवि "रघुनाथ"
 गुराई अरु स्यामताई जेती चाहियतु है,
 मौहान, बसीकरन, सोरन, उचाटन,
 आकरसन, बेधिवे की रीति गाहियतु है।

देसि कैं पिचार कीन्हौ अलिन-अलीक यामैं ,
 ए गुन कन्हैया जू के नैन लहियतु हैं ,
 कज, खज, मीन, मधुकरनि में न रहै ,
 मैन-यान में कहे जे ते भूठै कहियतु हैं ।



हरि-मुख-चद कौ चकोर है रहति जानि ,
 लोचन-कमल गति-भौर की गहति हैं ,
 देखति हू देखति रहति नित-साध लगी ,
 होति अन-मेख यौ विसेस उमगति हैं ।
 टाँने कछु प्रान-प्यारे कौ सलौनौ सौ रूप तातैं ,
 नैकु न बुमाति तृसा कल न लहति हैं ,
 तिरपति न होति क्यौ हूँ माई री ? नयन मेरे ,
 पियति अघाइ त्यौ-त्यौ प्यासे ही रहति हैं ।



आपु ही तैं लागैं कहैं काहू के न लागैं ए-
 रैन-दिन जागै हैं वियोग-आगि घरियाँ ,
 रूप-भाधुरी कौ ज्यौ-ज्यौ पिवै त्यौ-त्यौ भूखी रहैं ,
 हौंहि न अदूरती ए विदूखी सदाँ लरियाँ ।
 लपट निपट पट-सपुट न रोकी रुकैं ,
 अकुलाइ डहैं, जाइ मधुवा समाधियाँ ।
 चैन हैं न आठौं-जाम इनही कौ "ऊधौराम"
 निहायौ तन तामैं दुरहाई ऐ अँखियाँ ।

रूप, गुन, मद, उनमाद, नेह, तेह भरे,
 छल-जल आतुरी, चटक-चातुरी पे,
 धूमति, घुरति अरवीले न मुरति नैंकौ,
 प्रानन सौ खेलें, अलवेले लाड के व ।
 मीन, कज, सजन, कुरग-भान भग करै,
 सीचै "घन-आँनद" खुले सकोच में मडे,
 पेंने नैन तेरे से न हेरे में अनेरे कहुँ,
 घाती बडे काती लिएँ छाती पै रहै चढ़े ।



घेर घवरानी, उजरानी हीं रहति "घन आँनद"
 अरति राती साधनि मरति हैं,
 जीवन-अधार जान रूप के अधार त्रितु,
 व्याकुन विकार भरौं सरी सुरजति हैं ।
 अतन जतन तैं अनखि अरसानी धीर ?
 प्यारी पीर भरी क्यौहू धीर न धरति हैं,
 देखिए दसा असाध अँखियाँ-निगोडिन की,
 भसमी-निथा पै नित लघन करति हैं ।



लाज-भरौं आलस, गुमान-भरी दूना-दून,
 मद-भरौं जोवन की छकन छकारी हैं,
 मोई-भरौं मीने मुख आँचर फुकारी कित्ती,
 मोहन अछेह नेह मेह धरसारी हैं ।

सनन, जलज, मृग, मीन, देखि दोन होति,
 तीच्छन मनोज-वान हूँ तैं अधिकाती हूँ,
 दोऊ बीच हूँ कै परी काजर की रेखै तरु,
 नैननि की नौकै भौकैं फौकैं कठि जाती हूँ ।



बोके लाज भार, रूप सागर में मर्दो ई रहैं,
 दए हूँ चलाइ साज वाज प्रेम-पथ के,
 गुहे लाल डोर नगसाल सोई गुन भयौ,
 बरुनी न होंहि मानौ रेखा बेट हथ के ।
 अजन निसान, चितवनि सोच हरजानि,
 कहोंलौ करौ बखान नाही जाति कथ के,
 केमट फटाच्छ करि नैया तौ लुनाई भई,
 नैना तौ न होदि ए नगरे मन-भय के,



पाइए न खोज खजरीटन में रचक हू,
 लोचन तिहारे ए छिनैया गति मीन के,
 फज-दल गजन कुरग-भान भजन, ए,
 रजन, हूँ रग-मन "रसिक" प्रतीन के ।
 मधुप विचारे हिय हारि कै रहति धन,
 अति-सुखदाइक, सहाइक सरीन के,
 सीसे-सीर काम के, न देखे काम ग्राम के,
 गनावै को परीन के, नरीन, किन्नरीन के ।

अजन सुरग जीते, रजन, कुरग, मीन,
 नैकु न कमल उपमा कौ नियरात है,
 नीके अनियारे, अति-चचल डरारे प्यारे ?
 ज्यौ-ज्यौ में निहारे त्यौ-त्यौ म्वरे ललिचात है।
 "सेनापति" सुवा से कटाच्छन बरसि जाँइ,
 जिन कौ निरसि हियौ हरसि सिरात है,
 कान लौ विसाल काम-भूप के रसाल-वाल,
 तेरे दृग देखि, मेरौ मन न अघात है।



लोचन अनूप लौने लगति सुहाइ अति,
 सेत अरु स्याम, रतनारे सुख देंत ते,
 अमृत, हलाहल औ मद से भरे हैं खरे,
 "रसिक विहारी" विलमात गुन सँत ते।
 वह मधुराई, करुआई औ तिराई घनी,
 रसिक-सुजान जन जानें मति ऐँत ते,
 जीवति, मरति, मुकि-मुकि कै परति सो तै,
 चितबति जाहि एकवार भरि नैंत त।



जाकैं सर लागै ताहि सुधि ना रहति कछु,
 जोई इनें ताकै उर रचक नियान हैं,
 तिन तैं अधिक कुसमायुध के पाँचौ-वान,
 उनहूँ तैं सरस टारै मुनिन के ध्यान हैं।

“कृष्ण” प्रान-प्यारे की दुहाई जियजानि आली ?
 सबही तैं विपम विसेस नैन-वान हैं ,
 दुहन विकल करै, जतन लगै न आँन ,
 दुहूँ भँति लगै हूँ लगाएँ हूँ समान-हैं ।



वरनि-वरनि दृग कहति सकल कवि ,
 कमल, कुरग, मीन, रजन समान हैं ,
 कहै “कवि कृष्ण” रचि-पचि चतुरानन नैं ,
 लोचन ए पाहन बनाए मेरे जान हैं ।
 कमल सौ कमल लगाइ देखे कैयौ बेरु ,
 एक आँक क्यौ हूँ उपजति न कृसान हैं ,
 लागति ही तिय-नैन, तव ही उपज उठै ,
 लगनि-अग्नि यातै प्रगट प्रमान हैं ।



रजन से, कज से, तुरगम से, सफरी से ,
 कतरे रसाल से, कुरगन से, सावक से ,
 अजन से, रजन से, चचल से, माहुर से ,
 आरसी अनँग केसे, सात्रक से, नात्रक से ।
 चारन से, आरन से, पानिप से, उथले से ,
 “सालिगराम” मूरति से, डोरे रँग-जात्रक से ।
 चाकनि विरीद्धी प्यारा भाखत “दिवाकर जू”
 दृगन-दराज से ऋपेटे वाज लावक से ।

काँछें-आँछें काँछनी असित-सित भली-भौंति ,
 रीभे रूप-रसिक, रसाल औ सरैया से ,
 थिरकति-थिरन सुथार-मुकताहल से ,
 थहराति थकति रहे खजन रिजैया से ।
 अवि सौं, फिरति फहराति फेरि फूले-फूले ,
 “श्री पति” सुघर-वर लेति हैं बलैया से ,
 आँनद के ऐन चित-चैन के करन हारे ,
 प्यारे तेरे-नैन नाँचें नैन के भैया-से



कारी, रतनारी, प्यारी । सीलता सनेह धारि ,
 काजर की रेख सो बिसेप अनी सर की ,
 कज तैं सफीली, सुचि सुखमा गहीली राधौ ,
 सैन-नैन सनक न नैन मौज कर की ।
 चोखे-चरन-चचल, चपल सिया रानी जू के ,
 “पेकीराम” चखन में चुन फिरि फिर की ,
 चितबनि चारु चित्त चुभति हैं जोगिन कै ,
 समता न पावें बानी देव-नारी नर की ।



मिलति अगाऊ जाइ, नैकहू न मानें सक ,
 फेरें ना फिरहिं लोक-लाज सब डारें तोरि ,
 लावति मिताइवे बेगि अपने सजातिन कौं ,
 आसन दै चित्त में दिए सौं नेह लावें जोरि ।


“रसिक बिहारी” भनै रसना कौँ रसना सौँ ,
 रसना के रस सौँ पिवाइ मति छारैँ भोरि ।
 ऐसे ठग, नैननि की कछु ना प्रतीति एतौ,
 देवि पर हाथ मन-मानिक बृथा ही छोरि ।

ॐ

कैधौँ रूप-सागर की पारी पक सोहैँ किधौँ ,
 है कैँरी । ससक मीन-जाल भरि राख्यौ है ,
 तीर छीर-निधि विष फैल्यौ है स-नीर ही सौँ ,
 कैधौँ कज, जबूफल मॉँक धरि राख्यौ है ।
 एरी वृषभानु की कुमारी ? प्यारी तेरे दृग ,
 “बाल कवि” कहै लाल-मन हरि राख्यौ है ।
 बाँहन के ईस पै मदन-महीस अस ,
 बीसौँ-बीस कज्जल कसीस करि-राख्यौ है ।





नैन-निकुंज 

सवैया



सवैया

भौर सरोज तैं रोज जु रै, न चकोरन हूँ मद-मोद परी है,
प्यौ-भन रजन अजन हूँ विनु, खजन-काति कौं छीन करी है।
बाहू कहा कहिए को मानति, जेती अनूपम ओप भरी है,
जानति हौं रिधि लै सब देस की, आँखिन ही छपि आँनि धरी है।

❀

जाल की चूतरी चीकनों गात, चकोर थके मुख-चद के घोसै,
लौवी-लटैं, लटिकैं कटि खीन, पयोधर-द्वै मन-मोहन सोसै।
बेधे "सुवारक" के हिय मैं सर एकौ परै ना कटाच्छ के ओसै,
बाकी न राखै कजाकी बहू, जब बाँकी-चितौन सौ भाकी करोसै।

❀

बाज की बैठक लै उचकीं, पुनि बेधि कहीं पट-घुँघट भीनीं,
बदि जाद कुही सम दूरि दुरीं, बहुरौ गति आनि करील की लीनीं।
दानत दानन लौं खर-लोल से, सानन में भर वारन कीनीं,
सालत "दिव" अदेवन हूँ बरु पारथ कौ पुरुसारथ छीनीं।

❀

रूप-सने यहू रूप दिखावत, देखैं वनै दग सील सचौहे,
जोति भरे, मुकता से दरेरे, सुरग सरोज से रग रचौहि।
खजन, भीन, मधुव्रत से कि कुरग, तुरग से मान मचौहि,
स्याम-सुधानिधि-मानिप चोहति, होति हँ चारु-चकोरन चोहै।

सवैया

भौर सरोज तैं रोज जुरै, न चकोरन हूँ मद-भोद परी है ,
 ध्यै-मन रजन अजन हूँ विजु, रंजन-काति कौं छीन करी है ।
 काहू कहा कहिये को मानति, जेती अनूपम ओप भरी है ,
 जानति हौं विधि लै सत्र देस की, आँखिन ही छनि आँनि धरी है ।

जाल की चूनरी चौकनीं गाव, चकोर थके मुख-चद के धोरै ,
 लौवी-लटै, लटिकैं कटि खीन, पयोधर-द्वै मन-भोहन सोरै ।
 बेधे "सुवारक" के हिय में सर एकौ परै ना कटाच्छ के ओरै ,
 बाकी न राखै कजाकी मछु, जब बाँकी-चितौन सौ माकी करोरै ।

बाज की बैठक लै उचकीं, पुनि बेधि कहीं पट-धूँधट मीनीं ,
 बड़ि जाइ कुही सम दूरि दुरीं, बहुरौ गति आनि करील की लीनीं ।
 वानत कानन लीं चख-लोल से, सानन में भर धारन कीनीं ,
 सालत "देव" अदेवन हूँ बरु पारथ कौ पुरुसारथ छीनीं ।

रूप-खने बहु रूप दिखावत, देखैं वनै इग सील सबौहि ,
 जोति भरे, मुकता मे ढरेसे, सुरग सरोज से रग रचौहि ।
 खजन, मीन, मधुव्रत से कि कुरग, तुरग से मान मचौहि ,
 स्याम-सुषानिधि-मानिप चाँहति, होति हूँ चारु-चकोरन बौहि ।

“देव” में सीस बसायी सनेह सीं, भाल मृगमद-विन्दु कै राख्यौ,
कचुकी में चुपन्यौं करि चोवा, लगाइ लियौ उर सौ अभिलाख्यौ ।
लै मरुतूल गुहे गहने, रस मूरतमत सिंगार कै चाख्यौ ;
साँपरे लाल कौ साँवरौ-रूप, में नैननि कौ कजरा करि राख्यौ ।



पर-राज ही देह कौ धारें किरौ, परजन्य जधारथ है दरसौ,
निधि नीर सुधा के समान करौ, सब ही विधि सज्जनता सरसौ ।
“धन आँनद” जीवन दाइक हौ, कहु मेरी हू पीर हीएँ परसौ,
करहूँ वा निसासी सुजान के आँगन, मो आँसुवान कौ लै बरसौ ।



अरविन्द प्रफुलित, भौर किधौ, सु अचानक जाइ अरें पै अरें,
वनमाल-थली लखि कै मृग-साबरु, दौरि निहार करै पै करै ।
सरसी ढिग आइ कै व्याकुल-मोन, बिलास तैं कूदि परें पै परें,
अबलोकि गुपाल कौ “दास” जू ए, अँखियाँ तजि लाज ढरें पै ढरें ।



रोवें सदाँ नित की दुखियाँ वनि, ए अँखियाँ जिहि घास सौ लागी,
रूप दिखाओ इन्हें करहूँ, “हरिचद” जू जानि महा अनुरागी ।
मानि हैं औरन मी नहि ए, तुम रग-रँगों कुन लाजहि त्यागी,
आँसुन कौ अपने अचरान सौ, लालन ? पैछि करौ बड भागी ।



कै सुखमा के समुद्र में सोहि रहे जुग मीन अनेक-कला करि,
कै छवि की रवि पाँजरी काम, दये तिहि में जुग-रजनी कौ धरि ।
भासै “मुनोरघुराज” किधौ, विधु बाल-कुरग द्वै लोन्हे मुँह भरि,
आपने रँग में लागे सुपन्थ, पागे किधौ रुकिमित्र-दुगै हरि ।

जाकें लगैं सोई जानैं त्रिधा, पर-पीर में कोऊ उपहास करैना,
 'सागर' जो चुभिजात हैं चित्त तौ कोटि उपाइकरै पै टरै ना।
 नैकु सी कोंकरी जाकें परै, वह पीर के मारै सु धीर धरै ना,
 बैसे परै कल एरी भट्ट ? जय आँख में आँख परै निकरै ना।

✽

ढोरे सुरग, त्यों सारद रग से, सेत कछु रुचि गग सँवारे,
 ता पर ए अरसीली चितौन की, चोटैं अचूक न जाति सँभारे।
 बक-त्रिलोकनि में "लछिराम" लसैं इति धीरज-भोचन तारे,
 पॉहुरी में अरविन्दन के लिपटे मनौं रयाली मलिन्द के वारे।

✽

मृग के चख मजु से, मीनन से, मुद-भोद सदाँ सुखरासनी के,
 कजरारे, सुकारे, कटीले, कछु, औ सिसरे गुन जूरे जुरासनी के।
 "चिरजीवी" लला है ठगे से रहे, छिन ठाडे भए ब्रज-वासनी के,
 धँसे जी में, न नैकु कडे अजहूँ, जुग-नैन अनग-बिलासनी के।

✽

कानन लौ चरबौई करैं, अति प्यारे लगैं कजरारे अहो हैं,
 जोवन के मद सौ उँमगे, लखि मेरे मढैं जन जेतन को हैं।
 "गोकुल" सोंचि सराहिये जोगि, जगै जग में जग जैनतजो हैं,
 चचल खजन, मीन, मृगैन, सु दैन भरे चख रावरे सो हैं।

✽

हैं पर से बर चारु-दृगचल, रचत सी सुखमा कजरार्ई,
 नैकु नहीं थिर है फिरते रहैं, कानन कौ पर सैं सुखदाई।
 "गोकुल" खजन तै इन तैं, इतनी ही लखी हरि अतरताई,
 बेधति हैं लखि तैं हियरौ, तिय के चख में इतनी अधिकार्ई।

एकु घरी न यिरें फिरते रहैं, कानन लौं भरि-भूरि प्रभा वैं,
जोवन-भार-भरे असि औ सित, सोहत एऊ अहो कजरा वैं।
“गोकुल” दोऊ सराहिवे जोग, जगै-जग मैं जस मोद-महा वैं,
रावरे-नैन कटाच्छिन तै, बलि सजन राजति चचल तावैं।

माननि की गति हीन भई, छवि कजन सजन की सुख दैंन,
अनूप सुहाव मनोज प्रिसालि, सु तीच्छन धार हैं वान से ऐन।
वरे अति-साँन कहा सरसान, भनै “पजनेस” सु मृगसम तैंन,
लखै नँद-नद परै नहि चैंन, सु राजति भाँवती के अस-नैन।

पोइ कैं कोयन सौ मन-डारि, सु-लाज की वैरिन-बावरी पेली,
रुखा भई अति भूखी ए प्रान की, आन की ऐसी अनोत न लेखी।
“नागर” रूपहि के अभिमान, खरी लड-बावरी यानि विसेखी,
मारै घरीक, घरीक उनारै, ए आँखैं अनौर्या तिहारिऐं देखीं।

देसति नाँहिन ठौर-कुठौर रहैं जित ही तित चाह-चके हैं,
और घरी पता औरहि दीसतु, भूमति आरस मैं प्रियके हैं।
लाज तजैं, सिथलाई गहैं, अपने वस नाहि सु यौ वहके हैं,
देति कहैं जिय की सब-बात, विलोचन ए छवि-झाक छके हैं।

आलस के रस में प्रियके, रँग-लाल के रग-सुरग भए हैं,
देति कहैं चित के हित की, चुगली ठिक-ठैनि एई ठए हैं।
निदति हैं अरिबिंद-प्रभा, अनुराग-पराग में पागि गाए हैं,
हौंहि न ए तिन के सजनी । दग आजु अपूरव-ओप छए हैं।

कजन की अरु खजन की, मृग, मीननि की छवि छोनि लई हैं,
 नौखीनुकीली कटाच्छ-भरी, महा-अजन की द्युति न्यारी नई हैं ।
 हैं 'द्विज बैनी' त्रिसाल मनोहर, मैन के वान सी मौज-भई हैं,
 तोहि दर्ई हैं निरखिवे कौ वलि, मारिवे कौ तौ दर्ई न दर्ई हैं ।



अनन चढ सौ, सजन से दृग, हैं हरि के रिपु के रस-द्याते,
 प्रेम अमी, अनुराग-रंगे पै भगो रस-सिन्धु में मानौ चुचाते ।
 जुव अजन रँजन हैं मन के "व्रजचन्द" भनै वन मूम-मुमाते,
 मानौ कलानिधि पै विवि-रुज, द्विरेफल से तिन पै मद-माते ।



लीन रहै नित रूप-पयोनिधि, मीन कहै कवि बुद्धि विचारी,
 दीन अधीन रहै नित ही, विनु देखै न "तोष" लहै सु सदारी ।
 वानि परी पिय पेरनि की, कुलि-कान बिसार दर्ई इन सारी,
 लागि जो जाहि तौ कीजै कहा, सखि ? ए अरिख्यौ रिभनारिहमारी ।



अजनु अग अछै कछनी, सिखए नय-जोवन नाइक हैं,
 साँदति फूले तिसाँक गहे करवाल कटाच्छ सहाइक हैं ।
 ओट कौ ढाल करी पलकै, ललकै अति जौम सौ लाइक हैं,
 विप-लोचन चोट वचावति हैं, तिय-मैन कि मैन के पाइक हैं ।



राति-रची रति-र ग पिया-सँग, अग लसै अति ही अलसानों,
 सोहति अनन यौ स्रम-विन्दु, ज्यौ इन्दु अमी-रुन सौ सर-सानों ।
 "लाल" कहुक खुली-अरिख्यौन में, तारेन की छवि कैसै बसानों,
 साँक समै के समीप सरोज के माँक रहे थिर है अलि मानों ।

वाँके विचित्र बने धरि अजन, गजन मीन, महा मृग नाके,
जोट वरौनिन की करि कोटि, सररे वरु बोट चुटैल' चलाके।
ए "छितिपालक" जे पूतरी सूथरी, उपमा करि केँ विधि याके,
नैन-सिपाहिन नै सिर पै मनौ टोप दिए मनि-मेचक ताके।



वेधन हार जहाँ जितने, तितने सब घासन हार त्रिसाप,
काम-कमान चलै पर वानन, नहिँ "छितिपाल" समान गँवाए।
रच्छन हार नहीं जग में, जनमे सब दच्छ सु स्वच्छ उपाए,
चूकति लच्छन गच्छति आपु, कहाँ किनि अच्छन अच्छ सिराए।



आजु अटा चढि आई घटान में, विज्जु-घटा सी बधू बनि कोऊ,
"देब" तिया कवि देबन केती, पै एते विलास हुलास न ओऊ।
पूरब-मुन्ननि तै बड़-भाग विरच रच्यौ रचना जन-सोऊ,
जाहि लखै लहु अजन दै, दुरत-भजन ए दृग-रजन दोऊ।



पूस-निसा में सु बारुनी लै, बनि बैठे दुहूँ के दुहूँ मतवाले,
त्यों "पदमाकर" भूमै भूमै घन-धूमि रचै रस-रग रसाले।
सीत कौ जीत अभीत भये, सु गनै न सखी ? कछु साल-दुसाले,
आकि छकी छवि ही की पिएँ मद, नैननि के किए प्रेम सु प्याले।



अग पराए भए सब हीं, अब तौ न बनेँ उन सौ मुख-भोड़े,
कैसेहुँ मान, मैं ठान्यौ हिएँ, दहै सामुहँ होति न रचहु ओड़े।
चेत अचेत रहै न कछु, "रसिकेस" कोऊ निज घान न छोड़े,
हो कसिकेँ रिधि के करौ नैन, दुहूँ निसरे हँसि देति निगोड़े।

ज्यो वित होति घनी दिग ल्यौ, अति ही जिय लालच लागत हैं,
 "रसिकेस" उमग बढै रति ज्यौ तहँ दूनौ-अनग सु जागत हैं।
 नख तँ मिरा रूप भरे हैं खरे, बहुरो मुसिकानि कौ माँगत हैं,
 लरि लोचन-लालची ऐ अजहँ, ललचौही सुधान न त्यागत हैं।

जय ही जय वौ सुधि कीजतु है, तज ही सज ही सुधि जाति सही,
 रति और भई, मति और भई, सब ही अँग और हि वानि गही।
 इहि रीति अनीति नई ही छई, निरखै ही वनेँ सो परै न कही,
 "रसिकेस" लगी रहै आँखिन आँख, सु आँख जु लागति रच नहीं।

निधिहँ सौ जुवारिक पूछिये तौ, अति ही वृन सौ सिर राखि विसेखी,
 लोक तिहँ पिच हेरी चहँ, नर-नारि अनूप अपार अलेखी।
 यह रस-रीति नई छवि है, कबहँ कितहँ न सुखी वह पेखी,
 सौची कहौ "रसिकेस" अजौ तुम, आँखिन आँखि कहँ अस देखी।

कन, गुलाल के पुजन सौ, अलि गु जन सौ तरु ताल लतारी,
 प्रेम भरो ब्रज की वनितान की, तान को, गान की, मान की, गारी।
 तेरे लिएँ तकि ताकि रहे तकि, हेति किएँ बल-गौर बिहारी,
 ऐ बड़े नैन दिखाइ है नैकु, तू ए घर-वालिन घूँघटवारी।

वसी बजावति आँन कढे, वनिता घनी देखनि मैं अनुरागी,
 हौहू अभाग-भरी डगरी, मग री गिरे चौक सनै डरि-भागी।
 लागै कलक न "भेजक" सौ, इन्हँ फोरिहँ सौति सुभाव लै जागी,
 हाइ हमारी जरी-आँखियाँ, त्रिप-वान है मौहन के उर लागी।

कौन धँ सीखी रही भई है, इन नैन-अनैसिए नेह की नाथनि,
प्यारे सौं पुननि भेट-भई, यह लोक की लाज वर्डी-अपराधनि।
ओट किएँ रहते न वनेँ, कहते न वनेँ विरहानल-दाधनि,
स्याम-मुधा-निधि आँनन कौं, मरिए सखि ? सूधि चितौन की साधनि।



रोप रन्यौ तिय दोष तिहारेई, प्यारे करौ रस-राखि परेतौ,
पाँइन हूँ परि प्यारी मनाइए, प्रीति की रीति है षरु निसेलौ।
नैकु तिहारे-निहारे निना, कलपै जिय क्यौ पल धीरज लेलौ,
नीरज-नैनी के नीर भरे किन, नीरद से दृग-नीरज देखौ।



धरिद बारि सही “रघुनाथ” कहैँ जिन चारु किए दृग-भोर हैं,
ईछन कज सही सुथरे, जिन लोचन-भौर किए वर नीर हैं,
बोलन जो सो मही मुकता, जिन आँसिन कौ किए हस-किसोर हैं,
प्यारी कौ आनन, इन्दु मही, जेहि कान्हे गुनिन्द के नैन-चकौर हैं,



पीर हए की हिए में पिराइ, लखाइ न रचहु जानैँ न कोऊ,
हाइ निहाइ सुहाइ न औरु, उपाइ-रुगेर तैं जाइ न सोऊ।
हैं तौ कहैँ “रसिकेस” अली, ? यह काहू कौ भूलि मिथा जनि होऊ,
लोचन-वाननि कौ निप एसौ लगैँ इरु, घाइल होति हैं दोऊ।



लेति लपेटि नवेलिन कौ मनु, नैकु निगाह कीएँ विरछी सी,
देति नहीं चित-चाइ कनौ तरसावति, रात दिना भरछी सी।
ल्यौ निसि-शौस करेजन में फिरै, काम कटा-छन की करछी सी,
सैन नहीं पुनि मैन नहीं, इहि आँसिन आँनि धमें मरछी-सी।

कहि कैं रस की बतियों लहिकैं-रति के सुर कौ मन-रंजन सौ ,
 विपरीत मचाइ रही बहु-भाँति, सु चाइ रही लागि पजन सौ ।
 "मनित्रेव" कहैं इमि बैनी कौ छोरि, लुरैं लागि नैन के अजन सौ ,
 लरि आइ अली ? अनुराग रली, मनी खेलति नागिनी रजन सौ ।



रेखु कछुकै रली अजन की, कछु कजन की अरुनाई रही भवै ,
 आलस लाजि पगे "रघुनाथ" कछु-कछु चचलता कौ रहे छवै ।
 एमे लखे दृग-प्यारी के प्रातहि, भौह समैटि रही उपमा है ,
 बेलि सिंगार की द्वै-दल के तर, खेलति रजन के चिगुला द्वै ।



हौ कित है इत ध्यानि कढी औ कहाँ तै इतै वे कान्हर ऐहैं ,
 है है कहाँ तै अचानकु-भेट, कहाँ तैं लिलाट-लिख्यौ फल पेहैं ।
 और सौ और भई गति मेरी, दई वे किसोर कहा करि दैहैं ,
 हौ कहा जानौ हमारेई भाग नी, लाग-लगीं अरिख्यौं लागि जैहैं ।



हारि गई मिगरी कहि कैं, हम रागरे की जे हितू सगियाँ हैं ,
 भावन भौन सौ रुसि गयो अज अँनद हूँ कैं जमी पँरियाँ हैं ।
 "गोकुन" माइ में मान करे तैं, भई तिय वारि पिना मरियाँ हैं ,
 दोर प्रिलोकिने कौ पिय के, प्रियि कीनीं मनौ ए बडो-अरियाँ हैं ।



अरी जाकैं लगी न तन में कँकरी, कहा जानैं प्रसूति-प्रिया वँमरी ,
 हिरनी है भूमि में क्यौ न गिरीं, सर सावर सार भई मँमरी ।
 "निप्रि-तोप" तूक्यौ समुहैं भईरी । तत्र-चाहि कटाच्छन की नजरी ,
 यरजोरी प्रिहारी के नैननि सौ, करवोई करैं कहि कैं मँगरी ।

समता-भ्रमता में परी ही रहें, अबलोकित छटा उन-नैननी की,
सरसाव ससी-द्युति सुन्दरता, लहि हैं छवि लाज सरोजन की।
“भुवनेम” तबै विधि ए ते सुरग, कुरग गहें सरि क्यौ इन की,
इन पानिप कौ लै मीन हूँ के गन आस कहें निज-जीवन का।



भूमति है मद सौ भरि कैं, मृग से पुनि चैंकि चहूँ दिसि जौहें,
रज्जन से उडि जाति सबै थल, मीन-सपच्छ मनौ जुग सौहें।
नूतन-कज समान विकास, करैं चर ए सब कौ मन सौहें,
पै उलटौ गुन धारि सदाँ, वनि वान-समान हनैं तन कौहें।



कोऊ मनै न करै इन कौ, हठि ठान मनै अनतैं करि राखैं,
धीर-धरैं न टरैं निसि-द्यौस, अरैं अति ही करि कैं अभिलाखैं।
त्यौँ “बलदेव” लृपा सरसै बहु, ज्यौ हित नारिधि पानिप चाखैं,
जानती पीर जरे-जिय की, जय होती कहूँ अरियाँन कैं आखैं।



घूघट कौ पट ढाल बन्यौ, बरछी की अनी मुलनी मलकावैं,
नौँ गिनती कोऊ जोवन-जोर सौँ, नैन-महावत हूलत आवैं।
ध्यान डिगैं मुनि ग्यानिन के, जय कामिन नैन के वान चलावैं,
घाइल से घुमरैं कितने, पिधना इहि नैन के वान बचावैं ॥



अभिलासन लासन-भँति भरि, वरनीन के रोस सौँ काँपती हें,
“घन-आँनद” जान सुधाधर-भूरति, चाँहन अग सौँ चाँपती हें।
टुक ताइ रही पल-पावडे से, सुचि सौँ रुचि चौपहि आवती हें,
जय तैं तुम आवनि-औधि वदी, तय तैं अरियाँ मग-नौँपती हें।

सासु रिमात, भ्रूँ ननदी, सखि ? तू सिरवै सिर, सीर के बेंना ,
 दै ब्रज-वास चवाव महा, चहुँ-ओर चलै उपहास के बेंना ।
 देखति सुन्दरि साँपरी-भूरति, लोक अलोक की लोक लखेंना ,
 कैसी करौं हटके न रहैं, चलि जाति तऊ लरि लालची-नैना ।



बैन सुधा से, सुधा सी हँसी, बसुधा में सुधा की सटा करती हैं ,
 त्यों "पदमाकर" धारहि-गार, सु बार बगारि लटा-करती हैं ।
 धीर ? बिचारे बटोहिन पै इक-काज ही तौ यौ चटा करती हैं ,
 बिजु-छटासी अटा पै चढी, सुकटाच्छन-घाल कटा करती हैं ।



बह कज सौं कैमल अग गुपाल कौ, सोऊ सनै पुनि जानती हौ ,
 बनि नैकु रुखाई धरें कुम्हलात, इतौऊ नहीं पहिचानती हौ ।
 कभि "ठाकुर" इहि कर जोरि कहौं, इतने पै त्रिनें नहिं मानती हौ ,
 दग-वान औ भौंह रुमान कहौ, अत्र कान लौं कौन पै तानती हौ ।



लाल लखें ते सिरोमनि आपु, लखाइ फिरीं जस जान न पावै ,
 पावैं परे तत्र बाही घरी ?, चित-चोरि चली फिर कौन छुडावै ।
 लागैं फटाच्छ गिरे हरि घाइल, घूमत नैकु सँभार न आवै ,
 ऐसी दर्ई मुरिकें दग-कोरि, ज्यों चोर चपे पै चोट चलावै ।



पख बचल यौं चमकैं तिय के, दग, अचल में न रहैं हट के ,
 पुनि सैननि चित्त चुरावति स्याम कौ घाम के ए टुटिका बटके ।
 अलि लोल-कपोल पै डोलत हैं, ढपना पट-घूघट में सटके ,
 चट यौ पट भेद बतावतु हैं, जिमि भाव चलैं गुटका नटके ।

रैनिजगी, रति-प्रेम-पगी, उर ही सौ लगी, त्रिधि की श्वरेसी,
लाज-लजीली, कटाच्छ कटीली, रसाल रसीली-विमाल विसेखा ।
रजन, मीन, मृगीन लजावति, पीत-सरोज समान के लेसी,
“कान्हर” की सौं तेरी सौं राधिके ?, तेरी सी आँखिन आँखिन देखा ।



ओप-अनूप है आनन की, आँखियाँ विन काजर हू कजरारी,
रैन-दिना विसरें सी रहैं, विसरौ करिये विसरें न विसारा ।
नैननि जो निररौ “नपला” निकसैं उर वेधि अनी अनियारी,
भाभिनि की भर नींद भरी, धरुनीन परें वरुनी भूपकारी ।



द्युति देखति दत्तन की हिय हारत, हीरन के गन दाडिम हैं,
वसुधा त्रिच चारु कुधा की मिठाई, सुधा-धर सौ धर सालिम हैं ।
अनुनैन बनी भृकुटी-कुटिलै, कल-मैन के चाँप सौं आलिम हैं,
जग, जाहिर जोर जनाइये कौ, आँखियाँ जमराज सौं जालिम हैं ।



तन सोहति नील-दुफूल गरैं, अतित्यौ मनि-माल विराजति सुन्दर,
विधि-कुडल कानन वीर जरे, अरु फैलि रहे कच आँनन ऊपर ।
नव-रतन भुजान भरे छत्रि-भुज, परे कल ककन कचन के कर,
त्रिनु अजन रजन, कजन भजन, रजन गजन नैन-मनोहर ।



“नूर” बनी वरुनी वरुनी की, देखति वारुनी सौं चढि आवै,
कैधौ सिली-मुरा हैं अवि तीरे, भरे पल-तून खरे लखि भावै ।
भौहैं धनी धनु हैं ढिंग दोऊ, मानौ धुरधर सैंधि चढावै,
होइ कठोर हजार हियौ तऊ, वेधति में नहिं धार लगावै ।

धान भरै, अमनैक, अमान, गुमान-मृगीन के जीति लए हँ,
 भोज-मनोज भरै जिन के, सु मरोज न रोजन छोर-छए हँ ।
 सालव सात से सौतिन कौं, निनकी चित्त-चाए वियोग हए हँ,
 देखि अपूरन नौखे नए मन-रजन सजन, मान-भए हँ ।

❁

भौह-कमान में दान दिऐं, मन-रजन अजन, लौ पुनि पागै,
 धाइल हा करि द्वारति हँ, मन-मानिक मजु महा लहि आगै ।
 धान फँसाति आपुहि लोग, सँजोग सने दर-भोग अभागै,
 वार लगै, तरवारि लगै, पुनि काहू के काहू सौ नैन न लागै ।

❁

कज किऐं जलपाम रहँ, किऐं आस रहँ रपि की किरनौं की,
 मानन की गिनती है कहा, छन वारि तजै नहीं आस तनौ की ।
 सजन हँ रग औ मृग कानन, "वासी" कहँ हम तौ निज-गौ की,
 तौय के नैननि की समता, नहिं कजन, सजन, मीन, मृगौं की ।

❁

भौह कमान प्रिना जिहितै, छुटि टेढे चलै दुहँ ओर अनेरे,
 नैननि आँन अचूक लगै, हिय बेधति क्योंहू फिरँ नहिं फेरे ।
 और सने अँग व्याकुल है, मरसाति विधा बदलात घनेरे,
 रोनि गहँ सर तै विप में, त्रिपमें सर ईच्छन तीच्छन तेरे ।

❁

रतन सान में डारी मनौ, सरमान सँवारि त्रिरचि अगोटै,
 कौर कोरँ कटान्द किरँ, "तद्धिराम" जऊ धिरी घूषट-ओटै ।
 या गिरिधारन-साँवरे हेरि, रग्यो घरी-चार सौ भू पर लोटै,
 पीरज दौ चरचूर करँ भ्रज, ए आँखियाँ अनीदार की घोटै ।

जबही जत्र वे सुधि कीजतु हैं, तबही सत्रहीं सुधि जाति सही,
गति और भई, मति और भई, सत्र अगै औरहि बान गही।
यह रीति अनीति नई है छई, निरखैही वनै सो पौ न कही,
“रसकेस” लगी रहैं आँसिन आँखि, सु आँसै लागति रच नहीं।



अजन अजित हैं मन रजन, खजन के मद भजन सो हैं,
चाह भरे औ उद्धाह भरे, नव-नेह भरे, सत्र कौ मन मोहैं।
वे ठग, काहि ठगै न भले-अति जाति समान अयान है जोहैं,
को ललिबाइ न लालन के, “रसिकेस” सुनें न लखैं ललचौहैं।



देव कहा औ अदेव कहा, औ कहा नरदेव कहावति सोऊ,
जोगी कहा औ जतां हू कहा, औ ब्रती हू कहा, बन मै वसैं जोऊ।
तीनों-लौकनि में इन सौ “रघुनाथ” रह्यौ बिनु हारैं न कोऊ,
यान सौ मैंन, कटाच्छ भरे नैन, ए जग जैन बिल्यात हैं दोऊ।



लोल अमोल कटाच्छ-कलोल, अलोलिक सौ पट आलिकै करे,
पानिप सौं अति पैने रसाल, बिसाल वने मन-भाँवठे मरे।
“केसन” चीकने चौगुने चोखे, चित्तैकै किए हरि न्याइन चरे,
सोच सँकोचन श्री रति-रोचन, धीरज-मोचन, लोचन तरे।



खजन की अरु मीनन की अरु अबुज की, जिय जीति वसैं ते,
काम के धानन की, मृग की औ दुरेफन की छत्रि देखि हँसैं ते।
ऐसिनि सौ गुनिहैं “रघुनाथ” न मजन अजन-देखि लखैं ते,
धरे बिलोचन यातैं भद्र ? भए तीरे तन्यौननि छ्वै निकसैं ते।

काहू के कजन एजन की, "रघुनाथ" धरें रुचि राम तिहारै ,
 काहू के मीन मृगैनि के गुन, रूप धरें रँग के अलि हारै ।
 जेतिक हैं जग में जुमती, तिनके ढँग को इहि भाँति निहारै ,
 तोच्छन-वानन की धरें-वार, सो ईच्छन ए सुखदानि तिहारै ।



काहू बिहीन बिना गुनि तानि, सरासन-वान चलावै कठोर हैं ,
 कान समीप रहैं निसि-गासर, स्याम-हितू तिनपाँइन दोर हैं ।
 रूप बढ़ी औ बडे धनवारे, कहावति पै बडे चित्त के चोर हैं ,
 बातें करै री । बिना रसना, बृषभाँनु-लली के अली दग ओर हैं ।



कौन रहे ठग-भूरि सो खाइ कै, भूलति कौन त्रिवेक कलै ,
 काहि न वे निसरावैं सबै, सुधि "मौहन" वे केहि की अब लै ।
 होति सयान अयान सबै, चतुराई अनेक न एकु चलै ,
 आली री ? मौहन लाल के लोल त्रिलोचन देखति को न छलै ।



नैननि की बढिवारि लखैं, चित्त-चातुरी की उँमगी अधिकारै ,
 चातुरी की अधिकारै लखी, तन नैननि और गही सरसाई ।
 "कृस्त" कहैं, वर बाघ्यौदुहँन कौ नइते पर धौंस मनोज की पाई ,
 होइहि होइ चली बढ़ मानौ, बिलोचन औ चित्त की चतुराई ।



हनु अहेतु कछु न त्रिचारति, क्योंहु अचेतनि चेत गहैं री ,
 देखति वा मन-मौहन की छवि, क्योंहु लजावि न मेरे कहैं री ।
 हो कसिकें कितनौरिस कौ करौ, ए न खिलै हँसि कै उन हँरी ,
 कैसा करौ इन नैननि कौ, इहि यान-परी डिगहू कै दहैं री ।

खजन ऐसे कहाँ मन-रजन, मीनन लेखौ कहा रस टार सौ
 कजन लाज कौ लेस नहीं, मृग रूपे सने ए सनेह के सार सौ
 मौतिन के यह पानिप जोति न, वारिज वारन जानति मार सौ
 मीत-सुजान सराहति तो दृग, हैं "घन आँनद" र ग अपार सौ



नित लाज भरे, हित टार टरे, निखरे सुखरे सुखदाइक
 "घन आँनद" भूमि कटाच्छन सौ, रस पानि वृपाहि सहाइक
 जिय बेधन कौ अनियारे-महा पै सुधा ही सुधारन साइक
 धिरि घूघट पैठति जानिही ए, निपटे निबरे नट-नाइक



दुहूँ नैन न मानहि नैकु हू सोख, किती समुभाइ कही इन सौ
 दुक हेरति धाइके आइ मिलैं, पुनि क्योंहू न धोर धरैं छिन सौ
 अपनी दिसि तैं हम प्राण औ अग, निछावरि कौने घने दिन सौ
 तन औ मन हारैंहु रुसे रहैं, "रसिकेस" बस्याइ कहा तिन सौ



तुम खजन-नैन चकोर बने तिया ? नाँहक अजन दै मरि हैं
 जकरे गज-मस्त जँजीरन तैं, तिनमै मद-प्याइ कहा करि हैं
 मतवारेन कौ लै देति कमान, लगाइ केँ तीर दिए परि हैं
 ए आम्ही तौ ऐसे कटाच्छ करै पररौ तौ इहै परलैं करि हैं



स्याम-सरोजनि में निरसे, किधौ मजु-मलिन्दन के गन नीके
 कै धिरता गहि केँ जुग-पजन, वास कियो मुद-दाइक ही कै
 कै यह फाँस सी गौसी मनौ, भव-बाँधे अहैं जुग-मीन बली के
 कै मन-रजन कारी सु अजन, रजित हैं अति नैन-नसी के

जिन ही त्रिनु गजन हैं, मद-रजन स्याम, सुफेद दुरग कौ,
 मौ "नृप-सभु" भरे अनुराग, सुराग, गयौ उडि कज सुरग कौ ।
 ति नई में नए दग दौरत, ज्यों रद होति इराक तुरग कौ,
 नन्द में मानौ अनग-दलाल, लगायौ है खासन खास कुरग कौ ।

घूषट ओटनिगोए रहैं सरसी?, राधा केकोए उठैं जिमिडाटि हैं,
 ग्राम के बान से सान धरे, जिन जीत्यौ, जहाँन इन्है ते वे घाटि हैं ।
 तासे हथियार की रीति पगे "नृप सभु" जू डारति म्यान कौ काटि हैं,
 याही तैं जानिए नैन हैं मैन, जो कानन लौ पलकैं रही काटि हैं ।

देखति वा नट नागर की छत्रि, फाँद परे हट कैं न रहों ही,
 लोचन-लोल, तुरी मुँह जोर, सु लाज-लगाम कौ मॉनति नाँही ।
 रूचति हौ अपने इतकौ, वलि ए वल कैं उतही चलि जाही,
 कैसी करौ नहिं मो वस ए, कुल कौनि के चाबुक तैं न डराहीं ।

रजन, मीन सौँ बैर कियौ, जल देखति ही मृग दूरि सौँ भागैं,
 गोरे करारे भरे रस में, उन लोइन-लाल सदाँ रस-पागैं ।
 कै जुग खून करैगे घनों, वह जो कवहूँ रति में निसि जागैं,
 काजर काहे कौँ देति अली? तेरे सादे जो नैन कटार से लागैं ।

केऊ निहार सुमार भई, लागि नैन-प्रहार दिए सुधि-मोचन,
 केऊ दिए लागि डोरी रही, केऊ वौरी है ता घर की पर-सोचन ।
 केऊ भई मन नैन मई, तजि लाज दर्ई, तऊ रच सकोचन,
 मोह-रतरे दिए उर भेरे, सु "नागर" तेरे अनौसे ए लोचन ।

चरफें छवि-साँवरी निहारेविना, जु छुटी जल ज्यों थल में कसियाँ,
पल चैन न देति खरी-खररी औ कछु मृदु-हास चखी बखियाँ,
अग्वीली, अनोखी, उचाट-भरी, अरी "नागर" नाहिं रहैं रखियाँ,
दुख-चाइन सौं अररानी परै, अति वैरनि वावरी ए अँखियाँ।



राजति रानी-जसोमति पै, दुलही पिय-बैल छिलै हित नोटै,
कैसे निसक निहारै छकैं छवि, बीच परी कुन-कौनि को पोटे,
लाज-मुके दग नागरि के, तिरछै चलि चुरै (रुरै) दुकुन की ओटे,
दोऊ में होति न कोऊ लखै, बे सनेह सौं भीजी चितौन की चोटे।



सीसे कुलच्छिन है लड-जावरे, मैं समुझाइ मके भिम्कारे,
मूँद दए पल-बीच किञ्चारन, तौऊ रहे न कितौ पचिहारे,
सुन्दरताई कौं जीतति जो पै, सु हारति हैं मन सौं घन भारे,
"नागर" खेले विना न रहैं, भए ए दग रूप जुवारी हमारै।



ए विधना ? यह कीनों कहा, अरे मो-मन प्रेम-उमग भरी क्यों,
प्रेम-उमग भरी तौ भरी हुती, सुन्दर-रूप क्यौं तैं हरी ? क्यों ?
सुन्दर-रूप क्यौं तौ क्यौं, तामैं "नागर" एती अदाएँ धरी क्यों,
जो पै अदाएँ धरी तौ धरी, पै ए अँखियाँ रिम्बारि करी क्यों।



चीठि की लाज-जँजीरनि तोरि, खरे-खररे पकरैंऊ रहँना,
धीर बिना भहराइ उठैं, ठहरैं न कहूँ जक-जीब परँना।
"नागर" रूपहिं रूप लगी रट, नाहिं कछु कहि जाति हैं बैना,
लागै न औपद-नयान फहूँ, भए रीमि की वाइ सौं वावरे-नैना।


घट ओट, किंएँ हूँ रहँ नहिं, हँ उत्पती मो छाती के दाहक,
 याइ किए विधना मुख-कारे, महा-मठ ए हठ के जु निवाहक ।
 धार विचार न जानै कट्ट, अति-आतुर "नागर" रूप के गाहक,
 मेरे ई नैन-निगोड़े बुरे, मन दीनों फँसाइ विचारौ अनाहक ।

ॐ

"नागर" नैन-सरोवर मीन कि पकज की पँखियाँ अनियारी,
 स्याँनैँ मॉटैँ हिरणाँनी वतावियैँ, जूवौ तमैँ सहु सोचि-बिचारी ।
 गोया ममाले या सज्जन सासे, तारीफ करे क्या जुमान हमारी,
 बीजी न मीदँ लागैँ कोई ओपमा, कान्हा जी री आँख्यौँ कामणाँ गारी ।





नैन-निकुंज 

दोहा

दोहा

जाके निररति नैकु ही, रह्यौ न मानिगभान,
मदन-सदन जानी जु मैं, अँखियाँ स्याम-सुजान ।

नैना नैकु न मानहीं, कितौ कहौ समुझाइ,
तन-मन हारै हूँ हँसैं, तिनसौँ कहा बस्याइ ।

जग-जगवौ सुधि कीजिए, तन-तव सब सुधिजाइ,
आँखिन आँखि लगी रहीं, आँसै लागति नाइ ।

प्रेम-रूपा की ताप धुन, कैसेँहुँ कही न जात,
रूप-नीर छिरकति रहैं, तऊ न नैन अघात ।

उरफि स्याम-दृग-अनी सौँ, टसकति ना टुक भौन,
अली बदौलत नैन के, कियौ हियौ पिय-भौन ।

का कहिए इन नैन कौँ, जब तैं भयौ दु-चार,
नीर-धीर ना रुक सकै, चलनी-हियौ-हमार ।

वसैं भवन-तन ए दोऊ, नैना किधौँ कजाक,
धीर, धरम, प्रह, मन सहित, खोएँ देति चलाक ।

कैसे-कैसे हितू ए, नैन हमारे वाम,
धीर, धरम, प्रह, सपदा, दै-राते रँग-स्याम ।



तला-भली परजाति चट, निरखति स्याम त्रिकाष्ठ,
हमें न नैकौ रहौ इन-नैननि कौ त्रिष-वास ।



तन, मन बेधक हैं घनी, रहहिं तनी अति पैन,
नहिं तरुनी चरुनी-घनी, वनी अनी-सर-भेन ।



सजनी ? निपट-अचेत हैं, दगा-दगी समुभेन,
चित, त्रित, पर-कर देति हैं, लगा-लगी करि नैन ।



निधरक छवि-छाकै छकै, चराहिं न अरु निचलैन,
ए लोचन अति लालची, वरजै हूँ मानै-न ।



भोरहि उठि आए ललन । कल न परी निधि सैन,
मेरे अनुरागनि-रँगै, तरुन-अरुन ए नैन ।



गहि चरुनी-चरछी वनी, अरु कटाच्छ-तरवारि,
नैन-चीर लै भीर धँसि, धीर-अमीर हि मारि ।



लागे नैना नैन में, कियौ कहा धौं में,
नहि लागे नैना रहै, लागे नैना-नैन ।

कजरारो-छवि पेरि कै, मुरछि परे ब्रजराज ,
कहि कौनै लौने-नयनि, टौने कौन्हें-आज ।

❀

ऐसैं हों बेषक बने, ए अनियारे-नैन ,
फिरि अरुनारे करि कहा, हो बेषैं हरि चैन ।

❀

पिधि इन अनियारे-नयन, कत प्रिचे सुनि थाल । ,
जिन तैं हेरि किए अरो ?, हरि-हो बेषि त्रिहाल ।

❀

दृगन खुभी खूठी-खुभी, निमराई निसरैंन ,
चल चल चितवनि-चित-खुभी, विमराई निसरैंन ।

❀

सजन, कज नसर लहैं, बलि अलि कौ न बखान ,
ए नांकी अँरियॉनि तैं, ए नांकी अँरियॉन ।

❀

दूपहर भए कहर करि, जहर तगाए नैन ,
मन-रजन न जगे अजौं, अय-तकि अजन-दैन ।

❀

हेरति हें सो तैं चकित, हेरति पावति नाहि ,
चोर लियौ-चित-चोर चित, एकहि चित-मन माहि ।

❀

धोर मडति मन-द्वन नहीं, कडवि बदन तैं बैन ,
सुरत सुरत की सुरत कै, जुरत सुरत हँमि-नैन ।

वरु वरछी, कैरर लगै, खरग लगै सर पैँन,
कारो लगै कटारि हूँ, सखि पै लगैँ न नैन ।



थाके खजन, भृग, मृग, मरि लखि वॉके पैँन,
वा ललना के लसति हैं, चपल-चलाके-नैन ।



मैं न लखी ऐसी दसा, जैसी कीर्नी मैंन,
तव तैं लागैँ नैन नहिं, जब तैं लागेँ-नैन ।



मारि छलाक रहे अहि, पारि रहे हैं चैन,
ए न नैन हैं रावरे !, लसत मैंन के सैन ।



ऐसे चचल जगत-गत, देखे सोधि न कोइ,
मनुत्रिधि काढे दृग-तुरंग, सुधनि-पयोधिलोइ ।



इतै चितै तू कत खरी, नँहदी मँहदी नाहिं,
वे लोयन-कोयन अरी ! प्रति-विम्बित दरसाहिं ।



चलाहु सिंगार कहा करौ, सहज हरौ मन-मैन,
ऐमै हॉ नीके लगै, त्रिनु काजर के नैन ।



भए कठिन ए ठग नए, नय न, नयन के राज,
रूप-उदधि मैं लागि कै, मारत लाज-जहाज ।

जीते चारु-चकोर रुचि, सुचि मनसिज-सर-पेंन ,
थारे अनियारे लसैं, रतनारे ए नैन ।



केनौ हों घरजति रही, निचले नैकु रहैं न ,
हरि-तन-पानिप पी अरी ? भले पियासे-नैन ।



निकल परी बरि रहि खरी ।, अरी जगावति काहि ,
नजर नजर यह स्याम की, नजर करी अब याहि ।



मान मुधा तजि वाल बलि, बोलि खोलि मुख ऐन ,
अधर-मुधा-लालच-भरे, लाल ? लालची-नैन ।



ए चोखे कोयन लगैं, कोय न मनसिज-भान ,
ए लोयन लगि नहि लगैं, लोयन-लोयन आन ।



आज अहेरी-नैन ए, भए अहेरी धीर ? ,
हरि-मन करमाइल किए, घाइल चितमनि-तीर ।



लोक-लाज, कुन, धरम, धन, अरु चाहैं सुख-चैन ,
सपनै हूँ मति कीजियो, भूलि भरोसौ-नैन ।



दकी, बकी, डोलौ चकी, स्याम मिलन चित-चाइ ,
यह गति कीनी नैन नै , धीरहि-धूरि उड़ाइ ।

मान, बडाई, धरम, धन, जो चाहौं कुल कानि,
मूँदि सात-पट राखियो, रस-लपट नै नानि ।



✓ आपु छके, नै ना-छके, और छके सब गात,
जा तन चितवति नै न-भरि, रौंम-रौंम छकि जात ।



डीठ-डोर औ मन कलस, काम-कूजा में डारि,
ए नैना तुव नागरो ।, भरति प्रेम-रस-वारि ।



तन-ताजी, अरु धार-मन, नैन पियादे साथ,
जोवन चलौ सिफार कौं, विरह-राज लै हाथ ।



✓ मन-मौहन के नैन-वर, वरनि कौन निधि जाहि,
मीन, कज, मृग, मैन-सर, रजज हूँ सम नाहि ।



जदुपति के नै नानि हित, निधि है निरचे मैन,
मीन, कज, रजज मृगहुँ, समता नैकु लहैन ।



✓ यह बूमनि कै नै न ए, लगि-लगि कानन जात,
बाहू के मुख तुम सुनी । पिय आवन की बात ।



✓ प्रेम-नगर में दृग-धया । नौरि प्रगटे आइ,
द्वै-मन की करि एक मन, भाव देति ठहराइ ।

रूप-नगर वसि मदन-नृप, दृग-जासूस रागाइ,
नेहिन मन कौ भेद उन, लीनों तुरत मँगाइ ।



सुन्दर, जोवन-रूप जो, वसुधा में न समाइ,
दृग-तारेनि तिल विच तिन्हें, नेही । धरति लुकाइ ।



जिहि मग दौरत निरदर्ई, तेरे नैन-कजाक,
तिहि मग फिरति सनेहिया, किएँ गरेवाँ-चाक ।



मुकत भए घर सोइ कै, कौनन बैठे जाइ,
घर सोजति अब और कौ, कीजै कौन उपाइ ।



यौ तिय-नैननि लाज ज्यौ, लमति काम के भाइ,
मित्यौ मलिल में नेह ज्यौ, ऊपर ही दरसाइ ।



मुख-ससि निरखि चकोर अरु तन-पानिप लखि मीन,
पद-पकज देखति भँवर, हौति नैन-रस-लीन ।



कजरारे-दृग की घटा, जब उनै वहि ओर,
धरसि सिरावें पुहुमि-उर, रूप-मलान-भक्तोर ।



रिस-रस, दधि-सखर जहाँ, मधु मधुरी-मुसिकान,
धूत-सनेह, छवि-पय करै, दृग पचामृत-पान ।

फोरत बाने-ढाल कौ, तनक लगाए-मैन,
अचरज का भेदें जु मन, मैन-भरे सर-नैन ।

❀

~हीरा विनु हीरा कनी, कहूँ न वेधी जाइ ।
मन-हीरा, तुव दग-कमल, सहजै वेधति आइ ।

❀

इन में है दरसात है, हरि-भूरति की लोइ,
या तैं लोयन कहति हैं, इन सौ मिलि सत्र कोइ ।

❀

लौ इनकी लागी रहै, निच मन-मौहन्-रूप,
यातैं इन "रस-निधि" लह्यौ, लोयन नाम अनूप ।

❀

निधि-वासर लोचति रहति, अपनहुँ मन अभिराम,
यातैं पायौ "रसिक-निधि" इननै लोचन-नाम ।

❀

जो कुछ उपजत आइ उर, सोने थोरै देति,
"रस निधि" थोरै नाम इन, पायौ अरथ मनेति ।

❀

और रसन लै जानि हीं, रमना हूँ अभिराम,
चारति सो ए रूप-रम, यातैं हूँ परम-नाम ।

❀

"रदिमा" मा-महराज के, दग से नाहिं दिया,
जाहि देगि रीझें गया, मा विधि दाय पिछा ।

घरुनी-वान सम्हारि कै, भौह-धनुक त्रिच तान ,
 लगति सूर घाइल गिरै, भरे गरुर-महान ।



पिय मन वैठन के पटा, पलक-जयती-काम ,
 किधौ ताहि के रतन हैं, सपुट-हेम-ललाम ।



कारे-कजरारे अमल, पानिप-ठारे ऐन ,
 मतवारे, प्यारे, चपल, तुन दुरवारे नैन ।



दग-दारा तकि ज्यौ लह्यौ, दीपक जातक भाइ ,
 जग के घातक पाइ कै, लागत पातक धाइ ।



अनियारी अँखियाँन में, सोहत काजर-रेखु ,
 मनहुँ काम-वन आनि कै, गढी नुकीली-मेखु ।



कोये कागज, रिमल त्रिधु, गोलक अक्षर, अक ,
 तन-भनसरबस, अजन, जन, रति-सर-मीननिसक ।



रूप-सरोवर माहिं तुन, फूले नैन-सरोज ,
 ता हित अलि-नेही तहाँ, आवत दौरे रोज ।



लालरूप के अमृत-फल, दग-द्रम लागति आइ ,
 याही तै त्रिधिनै दर्द, घरुनी-वार घनाइ

पीवति हू न अधात हँ, छत्रि-रस प्यासे-नैन,
पल-त्रोंके वार्धे रहँ, नाहीं नैकु बहँन ।

❀

घालै नैन-कटारियों, जेते सरस सु पान,
कसकति ए उर में रहँ, कहति वनै न जुवान ।

❀

रूप-त्रधिक दृग कर मलहिं, रोपै लै छत्रि-जाल,
नेही रजजन-नैन ए, त्रिधए हेरति हाल ।

❀

पहराए नृप-रूप तुव, जब तै नैन दिवान,
तब तैं लै नेहीन के, मन-धन लगे कपान ।

❀

✓रूप-नगर में बसत हँ, नगर-सेठ तुम नैन,
मन-जामिन लै नेहियन, लगे पूँजि-छत्रि देंन ।

❀

रे तवीब ? यह वात तैं, अपने ग्रन्थन हेरु,
दृग-गाँसी जिहि उरगर्दी, सो कहँ निकसति फेरु ।

❀

हेरत ही जाके छके, पलहू उभकि सकँन,
मन-गाहिनेँ धरि मीत पै, छत्रि-मद पीवति नैन ।

❀

✓अदभुत-रचना विधि रची, यामें नाहिं विवाद ।
बिना जीभ के लेति दृग, अजब-सलीनै स्वाद ।

धुमती जो नहिं दृग-अनी, त्रिभुवन-पति उर आइ,
देतो जानक रचिर वह, क्यौ प्रज-वालनि-पाँइ ।

❀

जिन नैननि कौ है सही, मौहन-रूप अहार,
तिन कौ वैद बताव हीं, लघन कौ उपचार ।

❀

नैन-वान जिहि उर छिदैं, कसकति लेति न साँस,
मीतहि उननी है दवा, मिलै न वैदहि पास ।

❀

कसक बनी तव तै रहै, बँधति न उर रोट,
दृग-अनियारे की लगी, जव तै हिय में चोट ।

❀

तव तै पल-कर और तन, पलक पसारत हैं न,
जव तै छवि-धन मीत दै, किए अजाची-नैन ।

❀

प्रीति-पान नव-रस-कथा, चूर्नों-नेह लगाइ,
पीतम-मुख दृग-दीठि करि, वीरा देति रनाइ ।

❀

हरै सु छवि-चन चरति ए, मन-मृग रूप-रुद्धार,
सिंह-रूप तुम दृग लरौं, गिरति सु खाइ पद्धार ।

❀

बधिक-कसाइन तै बचौ ए घे-दरदी ऐन,
विधि भरि दीनीं तैसि ही, विच-महबूना-नैन ।

चिबुक-कूप मधि डोल-विल, डारि अलक की डोर,
दग-भिस्ती कर कर-पलक, छवि-जल भरति झरो।



मिलि बिसत्रास बढाइ कै, चित-नित लेति चुराइ,
राखत नैन-कजाक तुव, छवि उन माँहि दुराई।



असनेहिन हित-नगर मैं, सकत न कोऊ खूट,
चतुर-जगाती लाल-दग ? लेति सनेहिन लूट।



राख्यौ है मन लाज के, दग-द्वारैं दरवान,
निना नेह परवानगी, सुचित न पावै जान।



पीवति-पीवति रूप-रस, बढति रहै हित-प्यास,
दर्ई नई नेही दगनि, अजब-अनोखी आम।



सुरस-चशम महबूब के, सजर किए सँवार,
निकरैं लोहू सौ रँगै, आशिक-पजर पार।



इश्क-सेत सौ नहिं टलै, आवै वे बिसवास,
चरम चरम सौ सिर लड़े, घड़ बोलै साबास।



मारैं फिरि-फिरि मारिऐ, चरम-तीर से खूय,
किऐं अदालत जुलम फी, वैठा वह महबूब।

घाहीं तै जानी गई, नैना मेरे हैं,
आपु रीझि मन कौ लगे, बे-दरदिन कौ दैन ।



चितै करत औचक चितै, ए माँचेहु बे-चैन,
चंचल, चोखे-चरण कौ, अजब निहारी सैन ।



करत काम निज-नाम सम, प्यारी । तेरे-नैन,
कहैं सत्रै सुरा ऐन पै, हमें लगे दुरा-दैन ।



तो छत्रि-बदन अनूप लखि, पलकै करै सलाम,
कारे तिल कौ खाइ कै लोचन भए गुलाम ।



किए लाल जब तै ललकि बाल-नैन निज ऐन,
बरुनी ओट उसीर की, तन तै सींचत मैंन ।




छाके नेह निरास की तव लौ प्यास न जाइ,
जब लौ दियौ अघाइ, नहि दृग-सर-पानिप पाइ ।



नम, जल, थल नैना करति, निसि दिन रहैं अहेर,
खज, मीन मृग कहन के, वाज, ग्राह अरु सेर ।



✓ बरुनी के नौके बने, हैं पिजरे कतादार,
फँसत खजन-नैन औ फँसत नैन रिम्तवार ।

नैन-निकुज 

सोरठा

सोरठा



मेरे नैननि जाइ, मिलि हरि कीनी मिलहरी,
मन धन दियो बटाइ, "रस निधि" मौहन-चोर कौ ।



होइ कौन तन धीर, कहि धौं तू मोसों यहै,
नैन अन्यारे-तीर, जाँ घालैं या जिहि लगै ।



रूप-नगर में नैन, निसि दिन फेरी देति हैं,
मौहन मूरत-मैन, दरसन भिच्छा के लिएँ ।



जोती डोरे-लाल, पलकन के करिकै पला,
तारे वॉट विसाल, जोसति हरि-दृग रूप-धन ।



रहते कौन अधार, दुसह-दुरग पिय-विरह भौ,
करि न राखते त्यार, ध्यान-जखीरा नैन जो ।



फेरी दै-दै जाँइ, दरसन-भिच्छा के लिएँ,
नैन वियोगी आँइ, जोगी तै का घट भए ।




चाँहति भौति-अनेक, मौहन-मुख कौ दरसिबौ,
त्रिधि चूम्यौ त्रिधि एक, रौम-रौम दृग ना रचे ।

सरल-सजाकी नारि, मजा कन्धौ जो आजु लखि,
करी कजाकी मारि, चखत चलाकी सौँ अरी ? ।

❀

चैन ऐन घनस्याम, वैन कहति हें सैन सौँ,
नैन-जैन जग घाम, घने पैन सर मैन के ।



नैन-निकुंज 

कुंडलिया

कुराडलिया

✓ नैन-सलौने रस भरे, छिपे पलक की ओट ,
 बॉननहूँ तै सरस अति, करै चोट पै चोट ।
 करै चोट पै चोट, खोट, इहि सम नहि तल में ,
 घेरि बटोही घेघि, करति घाइल इक-पल में ।
 रहै निकल नित चित्त, नही मुख आयै बैननि ।
 सैननि हौं हरि लैइ, जोब ए रसिया-नैननि ।



सगत-दोष लगै सत्रै, कहे जु साँचे-नैन ,
 कुटिल-वक-भ्रू सग तै, भए कुटल-नाति नैन ।
 भए कुटिल-नाति नैन, कुटलाई पिय सौ ठानति ,
 सूषे जिय अरि रहति, कान, सिख नैकु न मानति ।
 उरकि परति "हरिचन्द" सैन सजि वरुनिन पगति ।
 घाइल वाकौ करति, खरे विगरे लहि सगति ।



दृगन लगत घेघत हियौ, निकल करति अँगभ्रान ,
 ए तेरे सब तै विषम, ईच्छन-तीच्छन-भ्रान ।
 इच्छन-तीच्छन भ्रान, आजु अति अचरज पारै ,
 मिलति करैजै घाव करै, विछुरै जिय-मारै ।
 काढै औरहु धँसति, बढति उपचार निरखि ढिंग ,
 जेहि लागति तेहि लगन देति नहि, लगन लाय दृग ।

भूठे जानि न समहैं, मनु मुँह निरुसे बँनु,
 याही तै मानौ किए, वातन कौ विधि नँनु।
 वातन कौ विधि नँन, किये सत्रविधि विधि जानी,
 निनु वोलैंहूँ जासु, मधुर-बोलन रस-सानी।
 हाव-भात्र "हरिचन्द", छिपे रस-भरे अनूठे,
 कहैं देति जिय-वात, करति मुख के छल मूठे।




साइक सम साइक नयन, रँगे त्रिविध-रँग गात,
 मखौ धिलरि दुरि जाति जल, लरि जलजात लजात।
 लरि जलजात लजात, हिरन बन बसति निरतर,
 रजनि निज मद-गजन करि, निरसति तन्वर पर।
 सो मोहति "हरिचन्द" जान त्रिभुवन के नाइक,
 बुके त्रिबैनी-नीर, जीय-घाइक-दृग साइक।



वर जीते सर-मैन के, ऐसे देखे मैन,
 हरिनी के नैनानि तैं, ऐ हरि नीके नैन।
 हरि नीके ऐ नैन, अनीके दा वरनी के,
 फीके कमलन करन, भाँवते जीके-जीके।
 हीके हरि "हरिचन्द" रग चीते, पिय पीते,
 नीते माँनति नाहिं, चपल-चीते वरजीते।



नैन-निकुंज 

बरबे

वरवै

बड़े-नयन कुटि-भृकुटी, भाल-मिसाल,
तुलसी मोहत मनहि मनोहर-बाल ।



तुलसी बक विलोकनि, मृदु-मुमिकानि,
कस प्रभु-नैन, कमलि से कहौ बरपानि ।



बिरह-आगि उर ऊपर, जब अधिकाइ,
ए अरिषियाँ दोऊ वैरिनि, दैइ बुझाइ ।



अहिरी मनकी गहिरी, उतरु न देइ,
नैना करै मथनियाँ, मन मथि लेइ ।



चित, चितवनि कौं दीन्यौं, त्रिनु-तकरार,
सहितो कौन तगादौ, बारबार ।



बड़े-चीकने कारे, सित, रतनार,
घचल, चतुर, नुकीले, नैना दार ।



तारे तुपक, दीठि ही गोली साज,
दिय बेमै न चुकति घख-धरकदाज ।

उलट पलट अध ऊरध, सनमुख जेत,
दीठि-पटान कटाकर, नैन पटैत ।



ए मतवारे नैना, मतवारेन,
करत लखत मतवारे, मति हरि लेन ।



छके छाक छत्रि-मद के, ईछनदार,
छैलन छलत, छकावत, छल-सरदार ।



सुर, सुधि, रँग, गुन, बल, धृति, मन, बुधि, चेत,
चतुर-चोर-चर लखतहिं, सब हरि लेत ।



अरुन, सेत, कारे, रज, सत, तम ऐन,
उतपति, पालन, लै के, करता नैन ।



एकु गुनात्मक गुन को गुनि कवि मौन,
त्रिगुनात्मक तुव नैनहिं, वरनै कौन ।



लग्न चचलता चर की, मृग अरु मीन,
भजि, लजि, फानन, जल कौं सेवन कीन ।



कियौ खून अनु लाली, विषधर मान,
सजर नौक नयन के, भेदन प्राण ।

वकत, जकत, असकत है, दिन अरु रैन ,
उर धक धकत चकत जेहि तवत सु नैन ।

❀

ढारी दीठि बाहि पै जब तै ईठि ,
नीठि-नीठि उठि वैठति, गई गडि दीठि ।

❀

जाहि तीरीछैं चितई नागरि-नारि ,
लग्यौ तासु मन पीछै सब-सुख टारि ।

❀

करि कटाच्छ कर चट-पट घूघट ओट ,
लोट-पोट करि कै गई, टै दुख-मोट ।

❀

प्यारी नैन-पतुरिया, सोभा खान ,
मानस नील-नलिन के अली समान ।

❀

चिक-वरुनी, पल-परदा, गृह सित-नैन ,
भरकत-आसन सोहत, पुतरी-मैन ।

❀

लखि तारे कारे दृग, कवि-चित चेत ,
अलि इदीघर-दल पै, बसि रस लेत ।

❀

घर-चचल बिच पुतरी, सोहति स्याम ,
मनुहुँ मीन-बाहन पै राजत काम ।



नैन-निकुंज —

शेर

शेर

मुक्त को हुआ है मालुम, ए मस्ते-जाम-रूनी ?,
तुक्त अँखियों के देखे, आलम सराब होगा ।

☪
✓ नैन से नैन मिलाय गया,
दिल-अन्दर मेरे समाय गया ।

☪
निगाहे-गर्म से मेरे दिल में,
खुश-नैन आग सी लगाय गया ।

☪
हर एक निगाह मे हम से, करने लगेहो नोंके ,
कुछ यूँ तेरी आँखों ने, पकड़ा है तौर त्रोंका ।

☪
मिजगों तो तेज तर हैं व लेकिन जिगर कहीं ,
तरफ़श तो हैं भरे वै निशाने किधर गये ।

☪
गोंठ काटी है मेरे दिल की, तेरी आँखों ने ,
दो पलक नहीं, ए फतरनी है मगर चोरों की ।

☪
चिलपें सूरज मर्नी जूँ, रक्ते शुआ के शोले ,
देख अँखियों मर्नी, यह लाल-ग़मक डोरों की ।

जादू हैं तेरे नैन गजालो से कहूँगा,
तुम लव की सिकत लाल-बदख्शाँ से कहूँगा ।



आगोश में भवों की, करती है कत्ल-अँखियों,
कोई पृछता नहीं है, मसजिद में कत्ल होये ।



निगवों चाहिये, सरशार के पास,
तेगी आँसों से क्योकर दिल जुदा हो ।



हुए एक आन मे, ज़रमी-हजारों,
जिधर उस यार ने, तीरछी-नजर की ।



दो-चार अब तुम से क्योकर, होये हम-चश्मी के दावे से,
कि नरगिस की चमन मे देख कर गरदन ढलकती है ।



✓ जब से तुम्हारी आँसूँ, आलम को भाइयों हैं,
तब मे जहाँ में तुमने, धूमें मचाइयों हैं ।



दिसाई चश्म-भस्त अपनी, जब उस रिन्दे-शरानीने,
न दम मारा कटोरे ने, न हिचकी ली गुलानी ने ।



इतना बफ़ूर रुश नहीं, आता है अश्क का,
आलम को मत डुबोइयो ए चश्म-तर फहीं ।

अलम से यों तलक रोई कि आखिर होगया रुसवा,
डुवाया हाथ आँसो ने, मजह का खान्दाँ अपना ।



रुसवा अगर न करना था, आलम ने यूं मुझे,
ऐसी निगाहे-नाज से, देखा था क्यूं मुझे ।



मिमार हैं जमी से, उठती नहीं असा-बिन,
नरगिस को तूने शायद, आँखें दिखाइयाँ हैं ।



साजन के वादलो की, तरह से भरे हुए,
यह वह नयन हैं जिनसे कि जगल हरे हुए ।



बूंदी के जमघरो से, वह भिडते हैं हम-दिगर,
लड़के मुक्त आँसुवों के, गजब मनकरे हुए ।



मौजे आविश है, सैल आसो में,
शायद इस दिल का, आवला फूटा ।



न जिया तेरी चश्म का मारा,
न तेरी जुल्फ का बँधा छूटा ।



मेरी आँसु में तू रहता है, (तो) मुझको क्यों रुलाता है,
समझ कर देखलो अपना भी कोई घर डुनाता है ।

आँसू और कविगण

मुत्तसिल रोते ही रहिये, तो बुम्के आतिशे दिल,
एक दो आँसू तो और आग लगा जाते हैं।



दो दिन गये कि आँखें, दरिया सी बहतियाँ थीं,
सूखा पडा है अब तो, मुद्दत से यह दुआना।



क्या आग की चिनगारियाँ, सीने में भरी हैं,
जो आँसू मेरी आँसू से गिरता है शरर है।



Jump — जान से होगये, बदन खाली,
जिस तरफ तूने आँसू-भर देखा।



✓ कहीं हुए हैं सगलो-जगज आँसू में,
यह वे सबन नहीं, हमसे हिजाब आँखों में।



तेरी तिरछी-निगाहों ने, रखा है नीम विस्मिल कर,
अगर फिर कर नजर देखे, तो मेरा काम हो जाये।



लगतनी नहीं पलक से पलक, वस्ल में भी आह,
आँसू को पड़ गया मजा इन्तजार का।



जामे-मै की नहीं, अब हम को तलय पे साकी,
बस तेरी आँसू दिखाने ही ने बेहोश किया।

बल्लाह कि मैं भर के नजर, देख न सकता,
तू ही अगर आँसों में, मेरी यार न होता ।



फुर्काँ निकलती हैं, अशकों की शीशियाँ या रव,
हमारे सीने में बनी किस शीशेगर की भट्टी हैं ।



तूफ़ाँ उठा रहा है, मेरे दिल में सॉले-अश्क,
वह दिन खुदा न लाये, कि मैं आपदीदा हूँ ।



है चश्म नीम-वाज्र अजब रब्बाय नाज है,
फितना तो सौ रहा है, दरे फितना वाज्र है ।



१ आँसुओं से हिज्र में, बरसात रसिये साल-भर,
हम को गरमी चाहिये, हरगिज न जाडा चाहिये ।



जामे-नरगिस में कहों, शयनम जो निकले आफताब,
यार के आगे मेरी आँसों में एक आँसू नहीं ।



१ मैंने जत्र आँसों के मज्रमूँ का पढा वहशत में शेर,
कुए जानों को चले, आहू बयानों छोड़-कर ।



१ तायरे-रूह को, फर देते हैं क्यॉकर त्रिस्मिल,
तौर रखते हैं परीरू न फर्माँ रखते हैं ।

आँस और व

फेरी तूने जिस से, दम फना उसका हुआ,
 आँस के आसार, जिन्दों में नजर आने लगे।
 मुर्दा

ल की दाव-घात मे मिजगों से चश्मे-न्यार,
 है दि हैं करद टट्टी की ओमल शिकार का।
 परत

।से अशक सिफत, मुक्तको गिराकर नसम्हाल,
 आँस ही वह कि सम्हाले से सम्हाल जाऊँगा।
 में न

।से आँस हैं लडती, मुझे डर है मेरे दिल का,
 आँस यह जाय न इस जगो-जदल मे मारा।
 कहीं

।की चश्म की गर्दिश पै गर्दिशे आलम,
 है उर हो उनकी नजर, सब उधर को देखते हैं।
 जिध

।।ए-अशक चश्म से, जिस आन वह गया,
 दरि लीजियो कि अर्श का ईवान वह गया।
 सुन

अन्दाज जिधर, दीदए-जानों होंगे,
 नाव विरिमल कई होंगे, कई बे-जाँ होंगे।
 नीम

ऐ आइना-दारे, खुदनुमाई,
 दे सुरमए-चश्म, आशनाई।

जब उस आरिज का जब से, छुप-गया है मेरी नजरों में,
निगह यूँ आँख में चुभती है, काँटा जैसे छालों में ।



वह कहते हैं कि हम आँखों में, सब को ताड लेते हैं,
सुह-त सारी दुनियाँ की, इसी काँटे में तोली है ।



उस की कड़ी-नजर की, उठाई न गई चोट,
लगत ही ठेस शीशए—दिल चूर-चूर था ।



चरमे-नरगिस न मिली, दीदए-आहू न मिला,
ऐ हया ? तुम को इन्ही, आँखों में क्या रहना था ।



कह रही है हश्म में, वह आँख-शर्माई हुई ।



इधर की न हो जाय, दुनियाँ उधर को,
जमाने को बदलो, न आँखें बदल-कर ॥



चरम-जानों से अलग हो ऐ-हया ?
यूँ मुझे पड़ते नहीं, बीमार पर ।



आगया कुछ याद, दिल भर आया, आँसू गिर पड़े,
हम न रोये थे तुम्हारे, मुश्कराने के लिये ।

मुझ को तवाह चश्मे-मुरच्चत ने कर दिया,
मिल-जाये तो घुराऊ किसी की नजर को में।



बरवाद किया जिस से, जहाँ आँस लडाई।
राक उडती है आलम में, तेरे मौजे नजर से।



हमने माना कि वो आँस नहीं जादू 'आसी,
रात-भर वस्ल में फिर उन को जगाते क्यों हो।



क्योंकर कहूँ कि चार-निगाहें उदू से काँ,
आधी निगाह ने तो किया नीमजॉं मुझे।



जख्मी किया सीने को, नजर है कि गजब है।



लुटा है उस निगाह ने, मिल कर निगाह से,
चोरी गया है दिल। इन्हीं आँसो की राह से।



दिलों में करते जो उल्फत, से हैं जहाँ दारी,
जहाँ को एक नजर में, गुलाम करते हैं।



आँस मिलते ही, कर लेते हैं क्वाबूदिल को,
आज उन आँस का, चल के कमाल देखेंगे।

या ख ? हो दिल की खैर कि कुछ कर रहे हैं आज ,
चश्मो निगाह भशवरा, नाजो, अदों, सलाह ।



छोड़ा न, दिल मे सत्र, न आराम न शिकेव ,
तेरी निगाह ने साफ किया, धर के धर पै हाथ ।



जू तेग खुश गिलाफ निगाह तेरी ऐ परी ? ,
है दमदम निकल के चमकती—गिलाफ से ।



यही गर तेरी चश्म सहर आफरीं हैं ,
तो दिल है, न जाँ हैं, न ईमाँ, न दीं हैं ।



ऐ जौक आज सामने, उस चश्म-भस्त के ,
बातिल सय अपने, दाय्ये-दानिशवरी हुए ।



गुमे नरगिस का दस्ता, गैर के हाथों से क्यूँ भेजा ,
अगर आँखें दिखानी थीं, दिखाते अपनी आँखों से ।



उस चश्म-मै-फरोश से, कोई न बच सका ,
सब को वकदर होंसलाए, दिल-सरूर था ।



✓ वहर की लाय निगाहो की, जरूरत क्या है ,
लुत्फ की एक निगाह-नाज न जीने देगी ।

✓ वही शीशा, यही सागर, यही पै-माना हैं, ^२
चश्मे-साकी हैं कि मै-खाने का, मै-खाना हैं।



वह निगाहें किस गजब की, तेज छुरियाँ हो गई,
दिल में झुर्वी और हर गोश में पिनहों होगई।



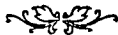
दिल की स्रवर, न होश किसी को जिगर का है,
अल्लाह ? अब यह हाल तुम्हारी नजर का है।




देखी तेरी आँखों की, कैफ़ोयते-रानाई,
अब किससे सम्हलता है, जामे-मीनाई,



✓ आँखों से जान जाइये, फुरकत का माजरा,
अशकों से पूछ लीजिये, जो दिल का हाल है।



समस्या-पूर्ति

समस्या-पूर्ति 

कवित्त

समस्या-पूर्ति

‘लोचन तिहारे है’

अजन विना ही मन-रजन मुनीसन के,
मैन-मद भजन सदाँ ही जैत-धारे हैं,
कारे, सेत, अरुन अमोल हैं अतोल-धनि—
ऐन सुधराई के विधाता नें सँवारे हैं।
सील के सरोवर, सिपाही सूरवीरता के,
कीन्हे हैं निहाल नैकु जितही निहारे हैं,
विपति हरैया, ताप-स्तीन हू नसैया,
पाप-मोचन करैया राम-“लोचन तिहारे हैं”।



जिन न निहारे, ते निहारति निहारिबे कौं,
काऊ ना निहारे, जिन वैसै के निहारे हैं,
सुर, नग, नाग, नव-कन्यन के प्रान-पति,
पति-देवतान हूँ के हिय में विहारे हैं।
याही त्रिधि “केसौराइ” रावरे ? असेप अग,
उपमा न उपजै पै विरधि पचिहारे हैं,
मान-मदमोचन औ मदन-मद मोचन कौं,
तिय-अत मोचन कौं “लोचन तिहारे हैं”।

छाँस और कविगण

कज-दुति भजन हैं, खजन के गजन हैं,
रजन करति, जन मजन सँवारे हैं,
सोभा के सदन, कोटि मोहति मदन, मीन—
मद के कदन, मृग दूरि करि डारे हैं।
लाज, गुन-गोह, नेह-मेह घरमें अछेह,
देह न सँभारें जाति जत्र तैं निहारे हैं,
कारे, कजरारे, अनियारे, कपकारे,
सित्त-गारे, रतनारे, प्यारी “लोचन तिहारे हैं”।



प्रेम-भरे, प्रीति-भरे, नीति-भरे, रीति-भरे,
जीति भरे, भौरन तैं देखियतु कारे हैं,
रस-भरे, जस-भरे, नेह-भरे, नूर-भरे,
नौक-भरे, भौंक-भरे, काम-सर वारे हैं।
मैन-भरे, सैन-भरे, चैन भरे, वैन-भरे,
“लाल—जलवार” मधु-भरे मतवारे हैं,
स्यान-भरे, ग्यान भरे, मान, दान, आन भरे,
लोभ-भरे, लाग-भरे “लोचन तिहारे हैं”।



‘लोचन तिहारे, दुख-मोचन हमारे हैं’

सुन्दर-दरारे, कजरारे, दृग-भारे मनौं,
आतमा के साँचे ढरे, त्रिधि के सँवारे हैं,
दीरघ-महारे, अनियारे, दुति-कारे, तारे,
सुधा के सुधारे मनौं मधु-मतवारे हैं।

मीन-मन मारे, लखि चचरीक हारे,
 दुति खजन तिसारे, जल-जात पाँत वारे हैं ।
 प्रेम उजियारे, सुख-नींद के करन हारे,
 "लोचन तिहारे, दुख-मोचन हमारे हैं" ।

कोऊ कहौ कज हैं कलानिधि सुधा-सर के,
 कोऊ कहौ खजन सुखि-रस के निवारे हैं,
 "कहै रतनाकर" अनद-श्रोप कोऊ कहौ,
 राधा-मुख-चन्द के चकोर चटकारे हैं ।
 कोऊ अग-कानन के कहति कुरग इन्हें,
 कोऊ मीन कहै ए अनग-केन वारे हैं,
 हम तौ न मानै उपमाने, एकु जानै यह,
 "लोचन तिहारे, दुख-मोचन हमारे हैं" ।

‘नैन-योके राधिका के हैं’

राजति अमीके, मद-छाके काल-फूट किधौं,
 चचल-तुरग के समान ऐन का के हैं,
 पिय-दियरा के, मृग, मीनन के याके किधौं,
 सौति साल ही के, कै मीन मद छाके हैं ।
 "परमो कहत" देखि खजन हूँ थाके किधौं,
 स्याम, सेव वाके, लाल-आभा साधिका के हैं,
 छत्र हैं छपाकरके, भुवाल के छलाके चारु—
 चचल-चलाके "नैन-योके राधिका के हैं" ।

शॉल और कविगण

चतुर-चमाके से, मत्माके-दार मुकि मॉकें,
चचल-चलाके, कोस कोक की कला के हैं,
रति के न, रमा के न, न सोहति तिलोत्तमा के,
मैनका की कहै कौन ऐसे न गिरा के हैं।
“ग्वालकवि” भरे सुरमा के, पै न उपमा के,
अजब-अदोंके मन-मौहन मजा के हैं,
ऐसे न रमा के, रमनीय सुरमाँ सौं सजे,
जैसे सुरमा से “नैन नाँके राधिका के हैं”।



रजजन-नवीन, मीन मान के उमाके देति,
नाके देति मृग-भद कज हू कहाँ के हैं,
ठौर-ठौर भँवर, भ्रमत लग्यौ जाके सग,
“भारन” चकोर कहैं चचल चला के हैं।
ऐसे ना रमा के, ना उमा के, ना तिलोत्तमा के,
प्रबल-हरौल पचवान प्रीति-नाके हैं,
हैं न मजुघोपा के, वरानैं मैनका के कहा,
ऐन सुरमा के “नैन-नाँके राधिका के हैं”।



एकही मत्मा के में छमाके सौं मोहैं मन,
ऐसे मार धारे ना उमाके, ना रमा के हैं,
दसहू-दिसा के, मनसा के फल दें-हारे,
करन निसाके, इमि जाकी ओर ताके हैं।

जाइ केँ जहाँ के तहाँ मीन जल ढाँके गए ,
हरिन-हहाके भरें, कमल हू कहाँ के हैं ,
सकल-समा के, सुरमा के, उपमा के चारु-
चचल-चलाके "नैन-गोंके राधिका के हैं" ।



लालची, लजीले, लोल ललित-रसीले लखि ,
लोगन ललकि-लज्जकि लूटें लँगरा के हैं ,
दिन में छलीन चित्त छैलन कौ छोमैं, छरें ,
छोरें छरकीले से छवीले छवि-छाके हैं ।
"मनसा कहति" डेरा डौंडी है डारै डाँकों ,
डारति डगर-डगर डग में सु डाँके हैं ,
ऐसे और का के मैनका के अधिलोके में न ,
वानन तैं वाँके "नैन-याँके राधिका के हैं" ।



करन-कला के, करुना के धाम धाके भए ,
पूरन-प्रभा के औ दया के औ मया के हैं ,
हाँके हरना के, अरवला के, मैनका के भूप-
रूप-सुखमा के औ उमा के चारुता के हैं ।
माँके सौँ ममाके "श्रौघ" जाकी और ताके-
रहैं, राह परें डाँके सो डरैते से लड़ाके हैं ।
धाके माँ छमाके, जसुधा के छोहरा के चारु-
चचल चलाके "नैन-याँके राधिका के हैं" ।

कीरति-पताका के काम-देवता के पूर्णपात्र,
 प्रेम के पताकै दें-हार हित ताके हैं,
 सौंचे सुखमोंके, सुखमोंके जाके जोहैं होति,
 मादक के प्याले से औ आले रसता के हैं।
 पूतरी प्रवीनन के, सँकोच हैं नगीनन के,
 ताके काज जडित सु डोल डिविया के हैं,
 जस करता के सान, तस करता के यान,
 “नाथ” एकजा के “नैन-वाँके राधिका के हैं”।



मीन है दीन ताके, छीनता के, हीन ताके,
 सरमाए भए तिरिया के दरिया के हैं,
 रजजन निद्धितता के मारे फिरै मारे-मारे,
 तितली-भलीसे लहि नहीं धिरता के हैं।
 जल-भँवरा के, भँवरा के जल-डूबे हौंस,
 मिधि दबराके मारै रहैं भँवरा के हैं,
 पच्छी पच्छ ताकि गुन अच्छताके खोइ बैठे,
 “नाथ” एचलाके “नैन-वाँके राधिका के हैं”।



‘मैन-भूप-थाजी हैं’

रजजन-किसोर किधौं चावक, चकोर चारु,
 कैधौं कल कजन की छवि अति-ध्याजी हैं,
 विसिख-विसारे किधौं, अति-अनियारे ए,
 कैधौं द्वै-दुरेफन की सुखमा निराजी हैं।

कैधों चद-मडल में कारे द्वै-कुरग सखी ?,
 कैधों ए जुगल-मीन चपल-मिजाजी हैं,
 रानी होति देखि जिन्हें मदन-गुपाल लाल,
 नैन नागरी के किधों "मैन-भूप-बाजी हैं" ।



जालन में आन कैं फँसे हैं खजरीट किधों,
 कैधों ए सरोजन को कलिका बिराजी हैं,
 कैधों हैं चकोर, किधों मोर-मतवारे किधों,
 बारि तैं निकारि कोऊ डारी मीन-ताजी हैं ।
 "श्रीनिधि भनति" कैधों छौना-हरिनी के वेस,
 कैधों इन्हें देखि कैं गयद-माति लाजी हैं,
 कैधों जहरीले कारे-नाग छिति-मडल के,
 नैन राधिका के किधों "मैन-भूप-बाजी हैं" ।



सुप्रमा सरोजर के मीन मजु कोऊ कहैं,
 कोऊ-कोऊ कहति बिसारे बान राजी हैं,
 कोऊ कहैं भृग से, त्रिहगम से कोऊ कहैं,
 कोऊ कहैं नदन-वनै के मृग-दाजी हैं ।
 "श्रीसिन्धु सुकवि" के न समता समाति ऐसी,
 उपमा न कीजै जातैं लोग कहैं पाजी हैं,
 कज-मद गजन करनहार भरे जान,
 नैन दैन-दारे नैन "मैन-भूप-बाजी हैं" ।

विथुरी-अलकन की फवन कही न जाइ,
 स्रम-कन वलित मिराजी रौम-राजी हैं,
 पीठ मुज-भूपन की, अधरन अजन की,
 आरस की अगन अनूप-छवि छाजी हैं।
 “हरि-औध” प्यारे नीकौ वानिक तिहारौ वन्यौ,
 हेरें ए अभागिनी हिए में होति राजी हैं,
 रस मसे वैन में, उनीदे दोऊ-नैन वने,
 सु अजब-अनूठे आज “मैन-भूप-वाजी हैं”।



सुन्दर-सिंगार किएँ सोहै बृपभाँनु-लली ?
 जाति चली कुजन में खूब-साज साजी हैं,
 आनन-भ्रकास चद, गति कौँ गयद देखि,
 रूप-देखि उमा, रमा, काम-वाम लाजी हैं।
 “कहैं कवि दास” सखी ? साँचि में कहति तो सौँ,
 प्यारी कौँ देखि सदाँ रहत स्याम राजी हैं,
 भृकुटी-विसाल-वाँकी बकता कमान लाजै,
 नैननि निहारि लाजै “मैन भूप-वाजी हैं”।



पलक-लगाम अली ? अजन सु तग वसेँ,
 घूँघट-भरौँरी तौऊ करै चार साजी हैं,
 रोकेँ न रुकति, चलि जाति चित्त-चाहै जित,
 ऊँच-नीच गनेँ न ए गरवीले वाजी हैं।

बिरह-चाव-चाबुक सगर सीखि सीखे री !,
 चातुरी की चाल देखि चपलाई लाजी हैं ,
 चमकें चलाक चोखे सेत, स्याम, रतनारे-
 रग धारे नैन मनौ "मैन-भूप-बाजी हैं" ।



लाज की लगाम नैकु लतिया न मानें इहि,
 तोरि टूक-टूक करें बडे वीर पाजी हैं ,
 कुल की न लीक रखें सीखि पेंड दूने उडैं,
 वैन-कटु चाबुक अपार-खान राजी हैं ।
 केवल सुसील-स्याम साँवरे सवारी-सूधे,
 चलें न तौ याके सम तुरकी न ताजी हैं ,
 चचल महा हैं, खूद करें थान घूँघट में,
 तेरे नैन आगे कहा "मैन-भूप-बाजी हैं" ।



घूँघट में झीने-पट खुल तै खुरी सी करें,
 लाज की लगाम रुकि जाति तर-ताजी हैं ,
 अबलख-रग त्यौं सुरग "द्विज बलदेव"
 आलसी-पलक सग अग रौम-राजी हैं ।
 फौंदति, फिरति, फाति, फन्दन फराक फैलि,
 आतुरी-चलाकी में अनूप-अनदाजी हैं ,
 जादू भरी जोह तैं "ग्रजेस" बस कीन्हौं—
 नैन-सैन मतवारी ऐन "मैन-भूप-बाजी हैं" ।

‘तीरथ के तीर, काहू तीर मारियतु है’

जा दिन तू नीर जमुना पै लैन गई हुती,
ठाडौ बल-वीर ताहि यौं निहारियतु है,
ता दिन तैं खान, पान, सकल-निसरि पन्थौ,
वे-सुध अपार जवन कीन्हें हारियतु है।
ऐसौ सुकमार प्यारौ नद कौ कुमार ता पै,
सुनि रो । गँवारि नैन-बान पारियतु है,
तैनै पनिहारी ? नीति नैकु ना विचारी अरी ?
“तीरथ के तीर, काहू तीर मारियतु है” ।

❀

अबला विचारी सों कियौ है कहा ए तौ बल,
कलिका-करी कहुँ मीज डारियतु है,
“वैनीं द्विज” करत कटाच्छ ऐसी का पैलाल ?,
बर-बस बिहाल कै मही पै पारियतु है।
सिसकि रही है घोर-घाइल-घुमरि राधे,
ताहू पै न नैकौ मन दया धारियतु है,
है कै रन-धीर बल-वीर ए करौ हौ कहा,
“तीरथ के तीर, काहू तीर मारियतु है” ।

❀

कहुँ गिन्यौं मुकट, लकुट-कहुँ हाथन तैं,
कहुँ मुख बाँस की बँसुरिया-डारियतु है,
कहुँ पट-पीत, कहुँ हार गर-गुजन कौ,
कहुँ कारी कामरी “किदार” पारियतु है।

बाजर है भानुजा पै रिचलै ब्रजेस, राघो,
 नैकु ना दया री । तू हिए में धारियतु है,
 मारि नैन-वान तान कठिन-करेजै साधि,
 “तीरथ के तीर, काहू तीर मारियतु हैं” ।



गग की तरग जोर-जंग सी धपलताई,
 भानु-तनया सी स्यामताई धारियतु है,
 योरी अरुनाई की लुनाई वनी सारदा सी,
 मिलि कै त्रिवैनी अघ-सैनी तारियतु है ।
 नैन के कटाच्छन तैं मारि-मारि माधव कौं,
 नैन की तरग अग-अग पारियतु है,
 होति हैं अधीर, यीर पिया कौं वढारैं पीर,
 “तीरथ के तीर, काहू तीर मारियतु हैं” ।



आए लाल तीरथराज करनि अन्हान तहाँ,
 कीन्हौ तू अनौख्यौ-ख्याल कैसी कारियतु है,
 भौंह की कमान अरु नैननि के तीर तानि,
 मारि हिय माहि नहि ओट-धारियतु है ।
 “भगत गनेस” कहैं राधिका सौं सखी ऐसैं,
 है कै री कठोर काहे लाल-मारियतु है,
 परे हैं निहाल नहि चलैं गैल-चाल हाइ,
 “तीरथ के तीर, काहू तीर मारियतु हैं” ।

परव-पूर्णात पुन्य-काल, तकि बाल-ताल,
 न्हान-हेतु हौंस भरी भरि पधारियतु है,
 मग में अनूप-रूप छत्रि-छाकि रहे छकि,
 चित्र के लिखे से गाढे मौन धारियतु है।
 विमल विकास जोति जल में जलज-भुखी,
 निरखि "निहारी" भृग-मन धारियतु है,
 एते पै भृकुटि-तानि, अजन-पनच लाइ,
 "तीरथ के तीर, काहू तीर मारियतु है"।

३

चलिये गुपाल-लात प्यारी छत्रि निरखनि कौ,
 वदि जमुना पै कहा काल टारियतु है,
 फूलन-विछाएँ सेज, मनिनि जडाऊदार,
 भवन निहारि इन्द्र-लोक धारियतु है।
 "दास कवि" उमा, रमा, सारदा लजानी परै,
 काम-नाम रूप कौ गुमान गारियतु है,
 नवल-छद्दीली के ए चचल नुकीले-नैन,
 "तीरथ के तीर, काहू तीर मारियतु है"।

०

तापस द्वै वास लौन्दौ कचुकी-मुटो के बीच,
 मौतिर फी माल गग-धार धारियतु है,
 जप-कदली-वन में नाभि-मुह गोता लेंद्र,
 थापित थिताप तू मुसील धारियतु है।

वगनां चवन नौं जचल-टपारी फरि
 चन्द है निनास उहु-वाच धारियतु है,
 ला पुन्य-भूनि नै बनान-भाह वलै जनि,
 "वीर्य के वीर, काहू वीर नारियतु है" ।

ॐ

गासन "द्विज-गल" गुणे नुछा नौं नाहै,
 मानु-न-वर-रत्न पाटी पारियतु है,
 सारद सिद्धर विर औरन सरहै सब,
 सैन साजि संकुल प्रना चारियतु है ।
 पतक-प्रतिचा कर्षे भृकुटी-कनान वान,
 कैवर-कट्य-च्छ करि दौडि डारियतु है,
 सान समीप वनराज कौं विरोहै तकि,
 "वीर्य के वीर, काहू वीर नारियतु है" ।

ॐ

सहन सिंगार-रस बूडे मानुना सी-
 वाह पारिवे कौं पाटी अगै पाटी पारियतु है,
 सारद लौ मॉनि-नॉनि लेवि मन "बल-देव"
 सुरसरि सग मुक्त धौल धारियतु है ।
 भृकुटी-कमान मान माहुर सिजा-भुनन नौ,
 प्रैम कौं प्रतिचा गौमे गौनि नारियतु है,
 तरनी । तरन त्यौर ताकति विरोहै है,
 "वीर्य के वीर, काहू वीर नारियतु है" ।

विधि कौ सदन, द्वारपाल जुग राजें रनि,
 सुख में त्रिबैनी तहाँ पीर पारियतु है,
 दरसि रहे हैं स्वर्ग सपुट में सालिगराम,
 कबुवर ताके एक तीर धारियतु है।
 “ललित” सिरपर जुग-सभु के समीप दीरें,
 तापर सरोज भरि नीर डारियतु है,
 वानि विनु गुन की कमान सरिसान-नैन,
 “तीरथ के तीर, काहू तीर मारियतु है”।



सेत-ताई जन्हुजा, आसितता तरनि-सुता,
 लालिमा-दृगन भारती निहारियतु है,
 सगम तिहूँ कौ मिलि पुन्य-थल पूरौ होति,
 अचरज हेरि कैं हिएँ विचारियतु है।
 मृकुटी चढाइ कैं अनख भरी आनी ? फत,
 पीतम पै कुटिल-कटाच्छ डारियतु है।
 अनुचित-उचित सँभारि करि ऐरो घीर ?
 “तीरथ के तीर, काहू तीर मारियतु है”।



वेरी ए किसोरी गोरी-जघनि सुपुन्य-भूमि,
 त्रिपती-त्रिबैनी काम-ताप मारियतु है,
 यादी तैं मनिन्द चित्त जोगित यो वृद्ध तित्त,
 आड कैं तहाँ पै नीकौ जोग-भाधियतु है।

सप्त-सुखदानि जानि असन-समान-पानि ,
 तुव अधरामृत पै प्रान-पारियतु है ,
 पलक निरग मूँदि राखि दृग-तीरे अरी ?
 “तीरथ के तीर, काहू तीरे मारियतु है” ।



‘मारै नैन-बाँन, जैसेँ चोट लगै गोली की’

चन्द्रमा तैं चीर कैँ निकारी इहि चन्द-सुरी ,
 चपक-वदन तन-सोभा निरमोली की ,
 कूक भौंह तानिकैँ कमान-मुलतान कीसी ,
 मुख की मधुरताई लागति ठठोली की ।
 कुच-जुग तग तानि बाँधे हैं जुलम जोर-
 जग जीतवे कौँ गाँठ तग दई चोली की,
 रग है रो ? रग एकु सग ही विचार लीनीं,
 “मारै नैन-बाँन, जैसेँ चोट लगै गोली की” ।



आजु जमुना पै देखी भोरही अन्हाति एकु ,
 बाल-अलवेली बँदी दिऐँ भाल रोली की ,
 गज-मतवारी-चाल, परम-रसीले बँसु ,
 उन्नत-उरोज पै अनूठी-धरि घोली की ।
 कौँन वह गोरही अनूप-रूप वारी कमनैत-
 कहीं सीर्यी है रहैया कौँन टोली की ,
 मृकुटी-कमान विनु रौँदा की उतान-तान ,
 “मारै नैन-बाँन, जैसेँ चोट लगै गोली की” ।

घन-ठन घैठी है दुकान साजि हाट-बीच ,
 एहो ब्रजराज ? एकु बनिता तमोली की ,
 झॉन भरी जोवन, गुमान भरी गाँहक सौं ,
 किम्मत-करारी लेति मन-मानी ढोली की ,
 "बैनी द्विज" औरहू कहाँ लौं कहीं बाँकी-खवि,
 मधुर्वै मिठाई है सवाई वैस बोली की ,
 भौहैं-रक कान लौं चढाई कै कमान ऐसी ,
 "मारै नैन-गॉन, जैसे चोट लगै गोली की" ।



आजु तैं न जैहों दैया, भैया-सौँह जमुना पै ,
 करति कन्हैया वात विकट-ठठोली की ,
 फोरि देति गागरि, भकोरि देति गातन कौं ,
 तोरि देति वरवस बृथा हौं तर्नी चोली की ।
 "बैनी द्विज" अब तौ रहैगी लाज कैसे कहीं ,
 बनिता बचैंगी कौन-भौँति ब्रज-ढोली की ,
 तानि-तानि भुकुटी-कमान बान कोरन लौ ,
 "मारै नैन-गॉन, जैसे चोट लगै गोली की" ।



एहो घन-म्याम ? आजु एकु बीजुरी सी घाम ,
 आई बरसाने केरि टीकौ लाइ रोली की ,
 अग-अग भूपत जराउन की जोति जगै ,
 कसे बुच नैकु ना गनाहि पट चोली की ।

गाल-गुल-आव्र प्रात-रवि की मरीची मजु ,
 वद, मिमरी सी मिठास मुख बोली की ,
 मृदुटी-कमान तानि वरुनी की नौकै-फर ,
 "मारै नैन-बाँन, जैसेँ चोट लगै गोली की" ।

❀

बानक कौ विद्युवा विदारै अग-अग सारौ ,
 गुरज-गिरावै भूमि नई-ध्रुवि चोली की ,
 हँसनि-कृपान करै कतल विलोकति ही ,
 हूल सी करेजैँ देति सूल गति भोली की ।
 भएँ मुठ-भेर नैँकु प्यारिन के "चिरजीवी" ,
 सालति हिए में घाव सेल्ह मृद-बोली की ,
 प्रेम की लडाई की वड़ाई करै कौन प्यारे ,
 "मारै नैन-बाँन, जैसेँ चोट लगै गोली की" ।

❀

प्रथमहिं वज, खज, मृग, मीन छीनीं छनि,
 रस-गस, जस में चितौनि भाँति भोली की ,
 अब डीठि मूँठि टौना पारे दृग-कौने हारि,
 पारथ के सरन की प्रभुता ठठोलो की ।
 "कहाँ हनुमान" वा के प्रान नठ ज्याइ लै री ? ,
 धाई ब्रज-चरचा चवाउ ऊँची चोली की ,
 अजिहि-कमान-भौंह तान, आन-मान, कान,
 "मारै नैन-बाँन, जैसेँ चोट लगै गोली की" ।

करत कटान, चढि ऊँचे लौं अटान चट,
 सुन्दरी चटान पै छटान चीर चोली की,
 मद-मुसिकाइ, मुख विमल मनोज जार,
 वार वगराइ वारवधू वैस भोली की।
 गाइ कै, रिफाइकै, वताइ हाव, भाव वर,
 “निप्रजू” वनाइ दास टाटी मृदु-बोली की,
 वधिक समान वन जोवन धनीन-मृग,
 “मारै नैन राँन, जैसेँ चोट लगै गोली की”।



नूपुर-नकीव फिऐं नेजम निजाकत की,
 सूरत-सिपाही अरु सूरमा ठठोली की,
 घूँघट-तुरगम, मतग मतवारौ चलै,
 उलटे निगारेन पै गिलाफ मढैँ-चोली की।
 वादसाह-तरुनी, तरौना तलवार लसै,
 “भनैँ मदनेस” वीन बाजै वैस गोली की,
 भृकुटी-कमान औ निमान-सान-फौज सजी,
 “मारै नैन-राँन, जैसेँ चोट लगै गोली की”।



कौमल कपोल गोल बिरचे तमोल ता मैं-
 दूँनी दुति दिपति मिसी तैं अनमोली की,
 सारी-सोसनी मैं रग अग अदराने नर—
 अग गदराने पै फवति छनि चोली—की।

मोरि-मुख बिहँसि सिसकि मन छोरेँ लेति,
 जोरेँ लेति "जगली" बनकू वैस बोली की,
 घूँघट के कोट ओट भौहन-रुमान तानि,
 "भारै नैन-ब्रॉन, जैसेँ चोट लगै गोली की" ।



जाकीं ओर एकवार चितवै बिहारी लाल,
 ताकीं सुधि रही ना ठठोली और बोली की,
 चले की न, फिरे की न, न गिरेँ चोट लगे की,
 न भूषन की, न लहँगा की, न सारी की, न चोली की ।
 देह की न, गेह की न, न पति सुत नेह की,
 न बिंदुल की, न मिस्सी की, न सँदुर की, न रोली की,
 सखियन-अचेत है जात "नगराज" कान्ह,
 "भारै नैन-ब्रॉन, जैसेँ चोट लगै गोली की" ।



"द्विजराज" देखी बाल, भाल बिन्दु दीन्हें लाल,
 हरति मराल-चाल, ख्याल करि भोली की,
 काहू अग अमिटि चिपटि जात चुबक ज्यौं,
 काहू हनेँ उरज-गुरज आढ़ चोली की ।
 काहू इठलाइ, मटिकाइ-कटि काट करै,
 काहूँ सौं ठठोली मिखि करै घात बोली की,
 काहूँ केँ कमान-जुग-भृकुटीन तानि बक,
 "भारै नैन-ब्रॉन, जैसेँ चोट लगै गोली की" ।

लाखन-रसियान के सुसील-मन रँचि-रँचि,
 राखै अनहीं तैं लागि धौधी माहिं चोली की,
 काटै लगी कान महा-चतुर प्रमीनन के,
 अजब-अनूठी रीति-भोंति कै ठठोली की।
 तोतली अमोल बोल जैहौ विनु-मोल बिकि,
 मोहि हौं निहारि कुच गूठली निबोली की,
 घँन न लहौगे नैकु सैन जो करैगी भोरी,
 “मारै नैन-बाँन, जैसेँ चोट लगै गोली की”।



आई आजु होति ही प्रभात चलि मेरे-भौन,
 गोप-सुता सुन्दरी सु कीरत की टोली कां,
 लै गई बुलाइ खेलिवे के हेत कान्हर कौं,
 हौं हूँ री ? पठावौ जानि एक हम जोली की।
 “भनै बलभद्र” गति गात की न जानी जात,
 जा छिन तैं आई नहिं नैकु सुधि बोली की,
 दीनौ एकु उत्तर कि मेरे जानि कौन्यौ तानि,
 “मारै नैन-बाँन, जैसेँ चोट लगै गोली की”।



जातहुती जमुना असनान हेतु मोद-भरी,
 बरनि सकै न कोऊ सोभा-सरि टोली की,
 तब ही गुपाल आइ पीछे तैं सुनावौ वेंनु,
 भनक परी सो कौन घात-प्रैम घोली की।

“चदकला” ठाडी रही अति हरराइ हिऐं,
 डग न अगारो परी लौनी वाल भोली की,
 सुरि मुसिकाइ केँ दुलारी वृषभाँनु जू की,
 “मारै नैन-वाँन जैसेँ चोट लगै गोली की” ।



उडुरुति जाति मुसिकाति मंद-मद वाम,
 नद गाँव सरिन के मध्य ओट टोली की,
 कैधौ हँ सचीसो, किधौं मैनका कि काम-वाम,
 इन्दिरा कि गौरी सीस सारी है पटोली की ।
 देखि घनस्याम केँ कटाइ वाट ठाडी भई,
 सरिन त्रिहाइ न्यारी जैसेँ गोट चोली की,
 “मगल” त्रिलोकि तिरछौंहि स्याम ओर वाम,
 “मारै नैन-वाँन जैसेँ चोट लगै गोली की” ।



बाँकी ही मुकट, पाग, बाँकी लटि-लटिकेँ द्वै,
 बाँकी त्रोल धोलै पै, बलिहारी बाँकी धोली की,
 बाँकी है लटक चाल, बाँके मग ग्वाल-पाल,
 बाँके है “त्रिहारीलाल” गावें तान होली की ।
 बाँकी ही लडुट टेकु, बाँकी वनि रोकेँ गैल,
 धैल छली छिपी-गैद मोगै सखि चोली की,
 बाँकी ही चितौन-चितै, बाँकी-भौ-कमान नानि,
 “मारै नैन-वाँन जैसेँ चोट लगै गोली की” ।

बसन-बसन्ती, कटि लागि लफंगारे-केम,
 फसनि अनौंरसी-अग चोरसी चारु चोली की,
 बैस-मुकतान-लरी लुरति लुनाई लूम,
 छिति छहराई छटा छेम-छरि दोली की ।
 “श्रीकर” रती सी अलि-गर मुज मेलें मजु,
 ललित-लवग-लतिकाननि तकोली की,
 तय तैं न भैंन चैंन, लैंन नहिं देति अरी ? ,
 “भारै नैंन-गॉन जैमें चोट लगै गोली की” ।



छिन-छिन दूनीं-दूनीं बढति प्रिया की ज्वाल,
 छिरकि-गुलान हारों सखि-सन दोली की,
 तीर-जमुना के कुज निपट-अधीर बल-
 धीर अग-पीर “जगमौंहन” अतोली की ।
 तकति न काहू और बरुति कटू के कट्ट,
 मरुति न नैंकु यह कौन सी ठठोली की,
 वेगि चलि आली ? कौन नत्र महाली आजु,
 “भारै नैंन गॉन जैसैं चोट लगै गोली की” ।



‘लाज-भरे लोचन सँकोच मुरे परैं’

दूटी-लरी, बैदी कहूँ चोटी तैं उरफि रही ?,
 भिक्कति मौंती बाहु, कन्धन डुरे परैं,
 कचुकी-ममकि, डुरि आँचर विराजै कटि,
 कौनहूँ जतन सौँ उरोजन उरे परैं,

“भनें हरिसकर” उम्कि मूकि रही बाल ,
 स्वेद कन अगन सौं अमित लुरे परें ,
 करति किलोल साँवरे सौं सास आइ गई ,
 “लाज भरे लोचन सँकोचन मुरे परें” ।



पायौ है सु जोवन-जग्राहिर जलूस-दार ,
 जरजरी जोतिन सौं जेवर जुरे-परें ,
 पिय बड़ भागी फिरै सग लग्यौ “भाधव जू” ,
 तिय तन-चुपक में लोह से लुरे परें ।
 पाइ परजक अक भरि कै निसक लाल ,
 बाल भई लदू दोऊ सेज पै छुरे परै ,
 प्यारौ निपरीत की समस्या करै त्योंही तकि—
 “लाज-भरे लोचन सँकोचन मुरे परें” ।



राति रति-केलि करि प्रात उठि आई बाल ,
 पाँइ चपि भूमि रग ईगुर धुरे परें ,
 “सकर सु कति” कच-कुचित कपोलन है ,
 तोलन-अतोल कुच-फोरन लुरे परें ।
 खुतगे-सजाने चहूँ उत्पल की सौरभ के ,
 दौर-दौर भौरन के भौरन जुरे परें ,
 गुरुजन-समीप भई गुरुता गहरि श्राव ,
 “लाज-भरे लोचन सँकोचन मुरे परें” ।

जागी पिय-सग सारी-राति के कुतूहल में,
 वैठी उठि भोर हार लर पै दुरे परै ।
 केस निखराने, दरके हैं कचुकी के घद,
 करति सँभारि काज क्योंहँ न पुरे परै ।
 देर ना रसोई होइ लीनै अरसानी अन्न,
 होस नाहि चीनै अन-चीने में जुरे परै,
 लखि कै सुसीत-सखी हौंसी करै थोलै नाहि,
 "लाज-भरे लोचन सँकोचन मुरे परै" ।

०

सुन्दर-सिंघासन पै मढप ठरै में जहाँ,
 चौ-दिसि के सुखमा समूह निदुरे परै,
 राजै अभिराम, तनु राम-जातकी के मग,
 घन-दागिनी के वृत्त दायन तुरे परै,
 "दामोदर" पूरव अनुराग में उपटि ज्योंही,
 उदधि मयक तेमे चोहत जुरे परै,
 चचल चताक चमकीले त्योंही दोडा के,
 "लाज-भरे लोचन सँकोचन मुरे परै" ।

०

गौनिहा-नपेती कौं महेती केनि भोग ल्याई,
 देगति, दिपति दुति दागिा मुरे परै,
 भरिपै निगह-अक करारि मिटाई "गिष",
 दूटी गौनी-गोग पत्ताक पै मुरे परै ।

पाइ श्रवकास भोर कौने वैठी मुख-भोरि ,
 चिकुर अथोर कुच-कोर विथुरे परैं ,
 ऐंवि ऐंवि आँचर अली ज्यों हँसि पूछैं वात ,
 “लाज-भरे लोचन सँकोचन मुरे परैं” ।



तेरे कहैं आली ? मान ठानि वैठी मौहन सों ,
 भौहन करेरी करों सोऊ नैकु ना डरैं ।
 भाल कौं भ्रमाइ त्यौरी पारि वैठों जाही भौति ,
 ताही भौति रहैं नाहिँ आँन-रीति कौं धरैं ।
 “चन्दकला” तेरौ मत, मानति है मेरौ मन ,
 जतन करैं हूँ घने काज न कछु सरैं ,
 दूर ही तैं आवति निहारि ओर घालम की ,
 “लाज भरे लोचन सँकोचन मुरे परैं” ।



‘उनीदे-नैन नौकदार’

लाल-लाल ललित रसाल छवि-जाल पुज,
 अतिही विसाल, मद-छाके घाँके मौकदार ,
 मूमति, मुकति, भ्रमकति, उभ्रकति, रूप,
 नीर चुचुवाते, गजमाँते जलु सौकदार ।
 अजन जिहीन, मद-गजन हूँ सजन के,
 “वैनी द्विज” रूपके सजाने भरे औकदार ,
 घाँधें देति भोरही हमारौ हिय प्यारे सुनौं,
 रावरे के अति ही “उनीदे-नैन नौकदार” ।

आई है कित्ते ते प्रात प्यारी तू हमारी-पैरि,
 पारति मही पै पाँउ अट-पट भौकदार,
 लाई है कहाँ तैं हार हीरा के गरे में धारि,
 कचुकी-करेरी कसी कैसी नई भौकदार।
 घरवस बकावति, बतावति न काहे वीर,
 “वैनी द्विज” रसिक-प्रवीन वह थौकदार,
 दीदे ए नदीदे हैं हमारे वाहि देखिवे कौं,
 जासौं लगे तेरे हैं “उनीदे-नैन नौकदार”।



सारी-रैन प्रान प्यारी जागी प्रान-प्यारे सँग,
 कीन्हे रस-रग जंग जेते हुते फोकदार,
 जोधन उमग तैं अनग की मजेज मोहि,
 रति-विपरीत में तरग लीने भौकदार।
 भएँ परभात, छठि आई गुरुजन पास,
 सखिन-समाज घेरि लीनी जे असोकदार,
 लाजन, सँकोचन महाँ में गड़ी जाव-
 भानि-घूषट दुरावती “उनीदे नैन नौकदार”।



फहौं तू दुराएँ जाति अग-शृपभौंउ पारी,
 इहौं शुज-थीच नाहि फोक रोड-शोकदार,
 वैनी यह गूमी तात निज-कर-कजन तैं,
 दाइ रही मीरभ-समूह चौहँ भौकदार।

दरस विहारे धन्य-धन्य करि भए हैं आजु,
 नल सिरस सकल-सिगार रस-थोकदार,
 सारी निसि जागी स्याम-रसिक-सुजान सग,
 सूचति सुरग ए "उनीदि-नैन नोकदार" ।



कार्का चूनरी नैं किए चून री सरस-अग,
 मोर-भोर पच्छ में परी है लीजिये सँवार,
 काटति अधर भौर दीजिये उड़ाइ क्यों न,
 आलस-बलित गात जमुँहात धार-वार ।
 मानी-स्याम-सारी यह कौन की विराजै देह,
 हर-भर आए क्यों प्रभात ही खुलत द्वार,
 सोई प्यान-प्यारी पै पधारिये पियारे-लाल ?,
 जहाँ जागि भए हैं उनीदि-नैन नौकदार" ।



कान्त-अक रजनी पिहाइ रति-क्यात-काइ,
 बैठी मसनदु आइ सौतिन कौं सोकदार,
 आँगी दरकानी, तरकानी तनी "सकर" जू,
 बँनी विथरानी, फटी चूनरि सु भोकदार ।
 टोकि लागि जाइ टोक हू कौं कहूँ पावै देखि,
 रोक न सकै जो गुनी हूँ होइ रोकदार,
 भौकदार भाला तैं दुवाला-दिल आसिक के,
 आलसके माँते ए "उनीदि-नैन नोकदार" ।

आजु “कवि सकर जू” नूतन लखात भाव,
 छाके मद-जोवन के थाके रति कोकदार,
 मानहुँ मजीठ दोइ-हवसी नहाइ भए-
 मुगल-गवा लौं लखि-लखन के थोकदार ।
 मूँमि-मूँमि घूँमति मूलाके भौँक मूलन की,
 ऐसे तौ न देखे हैं कभौं ए कहूँ भोकदार,
 भौँकदार दिल के न रोकदार जाकौं कोऊ,
 गजन-सिपाही ए “उन्दि-नैन नोकदार” ।

७

भोरहीं पधारे स्याम, धाम वृषभानुजा के,
 पायौ तहाँ कोऊ सखी पाहरु न टोकदार,
 आपुही जगाई पट ऐँचि-ऐँच सैँचि बाँह,
 चौँकि उठी स्यामा कज मजु-गात चौन्दार ।
 चौँकतही “राम मई” दरस दए हैं स्याम,
 कनक लखाइ कैँ त्रिमगी-चाल भोकदार,
 देखि सुर-सोभा, मन-लोभा पै डरात दाइ,
 गहि कहूँ जाइ ना “उन्दि-नैन नोकदार” ।

८

आई परजफ पै निसफ द्वै मचाई धूम,
 चूमि-चूमि पीं दौ मुग्य तोरि-तोरि डारे डार,
 रवि-विपरीति कैँ सुरति कियौ “भाधव जू”
 जाँव कैँ अग-भोज पैठि कैँ सुधारे-भार ।

दोऊ बतराति औ जंभाति सकुचाने-गात,
 दोऊन की वानिक पै दोऊ है वार-पार,
 आलस बलित ए हैं ललित-लली के लोल,
 लाल बस कीबे कौं "उनीदे-नैन नौकदार" ।



कहा कहीं, कहे मैं न आवति न कहैं ही वनै,
 कहे तैं कहोंगी कहा कहन हैं थोरुदार,
 जहाँ तहाँ, इहाँ उहाँ, घर-घर, घाट-घाट,
 गली-गली फैली वद-फैली-कथा सोकदार ।
 "सुमरेस" दुरति दुराएँ रद-छद कैसें,
 भूमकि, धमकि, पग चाल-जाल भोकदार,
 बीधे प्रेम परति, न सीधे होति मेरी ओर,
 अध-बुले अरुन "उनीदे-नैन कोरदार" ।



खजन लजाइ सरमाइ कैं उडेई जाति,
 बूडे जल जाइ अति कज हू है सोकदार,
 मीन दीन, हीन दुति देखि जल ही मैं दुरे,
 जगन जुर्ैया जे कुरगन पै भोकदार ।
 "ललित" बखान करै कैसे मैन-सान चढे,
 कान लौं कमान सिंचे वान से हैं चोकदार,
 फौकदार बरुनी न रोकदार कोऊ राधे,
 तेरे ए सुनीदे जे "उनीदे-नैन नोकदार" ।

वदन-भयक पै बिकानों मन मेरौ जाइ,
 वदन सुपेस तै लुभानों लखि बक बार,
 बक-बार हूँ तैं छूटि लपट्यौ दुकूल आइ,
 उत तैं उचटि बह्यौ जोवन जलूसदार।
 विलम धरीक फेरु फँसिगौ सुहारन में,
 हारि तैं पलटि पय्यौ नैननि पै बार-बार,
 बेधि कै करेजे अब करति अचन यहै,
 आधिऐ-चितौन के "उनीदे-नैन नोकदार"।

ॐ

आई केलि-मन्दिर तैं आँनद-सकेलि पुज,
 सौ छवि सखीन सुखदाई, सौति सोकदार,
 निरची निरच जग, जग ना जुवति जासी,
 अग-अग नख सिर सौभा सिन्धु थोकदार।
 "हनूमान कहति" अतोरुदार लक-लौनी,
 कचुकी कम्भी, कसमसे-शुच थोकदार,
 बड़े-बड़े कजरारे, रतनारे, मतवारे,
 सारन से, आरस "उनीदि-नैन नोकदार"।

ॐ

रति निपरीत में बिसोरी छवि धाई आजु,
 अगन अगन फी तिफाई पारु धौक दार,
 रस-भरसानो, रैनि केलि में बिहानी पा,
 अति-अरसानो रोनै उरज हसोक दार।

सुपरी सँवारी सोई, विथुरी कपोलन पै ,
 मुक्कि-मुक्कि भूँमें, मुख चूमें लट भौँकदार ,
 कच, कुच भार पै खुमार की सम्हारि नाहिं ,
 वार-वार भौँजति “उनीदे-नैन नौँकदार” ।



लाल उर माल निनु-गुन की रसाल, सोई ,
 अजन-अधर धन्यौ जात्रक जम्यौ लिलार ,
 पीक-लीक गालन अलीक छवि छाजै राजै ,
 चाल डग-भगी अग सिथिल लसै अपार ।
 पीत पट पलटै “फिसोरी” लट-पट-पाग ,
 अट-पट-रैन देखौ आरसी अजहुँ निहार ,
 लाए ही कहाँ तैं पिय-प्यारे ? अनियारे दोऊ-
 अरुन अमीसे ए “उनीदे-नैन नौँकदार” ।



जमुना अन्हान जात, देखी प्रात नौँसी-बाल ,
 भूँमति, मुकति, भिम्कति चाल भौँकदार ,
 आँचर सिकुरि जाति, घाँधरी बटुरि जाति ,
 धूँघट उघरि जाति, टोकै जौँन दौँकदार ।
 ज्यौँ त्यों आइ तीर, चीर न्यारे घरि वैठी “कृत्त”
 लागति समीर मुख सुलिगौ वँनौँकदार ,
 गड़िगे हिये में धीर नैकु ना जिणे री अव ,
 नजरि किए में वे उनीदे-नैन नौँकदार” ।

सडित-अधर, मुख-भडित सँकोच जापै,
 राजति अनत लौंच महिमा अटोकदार,
 नख-रेख चिन्हित, असेस कुच-कुभ जाके,
 छुटे धार चौ-दिसि प्रिराजै त्रिनु रोषदार।
 सारी-निसा जागो उठाँ प्रात "चिरजीव" भारै,
 अँगराइ अगनि दुराएँ पट भोरुदार,
 हूलति करेजै औ न तूलत हँ धान जापै,
 भूलत न नैकौ वे "उर्नादि-नैन नोरुदार।



बस धुप साधिणे न थोलिणे, सुसील-तात ? ,
 फरि हौँ इववार नाजु रैहौ मीह तार-थार,
 गए न वहाँ तौ फहाँ सिगरी धिताई रँणि,
 आण हौ प्रभात उर पैन्हि गुन-हीन धार।
 लखत जम्हात तुम्हँ, जात जरौ भेरौ गात,
 धात-नैन धारिण न, जोरौ फर धार-थार,
 येठौ रुग्-केरि मुग्ग सगमुख न भेरे परौ,
 छेदति दिणे हँ ष "उर्नादि-नैन नोरुदार।



कैसी धाँ-धाक पिहारी धाँधारी जाँउ,
 कैहँ न अहोम कादि ताग के न छुटे धार,
 मोदि हँ न काही मग गाग पुच्छा धी तेंरी-
 पदगी नदेस पै मुगोप-भाग धी सी धार।

कौन प्रिक जैहैं ना विन-मोल ही कपोलन पै ,
 लाल-लाल लौंगी-रेख पान-पीक की निहार ,
 करैगे न वेध काके हिए माहि छेदि प्यारी ? ,
 तेरे ए कटार लौं "उनीदे-नैन नौकदार" ।



सृग-भद गारे, मतवारे, रतनारे-तारे ,
 रज लखिहारे, मीन-मजु-कज सोकदार ,
 नत्र-रस भाव भरे, चाव भरे, लाज भरे ,
 राजति सुनीद भरे, भूपकत भोकदार ।
 विहरी प्रमोद-पगे, प्रेम-रंगे, जग-भगे ,
 चपल-चलाक चारु चमकत चोकदार ,
 आली अनुराग भरे, अजव-अनूठे आज ,
 देखे लाडली के ए "उनीदे-नैन नौकदार" ।



छविदार, ऐननि तैं अजत्र-अनौखी वीर ? ,
 निसद निसेखी रग-जात्रक रंगीले, वार,
 "कप्रि पचानन" सु दीरघ, रसीले वक,
 अति-सरमीले, कजरारे चारु रतनार ।
 कौमल-कमल हू सौं मैन-मदमौंते-राते,
 अजन विनाही कटे रजन, कुरग वार,
 ऐसे अनियारे-वारे चचल दरारे थारे,
 गजव-गुजारैं हैं "उनीदे-नैन नौकदार" ।

खडित-अधर, मुख-भडित सँकोच जापै,
 राजति अनत-लौंच महिमा अटोकदार,
 नख-रेख चिन्हित, असेस कुच-कुभ जाके,
 छूटे धार चौ-दिसि पिराजैँ विनु रोकदार।
 सारी-निसा जागी उठी प्रात "चिरजीव" भासैँ,
 अँगराइ अगनि दुराएँ पट भोकदार,
 हूलति करेजैँ औ न तूलत हैं वान जापै,
 भूलत न नैँकौ वे "उनीदे-नैन नोकदार।



बस चुप साधिए न बोलिऐ, सुसील-लाल ? ,
 करि हौँ इववार नाजु सैँहौ सौँह लाख-बार,
 गए न वहाँ तौ कहाँ सिगरी पिताई रैँनि,
 आए हौ प्रभात उर पैन्हि गुन-हीन हार।
 लखत जम्हात तुम्हैँ, जात जरौ मेरौ गात,
 वात-नौँन डारिए न, जोरौँ कर धार-धार,
 बैँठौ रुख-फेरि मुख सनमुख न मेरे करौ,
 छेदति हिए हैं ए "उनीदे-नैन नोकदार।



कैसी बनी-वानक विहारी बलिहारी जाँउ,
 कैहैँ न अहोस काहि नाग के से छूटे धार,
 मोहि हैं न काकौ मन माल-मुक्ता की तेरी-
 बहती महेस पै सुसील-भाग की सी धार।

कौन पिक जैहैं ना बिन-भोल ही कपोलन पै ,
 लाल-लाल लौनी-रेख पान-पीक की निहार ,
 करैंगे न वेध काके हिए माहिं छेदि प्यारी ? ,
 तेरे ए कटार लौं "उनीदे-नैन नौकदार" ।



सृग-भद गारे, मतवारे, रतनारे-तारे ,
 रज लखिहारे, मीन मजु-कज मोकदार ,
 नन-रस भाव भरे, चाव भरे, लाज भरे ,
 राजति सुनींद भरे, भूपकत भोकदार ।
 निहरि प्रमोद पगे, प्रेम-रंगे, जग-भगे ,
 चपल चलाक चारु चमकत चोकदार ,
 आली अनुराग भरे, अजव-अनूठे आज ,
 देखे लाडली के ए "उनीदे-नैन नोकदार" ।



छविदार, ऐननि तैं अजम-अनौखी धीर ? ,
 निसद निमेखी रग-जायक रंगीले, धार,
 "कनि पचानन" सु दीरघ, रसीले वक,
 अति-सरसीले, कजरारे चारु रतनार ।
 कौमल-कमल हू सौं मैन-भदमाँते-राते,
 अजन विनार्ही कटे रजन, कुरग धार,
 ऐसे अनियारे-वारे चचल ठरारे थारे,
 गजव-गुजारैं हैं "उनीदे-नैन नौकदार" ।

माँकी भूमि भटित करोया तैं भूमकि-वारी,
 भिन्नभिलि-जोतिन सौं भूपि-भूपि भौंकदार,
 “द्विज-गग” दरसति कलित कटाच्छ मानों,
 सान धरे साइक, बुझाइ निप भौंकदार ।
 गजन-गुजारै भ्यान-कोरन सौं काठि मजु,
 होते जो न पाहिरु पलक-पल रौंकदार,
 मनमथ-नेजे लौं करेजे कसकति अर्जों,
 नागरी के नरल “उनाँदे-नैन नौंकदार” ।



तासन सौं भूनौ खान-भान कै तिहारौ ध्यान,
 भ्रमति निहाल त्यों न कोऊ कहूँ रोऊदार,
 पोन पट, लकुट, मुकट, वन-माल कहूँ,
 डारि दीन्ही बॉसुरी, भुलानी गति भौंकदार ।
 “द्विज बलदेव” जू निचार इमि आपत है,
 पार है गयौ है उर मानों सर-भौंकदार,
 मन्द-हँसि वान सी कटाच्छ हरि केरे उर,
 मान्यौ मतवारी तैं “उनाँदे-नैन नौंकदार” ।



‘नसीले नैन तेरे हैं’

फज कुम्हलाने, मृग, मीन मुरझाने, सकुचाने—
 खरे-खज कनौ आवति न नेरे हैं,
 हार मान, डार खिर-झार गज भागे वन,
 मैन-सर बिलम निराम भे घनेरे हैं ।

केति कै विसाल, भूमिपाल देम देसन के,
 काम धम भए विनु-दामन के चरे हैं,
 ललित लजीले, अनलीले, चमकीले चारु,
 नैसुरु नुकीले ए "नमीले नैन तेरे हैं" ।



बोलति ढंगीले वैन अति-अरसीले आजु,
 हीरन के हार हालें, डर पै घनेरे हैं,
 "वैनी द्विज" सग में कियोँ है रति-रग यातें,
 अग में अभूखन लखाति बहुतेरे हैं ।
 अजन पिना ही मद-भाजन हैं रजन के,
 अरुन अमोल-डोरे आस-पास घेरे हैं,
 पोसे मद-माल के, अनौंसे-नौंकदार चोरे,
 कीले मैन मत्र के "नसीलं नैन तेरे हैं" ।



सु छवि छरीले, जररीले, अरबीले कोर-
 वान ढरकीले, परमीले सुति हेरे हैं,
 रगन रंगीले लखि मैन सर ढीले भए,
 याही तैं न हीले वे लजीले जानि मेरे हैं ।
 रुज, मृग, मीन, अलि, पीले भडकीले रहि,
 पानिय दरीले, रिपलीलं भए चरे हैं,
 चटकीले, मटकीले, नीले औ नुकीले सन,
 प्यारी सरमीले री "नमीले नैन तेरे हैं" ।

नीके-अनियारे, भारे परम-उमग वारे,
 अति-कजरारे, ऐमे में न आँन हेरे हैं,
 मृग-टग, मीन, सर-भेन के चकोर अली,
 तिरछी चित्तौन सौं किए सत्र घेरे हैं।
 “चन्द्रकला” पीतम के भूखन प्रसन देखि,
 मन हरि लेति मॉहि, चाँह के चचेरे हैं,
 अति गरनीले, कज, रजजन करन डीले,
 सेत, रक्त, नीले, ए “नसीले नैन तेरे हैं”।



आठों जाम णेठे रहैं वैठे पूतरी के बीच,
 पैठे जाति साहन हिए में हेरि डेरे हैं,
 चचल, चलाक, चटकीले, चक चौधा ऐसे,
 चाह सरसार्थें चित्त चौगुने घनेरे हैं।
 साँझू सनेरें नित नेरे ही बसेरे डारि,
 “भनि बलभद्र” वने दामन के घेरे हैं,
 घेरे हैं धनिन कौं अहेरे करि जेरें करैं,
 केरें देति मधु से “नसीले नैन तेरे हैं”।



सुखैं देति सौतैं, सत्रै कुटिल फटाच्छ फूँक,
 रसिक तिलौकैं होति निकल घनेरे हैं,
 मरैं नाहि मारैं थके गारुड विचारे मारि,
 जत्र, मत्र, एकहू न मानति अनेरे हैं।

सिन के सहाइ, बाँधी-घूघट विहाइ घेगि,
 धावति सुतत्र फेरि फिरत न फेरे हैं,
 नीले-नीले चीकने नुर्काले, गरबीले अरी,
 पन्नग-समान ए "नसीले नैन तेरे हैं" ।



वारि जात वारि-जात, कानन-कुरग भे,
 कुरँग चक-चौंवे चरष विकल घनेरे हैं ।
 सजन रिक्तावन हैं, सजर लजावन हैं,
 मान-मन तावन, मनोज के वसेरे-हैं ।
 तीसे अनियारे, "हरदेव" प्यारे प्यारे सेत-
 स्याम, रतनारे दौड काम-दाम घेरे हैं,
 पचल-चलाके, बाँके भाँते हैं कजाके, नाके,
 मैन मुरा धाके "नसीले नैन तेरे हैं" ।



दग जुत अजन हैं, मृग-मद गजन हैं,
 फजन कुटिल मान, सजन निरेरे हैं ।
 मजुन रमीले, मधुमँते, गरमीले चारु,
 चपल छमीले, चित्त-चोर चार घेरे हैं ।
 चितवतही चितवत विहाल होति "हरदेव",
 हाँइ हाइ त्रिनु 'दाम-काम के फरेरे हैं,
 देति मैन-सैन फाट, देति भल चैन यह,
 अधखुले पँने ए "नसीले नैन तेरे हैं" ।

अधिरु-अनोंसे, अनियारे, कजरारे बने,
 देखे ना सुने हैं अब ऐसे कौन करे हैं,
 देखि दृग-दमक दिवाने से अनेक रहें,
 नीचे कौं निहारे किए कितेरु घेरे हैं।
 “गोविन्द सुकृति” बडभाग रिक्कार तेरे,
 धन-मन लैन हेतु हरखित हेरे हैं,
 मुकि-भकि, भूमि-भूमि घूमि घूमि चोट करें,
 वीर-रस माँते ए “नसीले नैन तेरे हैं”।



छत्रिके छत्रीले चारु, चचल सजीले चित्त,
 गति-भडकीले जनु मैन मेघ घेरे हैं,
 अति-गरबाले, लीनों मत-गजनीले फज,
 रग सौं रंगीले, जनु रूप-निधि खेरे हैं।
 प्यारे-चटकीले, बसु रुचि मटकीले मन,
 मुनि मटकीले मनु जाल काम करे हैं
 सक्ति स्रकृतीले जुग-रूप के हटीले तन,
 मन सटकीले औ “नसीले नैन तेरे हैं”।



मौन जिन दौन किए, मृग-पति हीन किए,
 पकज मलीन सिर सरतन गेरे हैं,
 नरगिस-झौन सोर अलि अक्लीन किए,
 धनिक अधीन किए, सजरीट घेरे हैं।

भट बटभार तन, मन, धन लूटि वे कौं,
 जाहिर जहाँन आँन ऐसे में न हेरे हैं।
 “सु कनिगनेस” की सौं जैसे सानदार एरी ?
 तीच्छन-नुकीले ए “नसीले नैन तेरे हैं”।



स्याह सुरमीले, चटकीले, भटकीले, पैंने,
 तीर से नुकीले हैं, मजीले हैं, अनेरे हैं,
 छविन छबीले, कामकीले, सुरखीले और-
 जवन-जतीले, धनी-वन के लुटेरे हैं।
 गुन-गखीले, सज-धजन सजीले रति-
 रँगन रँगीले धोले ऐसे में न हेरे हैं,
 “सु कनिगनेस” की सौं जैसे नचकीले एरी,
 चचल छर्बीले ए “नसीले नैन तेरे हैं”।



लाखि अरुनाई पाई कज करुनाई, मीन-
 पेदि चचलाई मृग मान-भग हेरे हैं,
 छेदि उर जाति, गात-गनिका त्रिलोक तेरी,
 मेरे सैन धैन घेघे बाँन सौं सनेरे हैं।
 “चेत कनि” भाखैं नैकु आवति न चैन मैन,
 मोंते मनौ मदक-भजाते तन घेरे हैं,
 सुन्दर सजीले चमकीले ए रमीले सैन,
 सोभित नुकीले औ “नसीले नैन तेरे हैं”।

ऑर और कविगण

डोलति सनेह भरे, तिरछी-चित्तौन भरे,
जालिम जुलुम भरे, पानिप के हेरे हैं,
जादू भरे मूँमति मुकति महराति हैं री ?,
मृग-मद त्यागी किए वन में बसेरे हैं।
कज्जल तें कलित, दलन महि-पालन के,
पारथ, मृगेन्द्र राह चलति किए घेरे हैं,
मैन-मत्र कीले हैं, रसीले हैं, रँगीले हैं री,
मद भरे घूँमति "नसीले नैन तेरे हैं"।



सोहत-सर्जीले, सित असित सुरग अग,
ताके मधि अजन अनूप छवि हेरे हैं,
चचल चलाक चारु चोपन चटक भरे,
चमकें चमकें लरि सजन निवेरे हैं।
लपत असीले, सुरमीले औ अटीले नहिं—
बचत रसील-छैल आए गैल फेरे हैं,
"कहैं कलाधर" खुले लालच-गहीले लाल,
गजब-गसीले ए "नसीले-नैन तेरे हैं"।



करति कजाकी कजरारे-नैन कोरदार

फिर-फिर दौरि-दौरि चचल चलत चारु,
चौगुने चलाक चाह चकित चिकोरदार,
अटके से देखियतु अटके रहैं ना नैकु,
हटकि न मानैं, हठि लीन्ही गहि जोरदार।

“रसिक विहारी” जुग सरस-रसीले मंजु,
 निपट कटौले, कठि जात घेधि सोरदार,
 अति-अनियारे, अरुनारे, रतनारे तेरे,
 “करति कजाकी कजरारे-नैन कोरदार” ।



अजन अनुरा धारी, वरुनी हँ तीर कारी,
 तामें लाल-जाल लसै लाल-ताल डोरदार,
 पलक पनाह कारी, स्यामता सनाह धारी,
 सैन-सेता तीखी-चितौन चित-चोरदार ।
 सैन-मद पी कँ, नैन-नद में सनद वैठी,
 पूतरी महा-भार मूरति मरोरदार,
 प्रेम के पथिक पथ-श्रीति के चलति जैसे,
 “करति कजाकी कजरारे-नैन कोरदार” ।



मौन, मृग, रजजन, गिमान भरे सैन-दान,
 अमित नसीले सरसीले सुधि जोरदार,
 अजब-अदों के भरे, छहरि-छवि-छाक भरे,
 नूतन-छशीली भरे, छवि भरे छोरदार ।
 “रसिक कहँ” आन भरे, सान भरे, स्यान भरे,
 कछुक-अलसान भरे, भातहि मरोरदार,
 लाज भरे, लाली भरे, लोभ भरे, ललित-लाल,
 “करति कजाकी कजरारे-नैन कोरदार” ।

एहो प्रान-प्यारी ? लट-कारी, सटकारी यह,
 डुरति कपोलन पै अति-मुक्ति जोरदार,
 तैसीही सुहाई है सजाई माँग मौतिन सौं,
 जैसीही बनाई दृढ अजब-मरोरदार ।
 आली री निराली छनि-पान की दिखाई देति,
 लेति मन-छोर अरी दर-वस डोरदार,
 चन्द सौ मुखारविन्द "केसव" अनमोल-
 ता पै "करति कजाकी कजरारे-नैन कोरदार" ।



केसर-कलित, पिचतौरिया, ललित-लाल,
 लहँगाहू लसति लक-लौने पै घोरदार,
 जग-भगे जरित-जडाऊ पग पाइजेव,
 पकज-प्रभानि प्रभा पाँवडे गडोरदार ।
 "सदाँनद" सुन्दर सघन-धुँधरारी-कच,
 कचुकी पै डारे अहि-कारे मनौं फोरदार,
 ऐँडदार ऐँननि, मरोरदार, तोरदार,
 "करति कजाकी कजरारे-नैन कोरदार" ।



'एक-एक शौख तेरी लाख-लाख तोड़ा की'
 चचलाई मीनन की लई छीन भौतिन सौं,
 सुरमई-लगाम लै उछालैं लेति घोड़ा को,
 "धैनी द्विज" रज्जन के गजन गुमान हारी,
 छनि ना लही है मृग-नैन यह जोड़ा की ।

कजन से अजन विनाहीं सोभा सौगुनी हैं,
 नजर करें हैं चोट चोरी खास कोडा की,
 सौतिन के मनहीं मढोडा देंवारी आली,
 "एक-एक आँख तेरी लाख-लाख तोडा की" ।



कहाँ लोंबरानों बाकी लाज भरी आँखिन कौं,
 आन भरो, स्यान भरी ललित सु होडा की,
 मीन जल जाइ दुरे, खजन खिसाइ गए,
 मृग, घकोर, कज नैकु सर न लहैं जोडा की ।
 देखति हीं वेधैं उर, काम की किलोल करि,
 कलित सु काजर सौं जगत मँमोडा की,
 सुन्दर, सलौनी, सुचि सहज-लुनाई भरीं,
 "एक-एक आँख तेरी लाख-लाख तोडा की" ।



‘खूबी खंजरीटन की खाम करियतु है’

हूयीं परी नीर में मलीन मन है कै मीन,
 कजन कुलीन हू निकाम करियतु है,
 "वैनी द्विज" मृग मद-गारेसे पराने धन,
 चाहता चकोर की तमाम करियतु है ।
 ऊरी परी नरगिप्त, निराली कुज-ओटन में,
 बारी जासु ऊपर बदास करियतु है,
 देखि-देखि तेरी आँखियाँ की अजूबी प्यारी,
 "खूबी खंजरीटन की खाम करियतु है" ।

लसत स पानि तीच्छ-धारें सरसान महा,
 मनमथ-धान कौ गुमान गरियतु है,
 भारे अनियारे, देखि तरल तरारे ए,
 सु लच्छनीन तारे, मीन ही भरियतु है।
 मृग घन लॉन, जोति मौँतिन की खीन करी,
 जलज नरीन, जल-धाम धुनियतु है,
 "मान निधि" आजु की अजूबी लखि नैननि की,
 "खूबी खजरीटन की राम करियतु है"।



'मैन के खिलौना हैं'

करति किलोल स्तुति-दौरघ अमोल लोल,
 छुएँ दृग-झोर छनि पावति तरौना हैं,
 नाहिँन समान उपमान आन "सैनापति"
 छाया वछु छुवति चकित मृग-छौँना हैं।
 स्याम हैं वरन, ग्यान ध्यान के हरन मानौँ,
 मूरति ज्यौँ धारें वसि-करन के टौँना हैं,
 मोहति हैं करि सैन, चैन के परम-ऐन,
 प्यारी तेरे नैन, ऐन, "मैन के खिलौना हैं"।



फाजर तैं कारे, अनियारे डारे मतवारे,
 कमल डरारे किधौँ अमृत के दीना हैं,
 सजन सँवारे किधौँ सजर सरसान वारे,
 कैधौँ मन-भौँहन के मन के हरौँना हैं।

रूप-जल भारे, रसवारे, डग-भगत हैं,
 नवल-दुलारे किधों मृगन के छौंना हैं,
 मदन निहारे, पछी सीख दें हारे आली,
 तेरे नैन, ऐन, मानों "नैन के खिलौना हैं" ।



‘जहाँ-जहाँ देखें तहाँ जीति-जाति डारे हैं’

आछे कजरारे, रतनारे री ? सजीले दीह-
 हरिन के हारे खालो एकुरग कारे हैं,
 नेह-रँग छाके, सजे सजल-अदाँ के री,
 अनग-सर थाके री सरस अनियारे हैं ।
 “दास कहें” लाल नन्दलाल के रिभैया-
 चिलिगन के सहैया, सिरताज री निहारे हैं,
 कैसे ए सजीले-नैन देखेरी लडैती जू के,
 ‘जहाँ-जहाँ देखें तहाँ जीति-जीति डारे हैं’ ।



आछे अनियारे, चटकारे, कारे, कजरारे,
 मृग डग कारे अरी ? ए तो रतनारे हैं,
 चचल, छवीले, रग-जावक रँगिले चारु,
 दीरघ रसीले रस-राते सुकमारे हैं ।
 नैन मद माँते से उनीदे से रहति नित,
 मुकि मुकि उघरति चकोर मतवारे हैं,
 अजन अनूठे-नैन देखे प्राण-प्यारी जू के,
 “जहाँ-जहाँ देखें तहाँ जीति-जीति डारे हैं” ।


‘कजरारे तेरे नैन हैं’

दियहर लेति हैं निरुई के निकेत हंसि-
 धेति हैं सहेत निरप्रति करि-सैन हैं,
 धौना-हरिनीन-दृग होते अति नौके लगै,
 हरति हैं दरद करति चित चैन हैं।
 चाँहति न अजन, रसि-जन रजन हैं,
 रजन सरस रस-राग, रीति ऐन हैं,
 दीरघ डरारे, अनियारे नैकु रतनारे,
 कज से निहारे “कजरारे तेरे-नैन हैं”।



स्याह, सेत, अरुन, अतोल-लोल, गोल-गोल,
 लाज के जहाज करै कोटिन सौं कैन हैं,
 हारे हेरि हरिन किनारे गहे कानन के,
 रजन सिसाने जाइ कीन्हौं तरु-ऐन हैं।
 कज कोर राइ कीच घाइ धरे आइ-आइ,
 लहति घरी ना कहूँ रैनूँ कौं चैन हैं,
 कठिन-कटारे से अनेक नौक-भौंक हारे,
 करता सुधारे “कजरारे तेरे-नैन हैं”।



समस्या पूर्ति 

सर्वैया

सवेया

आँख लगँ नहीं आँख जो लागँ,

आँखिन आँसु लगँ जय तँ, आँखियाँ लों आँखें नहीं अनुरागँ,
 "ह तिल" वे आँखियाँ के ध्यान में, आँखिन के भिस जाव हैं जागँ।
 आँख वे आँख हैं आँखिन के, आँखियाँ तँ सूझति आँखिन आगँ।
 आँखिन के बस आँसु करी छिन "आँख लगँ नहीं आँख जो लागँ।"

आँखियाँ के लगँ घर ही बन होति, सो आँख लगँ निमि-बासर जागँ,
 आँख लगँ सब-लोग हँसैं अरु आँसु लगँ घर छोड कैं भागँ।
 आँख लगँ कछु सूझ परै नहिँ, आँखि छिनै-छिन आँख कों मागँ,
 आँखि आँख दुखी भई आँख सों, "आँख लगँ नहीं आँख जो लागँ।"

सोचति ही निमि-घौस सिराति, प्रिमोचति-बारि रहैं दुख-पागँ,
 भूलैं नहीं उर-अन्तर सों, कछु मतर सौ जब तँ करि भागँ।
 को इनकी करनी वरनै, इनतै जग, जोगी, जती अनुरागँ,
 लाखन राखि लगाएँ फिरैं, छिन "आँख लगँ नहीं आँख जो लागँ"।

‘आँखियाँ-दुखियाँ नहीं मानती हैं,

ए सग मैं लागी ही डोलैं सदाँ, निनु देखैं न घीरज आनती हैं।
 छिनहूँ जो बियोग परै "हरिचद" तौ चाल प्रलै की सु

चरुनी में फिरें न झुपें, उझुपें, पल में न समाइ बौ जानती हैं,
पिय-प्यारे ? तिहारे निहारे बिना “आँखियाँ-दुखियाँ नहीं मानती हैं” ।



व्यापक-ब्रह्म सनै थल पूरन, हैं हम हूँ पहिचानती हैं,
पै बिना नँदलाल, मिहाल सदाँ, “हरिचन्द” न ग्यानहिं ठानती हैं ।
तुम ऊर्जा ? यहै कहियो उनमाँ, हम और कछु नहिं जानती हैं,
पिय-प्यारे ? तिहारे निहारे बिना “आँखियाँ-दुखियाँ नहीं मानती हैं” ।



सब सक तजो गुरु-लोगन की, कुन-कॉनि की आन न आनती हैं,
करि कोटि-उपाइ बुझावै कोऊ, अपनी इक टेकहि ठानती हैं ।
“परमेसजू” और न जानै कछु, एक प्रेम कौ पथ पिछानती हैं,
पिय-प्यारे ? तिहारे निहारे बिना, “आँखियाँ-दुखियाँ नहीं मानती हैं” ।



एकुही गाँव में वास सदाँ, घर पास इहौ नहीं जानती हैं,
पुनि पाँचदें, सातणै आवति जाति कि आम नहीं चित आनती हैं ।
हम कौन उपाइ करें इनकाँ, “हरिचन्द” महा-हठ ठानती हैं,
पिय-प्यारे ? तिहारे निहारे बिना, “आँखियाँ-दुखियाँ नहीं मानती हैं” ।



‘लाज की आँख जहाज तैं भारी’

लगर की नहिं एकी चलै, गति रोक सकै नहिं कोऊ रिचारी,
त्यौं पवनार अनन्त भुरै, सऊ आपनी चाल न छोड़ति न्यारी ।
साप लहै उमड़ै इहि तैं, अहो आँसू-नदी नद, सागर वारी,
अदमुत कौतुक है “अवधेस” ए “लाज की आँख जहाज तैं भारी” ।

कनहूँ ढिंग बदर है, कनहूँ अति-दूर है चचलता अनुसारी,
 मतवार बडो, गुनवार बडो, "अवधेस" सुदेस बसावति भारी।
 बहु पानिप लावनिता की तरग, अभग सहै भव सिन्धु तैं न्यारी,
 पर तारनकों करतार कियौ यह "लाज की आँख जहाज तैं भारी"।



‘खुले खून करै दस-बीसन के’

चले राखति रूप न राहिन के, पल-पानि महागत धीसन के,
 डरे दाहति दूह प्रिवेकन के, हरे ग्यानिन के गढ पीसन के।
 गजराज मिलोचन धारे प्रिया, हुकुमी नहि ए अमनीसन के,
 बंधे, लाज-जँजरीन, चून करै "खुले खून करै दस-बीसन के"।



मुकि मूमै, मुकै, उभकै, न रुकै, बहु बीर किए तिन सीसन के,
 उतराँ हैं महावत मैन-सत्ता, खुले केस हैं छौना फनीसन के।
 "कमिजीत" सुरासुर, जीते सत्रै, छुटि जातहैं ध्यान मुनीसन के"।
 मतवारे मनौ दग कुजर से "खुले खून करै दस-बीसन के"।



यह हैं मृगराज की वानि धसे, बन-बीच गुहा में गिरीसन के,
 गजराज कौ कुभ निदारि "सरोज जू" मौँती निकासति सीसन के।
 जद जाल में आइ फँसै कवहू, गरजै बस में परि रीसन के,
 बंधे तोरन चाहति हैं पिंजरा, "खुले खून करै दस-बीसन के"।



तरवार अनी, घरछी की घनी, जै हेतु मनौ दस-बीसन के,
 "अलकेस" त्यौ पैनी-कटार विदारन हार सु हीय मुनीसन के।

सजि सोहति एकहि घूघट-भ्यान में, गाहक घाइल-सीसन के,
वचरी अरी ? नैकु नकाव टरै, "खुले खून करै दस-बीसन के" ।

❀

रतनारी-तिहारी तिरछी तकै, आँखियाँ इन रक, रईसन के,
हिऐं घाव करै कवि-फोनिद फारसी औ अंगरेजी-नबीसन के ।
पुनि और की बात कहौ लौ कहौ, छुटि जात है ध्यान मुनीसन के,
नहि घूघट में दत्रि चोट करै, "खुले खून करै दस-बीसन के" ।

❀

अति बाँके, लड़ाके, सु छाके-सुरा, जनु हैं गढपाल, महीसन के,
अनियारे दोऊ रतनारे लसै, मन-बेधन हार मुनीसन के ।
"कहै मगल-दीन" तिया दृग-धान, गुमान हरैया पचीसन के,
मुकि भूमै, मुकै, भँभरी तैं भकै, "खुले खून करै दस बीसन के ।

❀

मारति हैं मद मीनन के, मृग के दृग मान न मीसन के,
पकज की दुति फीकी करै मन मोहै महान-मुनीसन के ।
चोखे कटाच्छ "महेस भनै" किम जोर चलै न कवीसन के,
मानौ कही दृग-खोलौ नहीं, "खुले खून करै दस-बीसन के" ।

❀

धर-रजन गजन, मीन सदाँ, मन रजन मजु कनीमन के,
अति-तीरन फाम-नराच समान, सु मौहन-हारि मुनीसन के ।
आँखियाँ ए तिहारी अनूपलली ? विरचौंनिधि लालहि दीसन के,
विपरीत बनी वरु घूघट तैं "खुले खून करै दस-बीसन के ।

रुदु कारे, अन्यारे हत्यारे-महा, चटकारे लखौ दस-दीसन के,
नि चचल, चीकने घोखे चुभै, न रहै सुधि सिद्ध-मुनीसन के ।
बेख वारे, सुधारे विरजजन से, "कहि मानहुँ" वीर कगीसन के,
न नैन अनारिन न्याउ नहीं, "खुले खून करै दस-वीसन के" ।



करे पट-धुँघट-साँकरि माँहि, तऊ "वलभद्र" फिरै छन के,
स, मैन-महावत के न रहै, ढहै लाज दराज-दुरेगन के ।
मद-माँते मतगज-नैन तेरे, सम भूमै मुकै उमकै घन के,
बुनसाने अरे अति खूनी खरे, "खुले खून करै दस-वीसन के" ।



ए दग याके दुरै अग ना, न मुरै ढिग मानी-मुनीसन के,
श्रीचक ही उरमै, सुरमै, न मरै नहिं खास गवीसन के ।
शीर निपोर नजीर नहीं, सु-मती सुभ-धीर कगीसन के,
जौं जहाँ हीं तहाँ हीं जुरै, "खुले खून करै दस-वीसन के" ।



बस-चचल चातुर ए न कहूँ ? , बस हँ वरदान मुनीसन के,
करि लास मैं चोट, चितै चित चौंकि अचानक लेति छतीसन के ।
"कवि आतम" चच्छु मृगच्छु सौं सुन्दर, हँ भरे भूरि असीसन के,
पट धुँघट-ओट सपोट रहै, "खुले खून करै दस-वीसन के" ।



मृग, सजन, मोन दुरात फिरै, अस हाल भए सब दीसन के,
निन छरा, छुरी, विछुआ, बरछी, किए घाइल अग विरोसन के ।
विरछे अनियारे, कजाकी भरे, लगै छूटति ध्यान मुनीसन के,
धिये ? नैन हँ धान, सहाइ तेरे, "खुले खून करै दस-धीमन के" ।

मृग से, अरु मीन से, राजन से, दृग पाए अली ? घर ईसन के, वरछीन सी, तीर सी, नौकें लगै, न कहै कहि जात कमीसन के "सुगजेन्द्रजू" और को कौन कहै, लगै आसन छुटति मुनीसन के पट-धूँघट ओट सों चोट करै, "खुले खून करै दस मीसन के"।



नैन-श्रुपान रचे त्रिधि सुन्दर, जान वच्यौ सुर-ईसन के, फज से, राजन से, मृग से, लखि छुटति ध्यान मुनीसन के। जासौ वच्यौ न कोऊ तिहि-लोरुहि, ग्यान तैं तुच्छ जुगीसन के, म्यान पलक मैं बन्द रहै, "खुले खून करै दस-त्रीसन के"।



बीसन के उर-सालति हैं, तन लागति नैन तिरोछन के, तिरोछन-नैन लगै जन ही, तन छुटति ध्यान मुनीसन के। मुनीसन और रिखीन सत्रै, नहि भाजि बचै लगै ईच्छन के, ईच्छन "राम-अधार" खुलै, "खुले खून करै दस-त्रीसन के"।



‘अखियो-रिभवारन पैड़ परी हैं’

आवै घरी ज्यों भरी ही घरी-घरी, देखति रूप रहै उघरी हैं, मुँदी मुँदै नहि, हँदै ही मारति, बावरो रीभि के रग भरी हैं। टारी टरै न डरै "नागर" ए, परै अररानी अमाँनी खरी हैं, जाति नहीं रखियोँ सखियोँ "अखियोँ-रिभवारन पैड़ परी हैं"।



देखति ही अटकी उत ही, हठकी नट-नागर सौं न टरी हैं, ज्योंही घरीक न देखै हरी ? तौ खरी असुवाँन की पारै करी हैं।

मोहू की है करि मोसों सखी ? न रहैं री अरि है कैं अरी हैं ,
जात नहीं रखियाँ सखियाँ "अखियाँ रिक्कारन पैड परी हैं" ।

ॐ

रूप की रीकि में भोजि गई अति, रीकि ही रीकि में रीकि भरी हैं ,
रीकि-नदी उमडी रहै ढोठ में, लाजहु रीकि गरीं सगरी हैं ।
आपुन रीकि, रिक्काई है मोहू कों "नागर" मो-मति रीकि ढरी हैं ,
जाति नहीं रखियाँ सखियाँ "अखियाँ रिक्कारन पैड परी हैं" ।

ॐ

भौति किती समुझाइ रही पै न भौनति ए उनमाद भरी हैं ,
नाहीं रहैं उररैं उत जद्यपि, लाज-जँजीरन सों जकरी हैं ।
"नागर" रूप की रीकि कैं चावरी ? है लड-चावरी सी प्रियरी हैं ,
जाति नहीं रखियाँ सखियाँ "अखियाँ-रिक्कारन पैड परी हैं" ।





परिशिष्ट

परिशिष्ट

'गणेश जी के नेत्र'

सुभग-सलौने, मन-मौहन मुनीसन के,
सोभा के सिंगार, रानि-सुधर अनन्ता के,
"बैना द्विज" विघन पिनासन, प्रिनोद-कारी,
भारी दुख-हारी, निज दसन दिगन्ता के।
दीन-दुख-मोचन, -द्वोचन वनुज प्रन,
ध्याप्रति सदों हीं जाहि जनक जयन्ता के,
मिख सिरताज, आले-आलम निवाज,
ऐसे बन्दों जुग-नैन गनराज-शकदन्ता के।

७

सज्जित है कैं मनै मन ही, मृग जाति चले बन-मारि जकन्दन,
सजन हू खिसियाइ गए, उडि बाम कियौ निज-पास परिन्दन।
मान मलीन है नीर गई धँसि, पकज पक परे बहु-फन्दन,
धारिहु धारिहु-शोर गए लुकि, देखि तेरे दृग गौरी के नन्दन।

८

'विष्णु-भगवान के नेत्र'

कैयों लाल-रेसम के जाल में फँसे हैं, राज,
कलिका-सरोज में मतिन्द किधों मडरानि,
कैयों चद-मडल में पीवत-पीयूष वैठे,
जुगल-चकोर के किशोर मन-मोद मानि।

कैधों कामदेव जू के सपुट-नगीना धरे,
थाके ताके सम में "सुमेर सिंह" दै प्रमानि,
प्रेम-रस चारे मन-मोहे न का के देखि,
नैन कमला-पति के ऐन-सुरमा के खानि ।

ॐ

"सभु" मन भाए लागै, सदिव सुहाए सभै,
सुन्दर-सलौने-लौने अभित गती के हैं,
मारति, जियावति, मचावति अनेक-रग,
भग के करैया मान रति के पती के हैं ।
कज, रज, मृग, चकोर, मीन वारि-वारि होवि,
"तेज" ना बराने जात बाहर मती के हैं,
चैन सुख पूरन, दिवैया निज-दासन कौं,
आँद के ऐन नैन-कमला-पती के हैं ।

ॐ

लक्ष्मी जी के नेत्र

सुनति भ्रमोंके त्यों छमों के भूरि भूखन के,
सागर-छमाके, सिद्ध चौकति भ्रमा के हैं,
जात ही छपा के, उठि पौरति छपा के अग,
आवति छपा के जैन छाके छत-छाके हैं ।
काइल-कुजा के, बसुधा के फीर धाँके, ओठ,
चखति सुधा के ए मजा के विभ्र पाके हैं,
"नन्द राम" ताके दग, ताके हैं मृगा के कहाँ,
कौन समता के, जैसे रमा के नैन बाँके हैं ।

५

रामचन्द्र जी के नेत्र

लाल-लाल-डोरे कज-दल दुति तोरें लेति,
 जग चित्त-चोर मनौं मैं ही के ऐन हैं,
 मीन-छत्रि-छीन, मृग-सावक अधीन,
 रजरीट बल-हीन लखि होति जाहि चैन हैं ।
 चम्पित चकोर मन, मुनिन कौं भौर स्याम-
 रग ही सौं घेरि यौं "प्रिहारी" सुख-सैन हैं,
 काटें दुख-द्वद फद, आनंद के कद बृद,
 रस के प्रवध रामचद जू के नैन हैं ।

ॐ

अजब-रसीले, समसीले हैं सुसीले कज,
 रजन हंसीले मीन-भजुल-भरोर के,
 सुजन असीले, उर-अन्तर बसीले प्रेम-
 मादक-नसीले हैं, जसीले चित्त-चोर के ।
 कनिन के बैन तैं न उपमा बनै न देंन,
 "वैजनाथ" नैन चैन देंन दया-कोर के,
 और हैं न नैन, लोक हेरे निज-नैन,
 जैसे हेरे हम नैन, नैन कौंसल-किशोर के ।

ॐ

सील के समुद्र, सुख-मन्दिर कृपा के कुज,
 सुखमों की सीवों सम सरद-सरोज के,
 फौमल अमल चारु चातुरी चटक भरे,
 जोहति हरति मन मोहति मनोज के ।

सुचिता, सुगन्धता वरानै ऐसौ कौन कवि,
 अरुनसितासित सँवारे विधि चोज के,
 “वदत गुलाम-राम” राम-नैन अभिराम,
 चीकने, रसीले, वडे-दाँनी महा-भोज के।

ॐ

डोरे-रतनारे, बीच कारे और सारे सेत,
 जिनके निहारति कुरग-गन भूले हैं,
 आनँद-अमद ऐसौ मानौं विधु-भडल में,
 सारदी के रज्जन सुभाँति अनकूले हैं।
 जनक-सुता के मुख चद के चकोर किधौं,
 वरने न जाति छवि उपमा अतूले हैं,
 राजें राम-लोचन, मनोज अति अोज भरे,
 सोभा के सरोजर सरोज-जुग फूले हैं।

ॐ

मीन धुज मीन, कज, रज्जन, भृगन-टग-
 गजन मटै के दरसात सुठि-सौने के,
 आनँद-जनक अति, छिनक निहारति ही,
 बनरु-अनूप मानौं करन हैं टौने के।
 जुगल-मनोहर त्रि-देव हूँ जुगल-नैन,
 जोहति छकावैं चैन ऐसे छवि भौने के,
 कौने विरचे धौं विधि-सृष्ट में न होनहार,
 लोयन-सलौने अति कौंसला के छौने के।

मैंन की मरोरी, चैन चौगुनी चभोरी-भोरी,
 तीच्छन-कटाच्छ-सैन सील घर-लाज के,
 ऐन्दार, सैनदार कोर औ मरोरदार,
 कारे कजरारे, अरुन सुस्वमा-समाज के।
 सुन्दर सलौन्दार, अगन के सरदार,
 "राधौ भने" वार-वार भाँवते-मिजाज के,
 रमा के सदन, चारु मदन मसाल जोति,
 चचल चलाके नैन-त्राँके रघुराज के।



एकु ही कमाँके सैन मैंन के सनाके होति,
 औचक चलावै चोट चीकने चमा के हैं,
 चायन चलाक चारु किम्मत कही न जाइ,
 हिम्मत हरति हठि जाके ओर ताके हैं।
 सान धरे अदभुत, कृपान से कहे न जाँइ,
 धान तँ विसेस, "राधौ" बेस बर बाँके हैं,
 कोयन कनैटिन लौं बदलत वार-वार,
 उधरे परत नैन राम जू लला के हैं।



जानकी जी के नेत्र

नैन अनियारे तारे पुड़रीक पान सारे,
 सिय-भूतरीन पै द्विरफ-गन वारे हैं,
 कछु कजरारे, सील-सागर सुधासे धारे,
 बरुनी-त्रिसाल धारे जोर छोर वारे।

दीन पै सनेह वारे, पीतम के प्रान-प्यारे,
 उपमा न पावति निरचि पचि-हारे हैं,
 मीन, मृग, रजजन बनाए निधि "प्रेम-सखी",
 वारि, वन, व्योम वसेँ लज्जित विचारे हैं ।



मीन अति-चचल अधीन जल हों में रहें,
 जल तैं निहीन तन त्यागत अचैन हैं,
 रजजन तो रग मन-रजन हैं तैसे करैं,
 गजन के जोग मद भाँखें कवि वैन हैं ।
 मृग पसु जेते दृग समता न लाइक हैं,
 ताही तैं सदाँ ही किए कानन में ऐन हैं,
 रामचद हेरिऐ तौ लहत अनद-कद,
 मेरे जान इन्दी-वर ऐसे सिय नैन हैं ।



संयुक्त-नेत्र वर्णन

दोहुन के बाँके-नैन, दोहुन के देखि थाके,
 दोहुन के हॉन उपमाँ के सोभ-साके हैं,
 कज, मीन नाँके भरैं, प्रेम के सुधा के मद-
 करन मृगा के न गिरा के न उमा के हैं ।
 "भरैं रघुराज" अनुराग के मजा के मटे,
 काके समता के एक-एक छबि-छाके हैं,
 मेरे-मनसा-गुनेक हॉन मृखा के वैन,
 सील-करुना के कहु-अधिक सिया के हैं ।

कृष्ण-कमलाक्ष वर्णन

जीत भरे, जोत भरे, जोवन के जेव भरे,
 भोर-भरें होति जैसे वारिज विहान के
 दया भरे, मया भरे, हीया भरे, हौंसी भरे,
 सोभा के समान भरे जीवन जहाँन के ।
 लाज भरे, काज भरे, अति ही पुनीत चारु,
 मसि हू की सील भरे, तेज भरे भान के,
 सुधा भरे, रस भरे, मैन भरे, मान भरे,
 ऐसे दोऊ-नेन लसे साँरे-सुजान के ।



मीन, मृग, राजन रिमान भरे मैन-वान,
 अधिक-गिलान भरे कज कल-ताल के,
 राधिका-छबीली के छैल छत्रि छाक भरे,
 छैलता के छोर भरे, भरे छत्रि-जाल के ।
 "गालकत्रि" आन भरे, सान भरे, स्यान भरे,
 कछुक-अलसान भरे, मान भरे, माल के,
 लाइ भरे, लाज भरे, लाग भरे लोभ भरे,
 लाली भरे, लोचन ललौंहे नदलाल के ।



खजर, कटारी, कुद कैबर फरद नेजे,
 मद करि कोरें कला सम गन सान की,
 "लक्ष्मीराम" स्यामवाई सगमी सुरग सेत-
 भौं-घनु भरोर-छोर परसनि कान की ।

रजन, कुरग, कोरु-नद -में प्रभा है कहा,
 सोहैं वर-सोहैं रस मनमथ वान की,
 मरम सुलाखैं, कुल कानि-मानि चाखैं आँखैं-
 अजन-तिरछी स्याम-सुन्दर सुजान की ।



जाके चर घाँके, ताके छाके मुनि देव सब ,
 काके दुनियाँ के बीच घाँके उपमा के हैं,
 लाज-वरखा के कै घटा के, मघवा के, ताके,
 पूरन-कला के, कहि आँनद-पता के हैं ।
 मीन, रज थाके, कज नाके हैं चलाकैं देखि-
 लज्जित-भृगा के, विधिना के, सुरमा के हैं,
 कुड है सुधा के, वसुधा के, सुर वा के बीच,
 विनु सुरमा के नैन-स्याम सुरमा के हैं ।



कोऊ कहैं वान मनोभव के समान सोहैं,
 कोऊ कहैं मत्र मोहिबे के बरजोर हैं,
 कोऊ कहैं बेस हैं नरेस-नेह के दिवान,
 कोऊ कहैं ब्रज-वनिता के चित-चोर हैं ।
 कोऊ कहैं रजन, कुरग-मन रजन हैं,
 कोऊ कहैं मजु पुज कज फूले भोर हैं,
 जानीहाँ चकोर-चर "गोकुल" "गुर्दिजू" कौ,
 चितै रहे चद-मुख राधा की ओर हैं ।

कैधों जुग दीनन-दयाल, धारिज प्रिसाल,
 कैधों रजरीट-गाल मोद के दें हैं,
 कैधों अनुराग-लीन छत्रि के तडाग मीन,
 जुगल-कला में परबीन चित्त चैन हैं।
 कैधों कोक-नद पै समद द्वै-अलिन सोहैं,
 मोहैं करि गद-भाद सरूपरूप ऐन हैं,
 कैधों अनियार-सर सरस समारे आली ?
 कैधों रतनारे धनमाली के सु नैन हैं।



लजीले, सकुचीले, सरमीले, सुरमीले से,
 कटीले औ कुटीले, चटकीले, मटकीले हैं,
 रूप के लुभीले, कजरीले, डनमीले,
 घरछीले, तिरछीले से फँकीले औ वसीले हैं।
 "ललित किशोरी" म्मकीले, जरबीले मनौं,
 अति ही रसीले, चमकीले औ रँगीले हैं,
 छबीले, बँकीले अरु नीले से नसीले आली ?
 नैना-नँदलाल के नचीले औ नुकीले हैं।



मोद-धरसावनी, प्रिनोद सरसावनी हैं,
 राधे की रिभावनी हैं नैननि चिकारी की,
 चाइ की भरी हैं, मानों साँचे की दरी हैं,
 नेह-मेह की जरी हैं, सरी कोर कजरारी की।

जोवन जगी हैं, प्रेम-पुजन पगी हैं जोर-
 रगन-रँगी हैं, काम क्यारी फुलवारी की ।
 भौहन तनीकी, सुर-दैन हारी जी की नौकी,
 पानिप-धनी की है अँखियाँ (श्री) निहारी की ।



राधिका जी के नेत्र

मैन-मद छाके राजें मोहन कला के ऐन,
 कज उपमा के दैन चैन भरता के हैं,
 पट-अँचला के, चोट करन निसा के बाँके,
 काम चचला के, नौके देखति ही माँके हैं ।
 सुन्दर-भभा के भरे, मधुर-सुधा के मीन,
 मृग, भँवरा के, गुन-छीन बाके पाके हैं,
 ताके, समता के हेरि या के, पै न ताके कहूँ,
 ताके नैन-बाँके बृषभाँनु की सुता के हैं ।



पतिव्रतता के, मजु-मन्दिर मजा के किधौँ,
 लखि मृग-थाके चारु-सर सुरमा के हैं,
 कैधौँ छेम-छाके हैं, अमद-भौन भाके हैं,
 न ऐसे रमा, रभा के उमाके, और काके हैं ।
 “भनै रघुनाथ” धाम कैधौँ सीलता के प्रेम-
 सागर के मीन, नैन-बाँके राधिका के हैं,
 पिय मुददा के, वसीकर, वसुधा के किधौँ,
 : सिन्धु-सुधा-मडल में कुड-द्वै सुधा के हैं ।

रजन, चकोर, मीन, मृग सिसु सारस यों,
 वारिऐ फपोत हूँ अनूप कहि गोरी के,
 तीसरे-तीर, खजर, कटारी, तेग, नेजन तैं,
 शौक-निछुवा तै हूँ धँकैत-वरजोरी के।
 घनि "रघुनाथ" हूँ लर्जाले, लालची हूँ लाल-
 पकज, गुलाब-रग रति-मद-भोरी के,
 ललित-प्रिसाल यों रसाल कजरारे लोल,
 मृदु-रतनारे नैन नमल-किसोरी के।



राजै रतनारे-रग भूपर उजारे, भारे,
 प्रैम-मतवारे पिय-मैन सुख-दैन हूँ,
 गजन कमल, मृग, मीन, मद-भजन हूँ,
 अजन । लखे तैं ना रहति उर-चैन हूँ।
 "नदन सुकवि" नद-नदन पै दुरे नैकु,
 रोस भरे देखे यातैं कहे फछु बैन हूँ,
 ऐसे देखे मैन, मैन-थान से विराजै ऐन,
 प्यारी तेरे अजब-गुलाबी-रग नैन है।



महा-कजरारे, । मृग-सावरु तैं न्यारे,
 दूरि रजन निडारे, निरखे तैं जाहि चैन हूँ,
 कैधौ अलि धारे, कैधौ मूँमै मतवारे-
 किधौ ताम-रम वारे, किधौ खजर के ऐन हूँ।

कैधों जुग-मीन वसैं सुन्दर-सरोवर में,
 कैधों काम-स्तरसान चढे तीखे पैर हैं,
 और अग-अंगन की सोभा "मान" कहा कहाँ,
 देखौ स्याम ? साँवरी के कैसे नीके नैन हैं ।



जगी हैं हठीले हैं, कटीले जग जीतन कों,
 नैकु ही निहारे तैं अनग सर थाके हैं,
 चचल, चलाक, चटकीले हैं रंगीले छैल,
 छैल के छलैया हैं, सनेह-रस छाके हैं ।
 "दास कहैं" कजन के, रजन के गजन हैं,
 रजन धनी के हैं, धरैया धीरता के हैं,
 जाहिर जहान ऐङ्गदार हैं अदों के भाँके,
 फरन निसा के ताके नैन राधिका के हैं ।



रजन रिजाने हारि कौनन सिधारे, हेरि-
 जलज लजाने, किए अलिगन चरे हैं,
 मुकि महराने, जल-तल ही धराने रहैं,
 तीच्छन अनग जी के सरगर गेरे हैं ।
 "दास फहैं" जेते हैं हिरन ताकि जेर किए,
 लालन कौ एरी ? ए अनन्द दें हेरे हैं,
 फारे, अनियारे, कजरारे, रतनारे राधे ?
 चचल चलाक, ऐङ्गदार नैन चरे हैं ।

गवन खिसाने से लजाने गए फानन री ?

चचलवा हेरि कै अदों के चाल हारे हैं ।
 सुकि भइरानी री सकानी रहों जल-तल,
 चौकनी चटकू-तान हरेँ अग गारे हैं,
 "दास" नैकु ताके जे छिदति नैन ताके जे,
 अनग-सरता के, तातेँ ताके अनियारे हैं,
 कौन्हे नद-नदन अधीन रमलीन राधे ?
 चचल चलाक चटकीले-नैन थारे हैं ।



गानी के, भवानी के, न रानी के सुरेस हू के,
 आसुरी सुरी के हैं, न फनी-भामिनी के हैं,
 रभा के, सुकेमी के, न फिन्नी तरिन हूँ के,
 मैनका, तिलोत्तमा, न ब्रह्म-रमिनी के हैं ।
 "सुफत्रिगुलात्र" मजुघोसा के, घृताची के न-
 और उरवसी के न मसि-भगनी के हैं,
 मैन घरनी के हैं न, ऐसे हरनीके हैं न,
 जैसे नैन नाँके वृषभानु-नदनी के हैं ।



भरन नहीं पै चलते ही दरसैँ हैं रोज,
 ओज गुन-बारी ए खुनैया थोरी-थोरी की,
 रमना नहीं पै रस लेति ही रहैँ हैं सदाँ,
 स्रवन बिना हीँ बात सुनति हथोरी की ।

“कहैं चिरजीवी” भिन हाथन हथियार करें,
 लै-लै रीति अकथ अनन्त-वरजोरी की,
 धँसि रही जीमें, हीमें, आवै ना उकति एकौ,
 अजब-अनोंसी-आँरें कीरति किसोरी की ।



कारे, रूपकारे, रतनारे, अनियारे सोहैं,
 सहज ठरारे, मनमथ मतवारे हैं,
 लाज-भरे भारे, भारे-चपल अन्यारे तामें,
 साँचे केसे ढारे प्यारे रूप के उजारे हैं ।
 आधी-चितवन में किए तैं अधीन हरि,
 टौना से बसीकर कि लौने परिहारें हैं,
 कमल, कुरग, मीन, राजन, भँवर,
 बृषभानु की कुँवरि तेरे दगन पै वारे हैं ।



आसव-पगे हैं, अनुराग सौं रंगे हैं—
 किधौं सौतिन-ठंगे हैं धरे गजर कतल में,
 “कहै द्विज कवि” के सहाव के सरोवर में,
 मदन के मीन-जुग पैरति नवल से ।
 एधौं ससि-गरव कुरगन कौं भयौ रोस,
 रेसम के जाल फँदे राजन जुगल से ।
 रैन के उनीदि नैन राधिका सुजान तेरे,
 मति पिय-ग्रैम भए राते फौल-दल से ।

“सभुराज” राधिका के नैन छुके चारि त्रिधि,
 काहि सर दीजै उपमान कचिहारे हैं,
 रजरीट दुज बहु-काल के रतन-मृग,
 कहति कुरग, कज जड काम न्यारे हैं ।
 मुके से हैं लाडिले से निपट-गरूर-भरे,
 महा-भर सारी उरकाम के निदारे हैं,
 मद मतवारे, वय-मद-मतवारे, रूप-
 मद-मतवारे, नैन-मद-मतवारे हैं ।



राधिका के नैननि की अकथ-कथा है कोऊ-
 पावति न भेद उपमान किए काइलै,
 “सभुराज कहति” चकोर हैं चकोर जानैं,
 मीन जानैं मीन हैं कहति सग लाइलै ।
 हीरा जानैं हीरा, गजमौंती, गजमौंती जानैं,
 वान जानैं नैन-वान देखि भए माइलै,
 भृग जानैं मधुप, रजजन, रजरीट जानैं,
 कज जानैं कमल, कुरग करसाइलै ।



कूचरी के नेत्र

मानों गाम्नी के थके सवन थकावैं एतौ,
 अजन की रेतैं सुधि हस्त हरी के हैं,
 “कहैं राम-रसिक” रमिक-मन मोहिये कौं,
 मोहनी के जत्र ए सुदारे सुधरी के हैं ।

बारि डारों मीन, मृग, रज्जन की चचलाई,
 ऐसे हैं नुकीले मानों ऐन रजरी के हैं,
 आसुरी सुरी के कहा पन्नगी-नगी के कहा,
 ऐसे ना परी के हैं सो जैसे कूररी के हैं।

७

महादेव जी के नेत्र

प्रेम-भरे पूरन प्रतीन रस नैम भरे,
 सोल-भरे सुन्दर सु सोईँ हाव-भाव भारी के,
 तेज भरे तरुन, कृपाल-करना के भरे,
 दाया भरे दरद-हरैया जीव धारी के।
 रग भरे "राम" के नसे हैं भरे भगन के,
 चमकि रहे हैं भरे अनल अँगारी के,
 सोभा भरे सरस, सुरग नीति गोभा भरे,
 गुननि भरे हैं नैन-तीन त्रिपुरारी के।

८

काली जी के नेत्र

मान भरे सुन्दर सुजान श्रॉन सॉन भरे,
 सोभा के निधान खान मुधर प्रनाली के,
 तेज भरे तरुनि, तरगी, रगी दासन के,
 दुष्टन सँघारिबे कौं मानिंद दुनाली के।
 रौंव भरे राजति, महान-धोज मौज भरे,
 "वैनी द्विज" कमल-कुलीन कुज डाली के,
 अमित खुसाली भरे, आली जोति-ज्वाली भरे,
 लाली भरे ललित ललाम-नैन काली के।

विंध्यवासिनी के नेत्र

आठों-जामैं दया-रस उमग्यौ ही रहै स्याम,
 धवल, सुरग कहु, कहु अनियारे हैं,
 तीनों-देवतान के सँवारिबे के काज मानों,
 सत, रज, तम तीनों-गुननि सुधारे हैं।
 मीन, कज, सजन, चक्रोर कोरि ही सौं जीति,
 जाकी उपमा कौं हेरि-हेरि हिय हारे हैं,
 सत-सुखदानी, महारानां विंध्य-वासनी के,
 लोचन-कमल, दुख-मोचन हमारे हैं।

जाकी नैकु-दया तैं गिरच जगती कौं रचै,
 जाकी नैकु-दया तैं फनीस महि-धारे हैं,
 जाकी नैकु-दया तैं दिवाकर दिवा कौं करै,
 किरन-समूह सौं हरति अंधकारे हैं।
 जाकी नैकु-दया तैं काम जीतति चराचर कौं,
 जाकौं "हर" जारिकैं अनग करि हारे हैं,
 सत-सुखदानी महारानी विंध्य-वासनी के,
 लोचन कमल, दुख-मोचन हमारे हैं।

हनुमान जी के नेत्र

तप भरे, तेह भरे, राम-पद-नेह भरे,
 सन्तन-सनेह भरे, प्रेम की प्रभा भरे।
 सील भरे साहस, सपूती, मजबूती भरे,
 तरज भरे, बाल-ब्रह्मचरज की त्रया

“भनें कविमान” दान-खान भरे, मान भरे,
 घममान, सान दुष्ट-दलन द्रपा भरे,
 सोचन के मोचन, निरोचन के त्रासन तैं,
 वन्दौं पिंग-लोचन के लोचन कृपा भरे।

❀
 (सु-दृष्टि)

कोटि-काम-धैनु लौं, धुरीन कामना कौं देति-
 चिन्ता हर लेत कोटि चिन्तामनी कूतकी,
 विधा चकचूरै, कोट जीवन-लता लौं सिन्धु,
 पूरै कोटि कल्प-लता लौं पुरहूत की।
 “भनें कविमान” कोटि-सुधा लौं सुधारकोटि,
 सिन्धुजा लौं सुखद निदान पच-भूत की,
 गजन-विपति, मन रजन सु भक्त-भय-
 भजन हैं नजर प्रभज के सपूत की।

❀
 (कु-दृष्टि)

वाडव-वरन जम-दड की परन, चिरी-
 मार की मारन, रिखि-भरन गिरीस की,
 गाज की गिरन, प्रलै-भानु की किरन,
 चक्री चक्र की फिरन, फुँफकारै कै फनीस की।
 दाधानल दीसन, किरीसन मुनीसन की,
 मीसन-भरी की दन्त-पीसन खबीस की,
 -कूट की, कला हैं काल-कोप की कै,
 कुनजर कुध सी नजर कौंसलेस के कपीस की।

नेत्र और नव-ग्रह

नव-ग्रह, एकु रास, बैठे अति सोभा-भास,
 "मडन" वदन देखि "सूरज" लसत हैं,
 हाव "गुरु" भाव "बुध" "मंगल" अरुन-डोरे,
 सेत-ताई "सुक" जू सौं सोभा सरसत हैं।
 "लाल-कृरन" "केतु" एतौ पलक निकेत आली ?
 कोयन रचति "राहु" "चन्द्रमा" प्रसत हैं,
 कैसें कै वचैंगी कुल-कॉनि मन-मौहन सौं,
 नजर-निगोडी में "सनीचर" बसत हैं।



नेत्र और मंगल-ग्रह

अम्न, अमोल-लोल लखे तैं लुभात मन,
 जापरु जपा से सोख रग में घनेरे हैं,
 "वैनी द्विज" भूगा से महान-भजु आनदार,
 मानिक सी चटक जनाति चारु हेरे हैं।
 ईगुर से आगर हैं, गालिब-गुलाब हू से,
 भाए इहि भाँति सौं प्रभात चित मेरे हैं,
 लाख लाख सौंतिन सुहाग-सुख दें हारे,
 ऐन-मैन "मंगल" से लाल। नैन तेरे हैं।



विक्रम-नरेश की दृष्टि

कैसी काम-वैनु, कामना की दें-ऐन जैसी-
 चिन्तामनि चारु चित नैन कौं सुकर ३

कैसी चारु-चिन्तामनि चैन की सुकर जैसी-
 काम-तरु-साया, कामना की विधि-र है।
 कैसी काम-साया कामना की विधि-र जैसी-
 "दास" पै हमेस की हमेस दान-भर है,
 कैसी है हमेस की हमेस दान-भर जैसी-
 जैसी धीर विक्रम-नरेस की नजर है।



नेत्रों के सब उपमान

झफरी से, कज से, घुरग, करसाइल से,
 आम की सी फोंकें सत्र कहति सुजान हैं,
 नडुवा से, नट से, तुरगम से, रजन से,
 बालक-हठाले जैसे ऐमे ठनै ठान हैं।
 देसौ देढ़ी-कोरें मानों नएनैया छोर के हैं,
 धान ऐमी अनी-पैनी लागें ऐत प्राग हैं,
 ठग, घटवारे, मतवारे "कत्रि तुन्छ" मत,
 इतने ही नैननि के कहैं उपमान हैं।



कवि-चन्द्र, नेत्र

"पदमाकर" देखि राजाइ गण, "चिन्तामनि" ही की रही मन में,
 "मतिराम" दई यह फोषिद कहैं, "ठफुगाई" दई जो बटा-दन में।
 "मिरताज" हैं "भूगना" भौह-सुनै "रम-ग्या" रमोले मुभाया में,
 "वनवीर" के वीर के नैग ताँ, वन "मेनापती" हू भगो था में।

जज्ज-चन्द्र, नेत्र

नाजिर नजर, चपरासी कोर-छोर दोऊ,
 दौरि धरि लावै, तकसीरिन-निलज्ज हैं,
 मन-मुन्सी नैं रूपकारी करि सारी दर्द,
 दीरघ-दिवानेदल समभे सो कज्ज हैं ।
 प्रिन हक-वारे, मव-हारे प्रिना काजी कहैं,
 चचल-चपल चित्तन चार हज्ज हैं,
 बैठी बीच बँगले बहार के समान मैच,
 करति इनसाफ तेरे नैन जोर जज्ज हैं ।

६७

जोहरी-चन्द्र, नेत्र

काजर सबारे, त्रिवि-पूतरी सुधारे लोल,
 मानों कारे कलित सु "नील-मनि" ढारे हैं,
 ऐसे ना निहारे, सेत चमक-दमक वारे,
 "हीरल" के हजूम, माल-भौतिन की हारे हैं ।
 राग भरे "त्रिद्रुम" औ "मानिक" से रतनारे,
 मानों नैन मॉन छवि सिन्धु तैं निकारे हैं,
 प्यारे स्याम जू के चारु वस के करन हारे,
 जोहरी-मनोहर ए लोचन तिहारे हैं ।

६८

पच्ची-चन्द्र, नेत्र

अरुन-रग जाल मैं फँसाए "लाल" बाल तैनें,
 मजुल-मराल" ज्यों जवाहिर "हसरज" हैं ।

अजन दै "रज्जन" कजरारे कारे "कोइल" से,
 कोइल की आंखिन पै पलकन के साज हें ।
 "तोते" चशम तू है तेरे लोचन "चकोर" से हें,
 "मोर" से पुँछेरे, जोर जुर्न के काज हें,
 "सिकरा" से सिकारी एकु ऋपक में ऋपेट करै,
 घूँघट की ओट चोट करिवे में "धाज" हें ।

विना मात्रा का नैन-निरूपण

हरत सकल, छल-पलक लगत जब,
 धरत न कल, मन-डरत भरम कर,
 कसर करत न, भरत जल थल-थल,
 रसत अदब वह गरम सरम कर ।
 नरम धरम कर डरत जनन पर,
 दल-दल सम हल-हलत अलम कर,
 रहत तनक न, भरम तन तत-छन,
 रहम करत जब चसम सनम कर ।

लखन-लखत, लरजत नर सर धर,
 धर-धर चलत करत तन थर धर,
 सकत नयन, कर नजर रकत-सन,
 सन-सन करत जनक जन डर-डर ।
 रसकत खल-दल, थल-थल हलकर,
 ससकत कहर-कहर कर जर-जर,
 कह तन चर अर सखत-जगत कत,
 हतत हरख पर नर-तन नर-हर ।

कवि नामावली

	[संस्कृत]	ईश	[व्रज भाषा]
अमरक	[व्रज-भाषा]	ईश्वर	"
अलिवेली अलि	"	उदेनाथ	"
अमरेश	"	उद्धराम	"
अप्रदास	"	उडिदाम	"
अनुनैन	"	पदिल	"
अजवेश	"	कविन्द	"
अहमद	"	कमला पति	"
अलकेश—नवीन,	"	कविराज	"
अधवेश	"	कधीर	"
अमीर	[उर्दू]	कमल-नैन	"
अश्वर	"	कलस	"
अन्नदघन	[व्रज भाषा]	कमनीय	"
आलम	"	करन	"
आदिल	"	कलाधर—नवीन,	"
आतम—नवीन,	"	कविदास—नवीन,	"
आतिश	[उर्दू]	कालिदास	[संस्कृत]
आरक	"	कालिदास	[व्रज भाषा]
आरजू	"	कान्ह	"
आसी	"	काशीराम	"
आह	"	काशिम	" [उर्दू]
आजाद	"		

किशोर	[मज भाषा]	गोप	[मज-भाषा]
किशोरी—नवीन,	"	गोविन्द गिल्लाभार्ड—नवीन,	"
कुम्भनदास	"	गग	"
केशव	"	गधर	"
केशव—नवीन,	"	घनश्याम	"
कृष्णदास	"	घासी राम	"
कृष्णलाल	"	चतुर्भुज-दास	"
कृष्ण-कवि	"	चतुर विहारी	"
कृपाराम	"	चतुर्भुज	"
कज—नवीन,	"	चिरजीवी	"
रुमान	"	चिरजीवी—नवीन,	"
रूथो	"	चिन्तामनि	"
गयादत्त	[सल्लत]	चेतराय	"
गनेश	[मज भाषा]	चेन कधि—नवीन,	"
गनेश—नवीन,	"	धन राय	"
गजेन्द्र "	"	चदन	"
गालिय	[उद्]	चद्रकला—नवीन,	"
ग्याल	[मज-भाषा]	छपाकर	"
गिरधर दास	"	छप्रघाते—नवीन,	"
गिरधारी	"	द्विति नाथ	"
गुन मजरी दास	"	द्वीत स्यामी	"
गुलाब	"	द्वेम कधि	"
गोकुलनाथ	"	जयरेण	"
गोर्षानाथ	"	जगत सिंह	"
गोविन्द दाम	"	जग मोहन—नवीन,	"
गोकुल	"	जाग ग्राह्य	[म]

जिगर	[उर्दू]	दुल्ह	[मज-भाषा]
जीत कपि—नवीन,	[मज-भाषा]	देव	"
जुरंत	[उर्दू]	देवकीनन्दा	"
जगन्नी—नवीन	[मज भाषा]	देवीप्रसाद-(प्रीतम)	[उर्दू]
ठाकुर	"	दीलत	[मज-भाषा]
तान सैन	"	धोश	"
तारा कपि	"	धनीराम	"
निलोक घद	"	धुपदास	"
नुल्मी दाम	"	धुरधर	"
तेज—नवीन,	"	नरोत्तम	"
तोप	"	नयात	"
तोपनिधि	"	नवी	"
दत्त	"	नयी	"
दंड	[उर्दू]	नजीर	[उर्दू]
दास	[मज-भाषा]	नसीम	"
दास—नवीन,	"	नारायण-भट्ट	[सस्यत]
दामोदर "	"	नागरी दास	[मज-भाषा]
दाग	[उर्दू]	नागर	"
दियाकर	[मज भाषा]	नारामण स्यामी	"
दिनेश	"	नाथ	"
द्विज-देव	"	नासिर	[उर्दू]
द्विज-दास	"	नियाज	[मज-भाषा]
द्विज	"	नीलफठ	"
द्विजगग—नवीन,	"	नूर	"
द्विज-यलदेव "	" "	नूर	[उर्दू]
द्विज-राज	" "	नूह	"

नेह	[प्रजभाषा]	यली	(प्रज भाषा)
नैन	"	यलदेव	"
नृपशम्भु	"	यनी ठनी,	"
नद दास	"	यलदेव—नवीन,	"
नदराम	"	यणीजी	"
नदन	"	यली	(उद्)
परमानन्द	"	यहादुर शाह,	"
पद्माकर	"	प्रजदास	[प्रजभाषा]
परम	"	प्रज रतन	"
परमेश	"	याल—नवीन	"
परमेश भट्ट	"	यिस्मिल—नवीन	(उद्)
पजनेश	"	यारयल	(प्रज भाषा)
परयत	"	यैनी	"
परशराम	"	यैनी द्विज	"
परसाद	"	यैनी प्रधीन	"
परताप	"	धैजनाथ—नवीन,	"
प्रधीन	"	भगयत रसिक	"
पुगी	"	भरमी	"
पुगडरीफ	"	भगयत	"
पेशी-राम—नवीन,	"	भारते-दु	"
प्रेम	"	भुयनेश	"
प्रेम-सागी—नवीन,	"	भूप	"
पमान—नवीन,	"	भूपति	(प्रजभाषा)
पुर्गा	[उद्]	भूधर	"
यलमद्र	[प्रज भाषा]	भोगगाथ	"
यलमद्र—द्वितीय	"	भीम-वपि	"

भजन	[व्रज भाषा]	मोहन	[व्रज-भाषा]
मतिराम	"	मोमिन	(उर्दू)
मधुर अली	"	मोन कवि	(व्रजभाषा)
मनसा-राम	"	मडन	"
मरसूदन	"	मचित	"
महताय	"	मसारास	"
मन निधि	"	मगल दीन—नवीन,	"
महबूब	"	यकरँग	(उर्दू)
महाकवि	"	रसखान	(व्रजभाषा)
महाजीर	"	रसिक प्रिया,	"
मनदेव	"	रसिक राय,	"
मदनेश—नवीन	"	रसिक विहारी	"
महेश	"	रसिक किसोरी	"
मजहर	(उर्दू)	रसिक	"
माखन	(व्रजभाषा)	रसिकेश	"
माधव	"	रस रग	"
मानिक	"	रसनिधि	"
मान—नवीन,	"	रसलीन	"
मान निधि "	"	रघुराज	"
माधव "	"	रघुनाथ	"
मिश्र	"	रहीम	"
मीरन	"	रतन	"
मीर	(उर्दू)	रत्नाकर—नवीन,	"
मुरारी दास	(व्रजभाषा)	रसिक विहारी	"
मुवारक	"	राज शेखर (सस्कृत)	"
मुकुन्द-लाल	"	रामसहाय (व्रज भाषा)	"

राधराना	[मज भाषा]	शिप्र	[मज भाषा]
राम	"	शिवनाथ	"
राम—नवीन,	"	शिप्र दीन	"
रामगुलाम	"	शिवराज	"
राघव	"	शिवदास	"
रिपिनाथ	"	सदानन्द	"
रगपाल	"	सरदार	"
ललित किशोरी—नवीन	"	सत्यनारायण	"
ललित माधुरी	" "	सवा	(उर्दू)
ललित	"	सागर	(मजभाषा)
लच्छीराम	"	सुजान	"
लखनवी	(उर्दू)	सुन्दर	"
लाल कवि	(मजभाषा)	सुखदेव	"
लाल बलवीर	"	सुमेर	"
लीलाधर	"	सुमेरहरी	"
लेटराज	"	सूरदास	"
लौने कवि	"	सूरत	"
घली	(उर्दू)	सेख (आलम की खी)	"
घारन	(मजभाषा)	सेखर	"
बिहारीलाल	"	सेवक	"
बिक्रम	"	सेनापति	"
बिद्यापति	(मजभाषा)	सोमनाथ	"
बिप्र—नवीन	"	सोभ	"
बिहारी लाल—द्वितीय	"	सोजा	(उर्दू)
शम्भु	"	सौदा	"
श्याम सेवक—(रीवाँ)	"	सकर	(मजभाषा)

सकर—नवीन,	[प्रजभाषा]	हरलाल	[प्रजभाषा]
श्रीधर	"	हरदयाल	"
श्रीपति	"	हरी	"
श्रीपति सुजान	"	हनूमान—नवीन,	"
श्रीमट्ट	"	हरी शकर	"
श्री लाल	"	हरदेव	" "
श्रीनिधि—नवीन,	"	हसन	(उर्दू)
श्रीकर	"	हातिम	"
हरिजन	"	हीरा सखी	(प्रजभाषा)
हरिकेश	"	हेम दुति	"
हनूमान	"	हेमहस	"
हरिऔध	"	हृदयेश	"

उक्त नामावली के अनिश्चित जो और ससृष्ट, हिन्दी, व उर्दू के कवियों के नाम हमारे प्रमाद-वश छूट गये हों उनके लिये हम क्षमा प्रार्थनीय हैं ।

—सम्पादक



सहायक-गून्थ

सहायक-ग्रन्थ

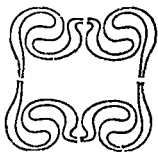
प्रकबर और उनका उर्दू काव्य, आलम कोलि (आलम कृत)	दाग और उनका काव्य (हरीदास एण्ड को०)
प्रगादर्श (रगपाल कृत)	देव ग्रन्थावली (गगरी प्रचारिणी सभा)
इन्द्र सागर (सस्कृत-संग्रह)	देव और बिहारी गंगा पुस्तक-माला
इन्दाम प्रकाश (हस्त लिखित)	ध्रुव ग्रन्थावली, भारत जीवन प्रे)
इस्ताद-जौरु (हरीदाम एण्ड को)	नवीन संग्रह (नवल विशोर प्रेस)
कविता कौमुदी (रामनरेदा त्रिपाठी)	नख सिख (केशवदास)
कवि हृदय विनोद (गाल कवि)	नख सिख (चन्द्रशेखर)
काव्य संग्रह (सस्कृत)	नख सिख (बलभद्र)
काव्य माला (मु० देवी प्रसाद स)	नख रस तरंग कृष्णविहारी मिश्रस
गुलदस्तए विहारी (देवीप्रसाद पीतम)	नवरस तरंग (बैनी प्रवीन कृत हस्तलिखित)
गुलदस्तए शेर, (संग्रह उर्दू)	नजीर (हरीदास एण्ड को०)
गोपी प्रेम पीपुष प्रवाह (नवनीत)	नागर समुच्चय (ज्ञान सागर प्रे)
चन्द्रावली नाटिका (भारतेन्दु)	नित्यकीर्त्तन (लक्ष्मभाई, छगनभाई)
श्वेत-चन्द्रिका, (गोकुल कवि)	परमानन्द सागर (हस्तलिखित)
सगत विनोद (पद्मानर)	पञ्जेश प्रकास (भारत जीवन प्रे)
ठाकुर-शानक, (ठाकुर कवि)	ब्रजमाधुरी-सार (वियोगी हरि)
तुलसी ग्रन्थावली, (गगरी प्रचारिणी सभा)	ब्रज विहार (बैकटशर प्रेस)

प्रिक्रम सतसई (हस्त लिखित)
 मनोज मजरी (अज्ञान कवि सग्रह)
 मतिराम सतसई (हस्त लिखित)
 मिश्रबन्धु विनोद (मिश्रबन्धु)
 रघुराज विलास (नवलकिशोर प्रे)
 रस कुसमाकर (म ददुआ सा स)
 रसराज (मतिराम)
 रतन हजारा (रसनिधितृत)
 रहिमन सतक (हस्त लिखित)
 रहिमन विलास
 (साहित्य सेवा सदनकाशी)
 रहिमन भूपण
 (कुडलिया नवनीत कृत)
 रस रंग
 (म्वार कवि कृत हस्त लिखित)
 रसकानन्द " "
 रस रत्नाकर
 (प्राचीन मथुरा का छपा)
 रसकानन्द
 (रगपाल कृत भारतजीवन प्रे०)
 रसिक मोहन (भारत जीवन प्रे)
 रस प्रबोध " "
 राग रत्नाकर (बैंकेश्वर प्रे)
 राधा-सुधा शतक (हठी, कृत)
 विहारी सतसई (प पद्मसिंहजी)
 विहारी चन्द्रिका
 (संस्कृत गयादत्तकृत)

विहारी विहार
 (अम्बिकादत्त यास)
 शम्भु शतक (भारत जीवन प्रे)
 शृंगार शतक (नर्हरि)
 शृंगार-सग्रह (नवलकिशोर प्रे)
 शृंगार सुधाकर (प मन्नालाल स)
 शृंगार सरोज (प मन्नालाल स)
 शृंगार निर्णय (भिखारा दास)
 शृंगार-सतसई (रामसहाय दास)
 साहित्य विहार (वियोगा हरि)
 सिधसिंह सरोज (नवल किशोर प्रे)
 सुन्दरी तिलक (मथुरा का छपा)
 सुन्दरी तिलक (खड्गलाल स प्रे)
 सुन्दरी सप्तस्य (प मन्नालाल स)
 सुभाषितरत्न भाण्डागार
 (संस्कृत सग्रह नि सा प्रे०)
 सुजान सागर (हस्त लिखित)
 सुजान-सतक (भारतजीवन प्रे)
 सुजान-रसखान " "
 सुन्दर शृंगार (दास कवि कृत)
 सुधानिधि (तोप कवि कृत)
 सूट सागर (बैंकेश्वर प्रे)
 " (नवल किशोर प्रे)
 " (हस्त लिखित)
 " (भगवानदास)
 सुकि सरोवर
 संस्कृत कवियों की अनोखी सु

अग्रह नूर	(हस्त लिखित)	हिन्दी नवरत्न (गंगापुरतकमाला)
रिश्चन्द्रकला	(खड्ग विलास प्रे)	हिन्दी कवियों की अनोखी सूझ
फिज जुल्लाखॉ का हजारा		हृदय तरंग (सत्यनारायण कवि)
	(नवल विशोर प्रे)	





शब्दार्थ

शब्दार्थ



अजन घाढ़—अजन (काजल)

रूपी घाढ़—धार, तेजी ।

अक—चिन्ह, निसान, शरीर,
गोद ।

अधुज-कन—कमल के कन,
प्रिन्दु ।

अहार—खाना-पाना, भोजन,
अनियारे—तीरे, पैने, नुकीले,
कटीले, धारदार ।

अमित-छवि—परिमाण रहित
छवि (सौन्दर्य) बेहद
सौन्दर्य, असीम सौन्दर्य ।

अनी घनी—विशेषपैनी, तीक्ष्ण,
तेज धार ।

अनन्य-गौमीरन—यहुत घना
जगल, घन ।

अनग—अग (शरीर) रहित,
अर्थात् कामदेव ।

अमी—अमृत ।

अलि—भ्रमर, भौरा ।

अनग रग—काम का रग ।

अमल—नशा, निर्मल, स्वच्छ ।

असा—सोटा, डडा, वह डडा
जिसे फकीर । अपनी
घगल में दवाकर बैठते
हैं, सहारा लेते हैं ।

अत्रे-धारों—पानी से भरे हुए,
उमड़े हुए, बरसने वाले
बादल ।

अलिघारे—भ्रमर के बच्चे वा
छोटे भौरा ।

अलि-कुल—भ्रमर-कुल, समूह ।

अरबरात—व्याकुल होते, घन-
राते, विचलित होते ।

अगाध—अथाह, बहुत गहरा,

अहोद—पिनमौना, निर्लज्ज,
अननहा ।

अरीले—अड़ने वाले ।

अनखात—मुक्नात, रिसात,
क्रोधित, कुपित ।

अमाँघडी—नहीं समाने वाली,
उफनती ।

अति-चोखी—विशेष सुन्दर,
बहुत सुन्दर ।

अरविंद—कमल ।

अनुहारि—समान, तुल्य, सदृश,
एक रूप ।

अयाने—बुद्धि हीन, अजान,
अज्ञानी ।

अमलता—स्वच्छता, निर्मलता,

अनख—मुँकलाहट, रिस, क्रोध,
नाराजी ईर्ष्या, अकस,
कुढ़न ।

अल्लेह—निरतर, लगातार,
अरुढ़, बहुत-अधिक ।

अमी-कन—अमृत की थूदें ।

अनी अनियारी—पैनी धार,
तीखी धार ।

अगोटे—सुसजित किये, प्यार
से सँभाले ।

अघात—वृत्ति न पाते, विशेष
इच्छा से इच्छित ।

अहेरी—शिकारी,

अरि—दुस्मन, शत्रु, बैरी ।

अलम—दुःख, रज ।

अशक—आँसू ।

अर्श—आसमान, आकाश ।

अतोल छवि—तुलना रहित
छवि (सौन्दर्य) तुलने
में न आनेवाला सौन्दर्य ।

अग-कानन—शरीर रूपी वन,
कानन, जगल ।

अघस्रैनी—अघश्रेणी, पापों
की पक्ति ।

अजन पनच—अजन (काजल)
रूपी पनच (रौंदा) धनुष
की डोर ।

अनख भरीं—मुँकलाहट भरी,
रोप भरी ।

अजिहि-कमान—विलारोंदे (ध
नुष की डोरी) वाली
कमान, धनुष ।

अनत लौंच—बहुत कोमल ।

अवनीस—अवनी (पृथ्वी) के
ईश (मालिक) राजा ।

अतूले—तुलना रहित, समानता
रहित, खाली ।

अमद—श्रेष्ठ, उत्तम, अच्छा,

- सुन्दर, भला, धीमा न हो, तेज ।
- आरसी—एक प्रकार का कोंच लगा आभूषण जो अँगूठे में पहना जाता है, शीशा, आइना, दर्पण ।
- आवे हयात—अमृत ।
- आतुर—व्याकुल, व्यग्र, घबडाया, अधीर, उद्विग्न ।
बेचैन ।
- आँधड़ी-आघड़ी—जल्दी बावली हो जाती ।
- आँन मेंड—मर्यादा की सीमा, हद ।
- आरम विभायरी — आलस्य (खुमारी) की खुशी, लज्जा ।
- आलस-घलित—आलस्य से मुकी हुई, नमित हुई ।
- आनन—मुख, मूँ ।
- आखँ दैति—लिखे देती, कहे देती ।
- आलम—दुनियाँ, ससार, जगत जहाँन ।
- आगोश—गोद ।
- आतिश—अग्नि, आग ।
- आपदीदा—पानी से तर आँखें, भीगी हुई आँखें, सजल-नेत्र ।
- आह—हिरन, मृग ।
- आरिज—गाल, कपोल ।
- आफरी—शायसी ।
- आले—गीले, रस से प्लावित ।
- आसुहि—जल्दी, शीघ्र ।
- इक निगाहें लुफ में—एक निगाह (नजर) लुफ (मजा) में ।
- इतराह—घमड करना, फूल उठना ।
- इतमाम—घन्दोस्त, प्रग्रन्ध, इन्तजाम ।
- इन्दीवर—कमल ।
- इन्दु—चंद्रमा ।
- ईच्छ—आँख, नेत्र ।
- ईच्छीन—आँख, नेत्र, दर्शन, विचार, जाँच ।
- ईदि—मन चाहा, मित्र, सखा दोस्त, मित्रता, दोस्ती ।
प्रिति ।

उक्ति—उक्ति, कथन वचन,
अनोरथा वास्य ।

उद्धप—चन्द्रमा ।

उभै—उभय, दोनो ।

ऊयोसी—घवरायी सी, व्या-
कुल सी ।

उदधि—समुद्र ।

उमॉकें देति—उखाडें देति (दिती),

उसोर—उशीर, खस, काँस की
जड जिसके गर्मी में पर्दे
बनते हैं ।

उमगति है—हर्षित होती है,
खुशी होती है ।

उयरानी—निकली पड़तीं ।

उनवै—घिरै ।

उदू—दुस्मन, शत्रु ।

उल्फत—मुहब्बत, प्रेम, प्रीति
प्यार ।

उत्पल—कमल, नीले-कमल ।

ऊयर खोट—कठिन-भार्ग,
अटपट रास्ता ।

ओपे—माँजे, साफ किए, जिलो
चढादी, चमका दिये,
पालिश किये ।

ओप—आभा, चमक, कान्ति,
मलक, सुन्दरता, शोभा ।

ओज—तेज, बल प्रताप, प्रकाश,
उजाला कविता का वह
गुण, जिसके सुनने से
चित्त में आवेश हो ।

ओचक—अचानक, एकाएक,
सहसा, एक वारगी ।

ओडी—गहरी, गभीर ।

ऐन—शांती, घर, मकान ।

कज दल—कमल की पँखुड़ी,
पखुड़ी ।

कखुकी—अँगीया, चोली ।

कजन—कमल विशेष ।

कज—कमल, प्रह्ला ।

करेरे—कठिन, कड़े, कठोर ।

कज—टेढा, तिरछा ।

कबच—जिरह बकतर, आव-
रण ।

करवाल—तलवार, नाखून, नख ।

कयामत—सृष्टि का अतिम
दिन, लेखे का दिन ।

कजाकी—लुटेरापन, बद
माशी ।

कलोल—आमोद, प्रमोद, क्रीडा
 खेलना, केलि ।
 कजरी—कोरें—फाजल से
 काली कोरें, सिरा,
 विनारा ।
 कत घतरे—कहाँ धिताई, किस
 जगह रहे ।
 कनाउडी—कलकित, निंदित,
 वदनाम ।
 कनौडी—कानो तरु फैंची हुई,
 कलकित, वदनाम,
 निंदित ।
 कसायौ—टूटकर गँधी, बाँधना,
 कसकर रखी ।
 कनौडे—कानोंतरु फैंले दें, कनौडी
 कजाक—खुटेरा, डाकू, घट-
 मार ।
 कडर—आपत्ति, विपत्ति, सकट,
 गजय ।
 कलानिधि—चन्द्रमा ।
 करेरी—कर्री, टेढी, कठिन
 सख्त ।
 कसमस—कुलबुलाहट, कुछ-
 कुछ उभरे ।

कलिका—कली, बिना सिला
 पुष्प विशेष ।
 कमलापति—लक्ष्मी का पति,
 विष्णु भगवान ।
 कनटिन—कलकित, कुल से
 च्युत ।
 कल ताल कामरूपी ताल सरोवर ।
 कपोत—कबूतर, परेवा ।
 कछारन—ममुद्र व नदी के
 किनारे की ऊँची-नीची
 तर (गीली) भूमि ।
 कामकैवर्त्त—काम रूपी महाह,
 केवट ।
 काकुल—कनपटी पर लटकने
 वाले बाल, कुट्टे, जुल्फें ।
 कान्ति—तेज, दीप्ति, प्रकाश,
 आभा, सौन्दर्य, शोभा,
 छवि ।
 काचे घट—कच्चे घड़े अर्थात्
 मिट्टी का कच्चा घड़ा ।
 कातिव—लिखनेवाला, लेखक ।
 काछनी—कई रंगों के टुकड़ों
 द्वारा सिला हुआ वह
 कपड़ा जो कमर में

पाजामा के ऊपर पहिरा जाता है, और वह कई नाम का होता है जैसे कि मल्ल-काछनी, जामा-काछनी ।

कामण्गारी—कामकी आगरी
अर्थात् घर, मकान ।

काँटा—एक प्रकार की तराजू जो कि तोलने में जरा भी फरक नहीं रखती ।

कुस्तये निगह—निगह (कटाक्ष)
से मारा हुआ जखमी ।

कुलीन भाव—श्रेष्ठ भाव ।

कुमुदामल—कुमुद (कमला)
का सौरभ । सुगन्ध युक्त हवा ।

कुरग—हिरन ।

कुमकुम—केशर, रोली ।

कुबलय—नील कमल ।

कुटिल—दुष्ट, टेढा, बक्र ।

कुज—वह स्थान जिसके चारों तरफ घनी लता छाई हुई हो ।

कुडु—अभावश्या की काली रात्रि ।

कूप-जाना—माशूक के मकान की गली ।

केलि—खेल, क्रीडा, रति, मैथुन, समागम, स्त्री-प्रसंग ।

केल-कलह—प्रेम की लड़ाई, रति की कलह ।

कैफियत—समाचार, हाल, विवरण ।

कैफ—नशा, मद ।

कैयर—तीर का फल या गोंसी ।

कौयन—आँसुका अन्तिम पतला भाग जहाँ कुछ शुर्खा हो ।

कोकनट—लाल कमल, लाल कुमुद ।

कोस—कोप, रजाना, डित्रा सपुट, गोलक ।

कौल—उत्तम-कुल में उत्पन्न, कमल ।

कौल-दल—कमल-दल (पसडी) ।

कृसोदरी—कृशोदरी, कृश पतले, (स्त्री) उदर (पेट) वाली । - -

खंजन—प्रसिद्ध पत्नी ।
 खता—कसूर, अपराध, तकसीर ।
 खशाति—निभना, टिकना,
 ठहरना, परस में ठीक
 उतरना ।
 खरपौ—ठीक-ठीक, रस ।
 खगीन—पक्षी विशेष ।
 खाम—रक्षा, जो पुष्ट न हो
 अनुभव हीन ।
 खिरकि—गायों के रहने का
 स्थान ।
 खुमी—धुमी, घुसी, घँसी ।
 खोट—दोष, ऐव, बुराई ।
 गजन—अनज्ञा, विरहकार,
 मारनेवाला ।
 गडकी के सुत—गडकी नदी के
 सुत (घेते) अर्थात्
 सालिग्राम ।
 गजागिले खजन की—गुंजा
 निगलते हुए खजन की ।
 गहती—पकड़ती ।
 गति—चाल ।
 गट गए हैं—हलके हो गए हैं ।
 गधार्ख—करोखा, लिङ्की कोई

कोई आँख के अर्थ में
 भी इसको प्रयुक्त करते हैं ।
 गनीम—दुश्मन, बैरी, शत्रु,
 लुटेरा, डाकू ।
 गसिये काँ—पकड़ने को,
 धरने को ।
 गन—समूह ।
 गहरी—आँडी, गभीर ।
 गर्दिश—चक्र ।
 गाडरु—सर्प के काटने का
 मंत्र इलाज द्वारा करनेवाले
 मनुष्य जाति विशेष ।
 गिरा—सरस्वती ।
 गिलाफ—वह कपडा जो बिछौने
 या तकिया पर चढाया
 जाय, खोली, नडी रिजाई,
 लिहाफ, म्यान ।
 गिला—उराहना, शिकायत,
 निंदा ।
 गिजा—भोजन, स्वच्छ-वस्तु,
 खोराक ।
 गिलान—ग्लानि, घृणा, नक्र-
 रत ।
 गुजारिश—निवेदन ।

गँठे—टेढे ।

गैल—मार्ग, रास्ता, गली,
कूचा ।

गोत—कुल, वंश, खौदान ।

गोलक—मछली पकडने वाले
जाल के मोटे छल्ले ।

गोहन—पीछा ।

घने—बहुत ।

घात—प्रहार, चोट, मार ।

घालें—देवें, एक प्रान्तिक
बोली ।

घुरी—गली, द्रवित ।

घुमरें—घुमडें ।

घूँघट टाटी—घूँघट की टट्टी,
आड ओट ।

चचरीक—भ्रमर, भौरा ।

चसकौंहे—चसकदार ।

चपल—तेज, फुर्तीला, चुल-
बुला, कुछ फाल तक
एक जगह स्थित (ठहरने)
न रहने वाला ।

चख—आँस,

चटकारे—चटपनेवाले, शोर,
भडकीले ।

चश्मे में फरीश—आँस हपी
मदिरा बेचने वाला ।

चकत्ता—नादसाह, दाग,
धव्वा ।

चपल-दराज—बडा चुलबुला ।

चपरि—फुरती से, चपलता से
तेजी से, सहसा, लगाना ।

चवाव—फैली हुई बदनामी,
बुराई करना, निंदा की
चरचा करना ।

चश्मे-तर—गिलीं, भीगी आँख ।

चश्मे शाकी—शराब पिलाने
वाले की आँस ।

चभोरी—डुवोई, चभोई ।

चक्री—चक्र धारण करने वाला,
चक्रवाक, कुलाल, सर्प,
कुम्हार, सूचक, जासूस,
मुखविर, दूत, काक आदि ।

चाइल—प्रसन्न ।

चायन—लालसा, उत्कठा, प्रेम,
दुलार, चाह ।

चाड—प्रबल-इच्छा, अभि
लापा, लालसा, अरमान ।

चाय—सुन्दर, मनोहर ।

विंशामनि—चिन्तित (इच्छित)
फल देनेवाली मनि, मणि ।

विबुक—ठोड़ी, गाल ।

वित्त वित—वित्तरूपी वित्त
धन ।

विकुर—वाल, केश ।

विलगन—ठहर-ठहर कर उठने
वाली पीडा ।

विगुला—रक्षा, छोटा सा
वक्त्र ।

वोखे—अच्छे, सुन्दर ।

वोंप—ईर्ष्या, होड़ ।

वृत्तना—शहद की मक्खियों का
वा वृत्ता ।

वृषि-वृकै—वृषि (सौंदर्य) की
मदिरा, शराव ।

वृषाकर—चन्द्रमा ।

वृषा—वृषा का अपभ्रंश ।

वृषान—आच्छादन, वस्त्र,
पपडा ।

वृषे वृषाम—वृषा, वृषे, कुशल ।

वृषीना—यक्षा ।

वृषी—भौचक्षा होना, चक्रप-
क्षाना ।

जलज—कमल ।

जलजात—कमल । -

जरथ—आघत, चोट ।

जरूम—जखम, घाव ।

जग-जैन—जगत को जीतने
वाले ।

जकरे—कसकर धँधे ।

जन्हुजा—गगा ।

जकन्दन—उड़लते हुए, कूदते,
टूट पड़ते ।

जपा—जवा, अडहुल ।

जगो-जदल—लडाई-मगडा ।

जाम—शराव पीने का प्याला ।

जाचक—माँगने वाला, भिरसारी,
भिक्षुक ।

जायक—पैर में लगाने का लाल
रंग, महावर ।

जिहि—रोदा, चिहा, ज्या,
धनुष में लगने वाली
डोरी ।

जुग—दो ।

जुरे—मिले, भिड़े ।

जुल्फ—देखो काबुल ।

जूदी—जूड़ी ।

जूवौ—देखो, निरखो ।
 जोखति—तोलति ।
 झूख—मछली ।
 झरझीसो—अग्नि की लौसी ।
 डाँकी—पत्थर गढनेका औजार,
 कील ।
 डाटी--टट्टी, आड ।
 डुक--थोड़ा, जरा, तनक ।
 टोली--महल्ला, बस्ती का छोटा
 भाग ।
 टौना--जादू ।
 ठान--कार्य का आयोजन,
 अनुष्ठान, समारम्भ ।
 ठेलगी ही ए में पीर--धक्का
 देकर हृदय में दर्द बढ़ा
 गयी ।
 डह डहे--हरे-भरे, ताजे ।
 डट गए ह--ठहर गये हैं, अड़
 गये हैं ।
 डगरी--चलदी ।
 डरन--पतन, दलन,
 ढहे--गिरे ।
 ढिंग--पास, समीप, निकट,
 नजदीक ।

ढोट--अनुचित कार्य करने
 वाला, निसकोची, धृष्ट,
 बेअदब, शोख ।
 दुरी--गिरी, पतित हुई ।
 ढोट--पुत्र, प्यारा बेटा ।
 तरौगा--कान में पहरेने का
 एक आभूषण, कर्णफूल ।
 तकसीरनि--कसूरवार ।
 तडाग--तालाब, सरोवर,
 ताल, पुष्कर, पोखरा,
 सर ।
 तरनि-सुता--जमुना जी ।
 तलय--इच्छा, अभिलाषा,
 आवश्यकता, तलारी,
 रोज ।
 तरकस--तीर रखने का चोगा,
 भाथा, तूणीर ।
 तम से--अन्धकार से ।
 तसधी--माला, सुमरनी ।
 तले--नीचे ।
 ता-तर--उस के नीचे, तरे ।
 तायरे दिल--आत्मारूपी-पत्नी ।
 ताजी--घोड़ की जाति विशेष ।
 ताटंक--कर्णफूल, तरकी ।

गखन ते--उसी क्षण से ।
 ताकें--देखें ।
 तापरे रूह--आत्मारूपी पत्नी ।
 ताप--गर्मी, उष्णता, तेजी ।
 तुरग--घोडा ।
 तुरी--घोडा ।
 तूनोर--बाण रखने का घर,
 स्थान, तरकश ।
 तोते चश्म--वेवफाई भरी
 आँसों वाला ।
 थिरे--शान्ति हुए, स्थिर हुए ।
 थली--स्थान, जगह ।
 दह-नीरन--गहरे पानी ।
 दहति--जलाते ।
 दर्ई--ईश्वर, विधाता ।
 दहें--जलाये ।
 दरके--फटे, चिरे, विदीर्ण ए ।
 दरोचन--नीचे पटक के
 ढावना ।
 दाडिम--अनार ।
 दिवाँणे--पागल, सिड़ी, विचित्र ।
 दिपाजान--प्रकाशित ।
 दिनारु--सूर्य, भास्कर, रवि ।
 विरेफ--भौरा, भ्रमर ।

दीवे--आर्ये ।
 दुरि देखति--छिप के देखती ।
 दुरे--छिपे ।
 दुहुंघाँकी--दौनों ओर को ।
 दुख चाइन साँ--दुख की
 पीड़ा से ।
 दुखमौंट--दुख की गठरी ।
 दुआरा--जहाँ दो नदी मिलती
 हो वह स्थान ।
 धवल--उजाला, सफेद, श्वेत,
 निर्मल, मकराकर, सुन्दर,
 मनोहर ।
 धाम--घर, मकान ।
 धीरन--स्थिर ।
 नय--नीति ।
 नखरैना--उलाँघने वाले, पार
 करने वाले ।
 नट जाँइन--मना न कर दें ।
 नए तँ--देने से, घालने से,
 दिए से मुकने से ।
 नट गप है--इन्कार कर गए हैं ।
 नगराज--पहाड़ों का राजा,
 भगवान का नाम
 विशेष ।

नग—पहाड, स्थिर, अचल । विशेष ।	निकार्ई—सुन्दरता, मनोहरता, कोमलता ।
नवारे—निगाड़े एक वाद्य, नाव, डोगी ।	नियरानि—समीप, निकट ।
नाशाद—रजीदा ।	नीमजाँ—अधमरा, शिसकता
नाज—ठसक, नखरा, चांचला, हाव-भाव ।	नींके—अच्छे, सुन्दर ।
नाँधे—बाँधे ।	नीरज-नेंनी—कमल समान न वाली ।
नाल—साध, सग ।	नीम विशिमल—अधमरा, सि कता ।
नाजुक—कोमल, सुकुमार ।	नेरे—समीप, निकट, पास ।
नाजनी—स्त्री, चटक-मटक वाली स्त्री, ठसक वाली स्त्री ।	नेह—स्नेह, प्रेम, प्रीति, प्यार, मुहन्त्रत ।
नाधनि—नाधना, बाँधना, जोडना ।	नीरग—एक प्रकार की चिडिया ।
नाजिर—प्रबन्ध कर्ता ।	नांखे—अनोखे, अद्भुत, विचित्र, विलक्षण, अनूठे, अपूर्वा ।
निमिप—पल, क्षण से भी छोटा हिस्सा ।	पकज—कीच से उत्पन्न होत वाला कमल ।
निपट गसीले—निरेगहनेवाले, खाली पकडने वाले ।	पक—कीचड, कीच ।
निगुरे—मिला गुरु के, अदी- क्षित ।	पगी—अनुरक्त, मग्न ।
निजगाँफी—अपने मतलब की ।	पराग—वह धूलि जो फूलों के बीच लगे केसर पर जमी रहती है ।
निगोप—छिपाये, गोपन किए ।	पट्टी—भूले पर बैठने की एक लकड़ी, पट्टा ।

पलक-कपाट—पलक रूपी,
कपाट, किवाड़ ।

पग पाँवड़ी—रड़ाऊँ ।

परवल हरौल—प्रवल हरौल,
सेना का अगला भाग
ठगों व डाकूओं का
सरदार ।

पन्नगी—सर्पिणी, स्यापिन ।

परानी—भागी, चलदी, पि-
छाडी लोट चली ।

परजन्य—यादल, मेघ ।

परेखौ—पश्चात्ताप, पछतावा,
अफसोस, खेद, विपाद ।

पल-पाघडे—पलक रूप पाँवडे ।

पल-तूनि—पलक रूपी तूणीर,
वाण रखने का म्यान,
तरकश ।

परलै—प्रलय ।

पलक-जयन्ती—पलक रूपी
पताना ।

पलक-निखग—पलक रूप
तूणीर, तरकश ।

पशोली—रेशम की साडी,
घोती ।

पतयार—नाव की वह लकड़ी
जिससे नाव घुमाई जाती
है ।

पचिहारे—प्रयत्न करके भी
हारे ।

प्रवीन—कुशल, दक्ष, चतुर,
होशियार ।

प्रभाकर—सूर्य्य ।

प्रभजन—तोड़, फोड़, हवा,
प्रसूति विथा—प्रसव की पीडा,
जनन की विथा, दुःख ।

पचवान—कामदेवका एक नाम
विशेष ।

पानिप—ओप, द्युति, कान्ति,
चमक, आन ।

पाटल नयन—कुछ ललोंही
लिये हुए बड़े नयन,
आँस ।

पातुर—वेश्या, रडी ।

पाक दिल—साफ दिल, 'निर्मल-
मन ।

पारी—ओसरा, बारी ।

पारथ—अर्जुन का नाम
विशेष ।

पाहन—पत्थर, पापाण ।
 पिय-मुददाके—प्रिय को आनन्द
 देनेवाले ।
 पिनहाँ—धिपा हुआ ।
 पिंगलोचन—भूरी या तामे के
 रंगकी आँख वाले वा
 कुछ पिलाई लिये हुए ।
 पींजरी—लोहे वा बाँस से बना
 हुआ पक्षीओं के पालने
 की चीज, घर ।
 पीर—पीड़ा, दुःख, दर्द,
 तकलीफ ।
 पीन—स्थूल, मोटी, पुष्ट,
 सम्पन्न, भरीपूरी ।
 पुज—समूह, ढेर, ।
 पुजन—विशेष समूह ।
 पुण्डरीक—स्वत-कमल ।
 पुनीत—पवित्र, शुद्ध ।
 पेल—दवाकर भीतर घुसना,
 जोर से ठेलना, या
 धँसना ।
 पैमाना—जिससे कोई वस्तु ना
 पी जाय ।
 पैज—प्रतिज्ञा, प्रण, टेक, हठ ।

पोट—गठरी, पोटली, बुकचा ।
 पोखे—पाले, पोसे, ।
 फरियाद—विनती, प्रार्थना,
 शिकायत, दुःखित मनुष्य
 का घ्राण के लिये चिहाना ।
 फटके—अलग, प्रथक ।
 फुरकत—जुदाई, विरह ।
 फाँकें—तीर, बाण का वह
 पिछला हिस्सा, जिस में
 पर (पख) लगे होते हैं ।
 धलित—जले हुए ।
 वकैत—तलवार आदि चलाने
 वाला ।
 बटपारे—राह में डाकेजनी
 करने वाले, डाकू, लुटेरा,
 ठग ।
 बहशत—पागलपन ।
 बजम—महफिल ।
 बयावॉ—जगल, उजाड़ ।
 बदि—होड, बाजी लगाना ।
 बदर—समुद्र का वह स्थान
 जहाँ जहाज ठहरे ।
 बफ—टेढा, तिरछा ।
 बारिचर—मछली, सख ।

वारिज—कमल, मछली ।
 वाडव—अग्नि ।
 वानि—आदत, स्वभाव ।
 वारिद—मेघ, बादल ।
 वार-वगारि—बाल विरहरा कर ।
 वारुनी—शरान, मदिरा ।
 वाम—टेढ़ा, कुटिल ।
 वातिल—खारिज ।
 विम्ब—छाया, अकस, प्रति-
 मूर्ति, कूदरू नाम का
 लाल फल ।
 विसेख—विशेष, भेद, अंतर,
 फरक, तरह ढग, विचि-
 त्रता सार, निचोड,
 मुसकिल आदि ।
 विसिख—वाण ।
 विस्मिल—घाइल, विह्वल ।
 विवि—दो ।
 विजया—भग, भाँग ।
 विकसति—फूले, रिले,
 प्रस्फुटित ।
 विलुधा—छोटी-छुरी, टेढ़ी-छुरी ।
 विमल—निकार रहित, निर्मल,
 स्वच्छ, दूष रहित ।

वीर—स्त्रीयो का परस्पर प्यार-
 युक्त संबोधन ।
 वीजी—दूसरी ।
 वेधति—वेधना, छेदना, धावा
 करना ।
 वैस—उम्र, आयु ।
 वैणों में—शब्दों मे ।
 घोभे—वेवकूफ, कम अक्ल ।
 व्याम—आकाश ।
 भमैया—प्रससा करने वाले,
 भाट करथक ।
 भट्ट—परस्पर स्त्रीयों मे धोलने
 का आदर सूचक संबो-
 धन, प्रियव्यक्ति, सखी ।
 भजन—तोडना, भग करना ।
 भारती—सरस्वती ।
 भाँवते—मन के माफिक, जो
 भला लगे, प्रियतम ।
 भीनि—गीले, भीजे, आले ।
 भूप—राजा ।
 भींडी—भदी, वेहूदगी ।
 मन-भौ—कामदेव ।
 मद मोकल—मद से छूटा हुआ,
 आजाद ।

महबूबी—प्रेमिका, माशूक ।
 मनचचुक—मन-रूपी भौरा,
 भ्रमर ।
 मदन-सदन—मदन (काम)
 का घर मकान ।
 महा-अरवीली—बड़ी अरीली,
 विशेष अड़ने वाली ।
 मधुकर—भौरा, भ्रमर ।
 मलय—पवन, समीर, वायु ।
 मयक-मुख—चद के समान मुख ।
 महबूब—प्रेम-पात्र, माशूक ।
 मजेज—दर्प, अहकार, अभि-
 मान ।
 मधुषी—मधु को उत्पन्न करने
 वाली मधुमक्खी ।
 मनोज—कामदेव ।
 मदन-जुडी—मदन से जुडी
 अर्थात् मिली, वा मदन-
 देव की जड़ी, बूटी ।
 मतग—हाथी ।
 मधुघत—भौरा ।
 मखतूल—काला-रेशम ।
 ममोले—एकदम छोटे घबे ।
 मन-मेचक—

मजह का खान्दाँ—मजह का
 खानदान, कुल ।
 मनकरे—वे वहे, अमाना,
 ढीठ ।
 मनसा—कामना, इच्छा ।
 मरीची—फिरणें ।
 मराल—हस, इक प्रकार की
 बतक ।
 मडरानि—चारों तरफ घूमना ।
 मयाभरे—प्रेम से भरे, ममत्व
 से भरे, मोह भरे ।
 मघवा—इन्द्र, देवताओं का
 राजा ।
 मलिन्द—भौरा ।
 मजु—सुन्दर, मनोहर ।
 मार—कामदेव का नाम ।
 माहुर—विप, जहर ।
 मिहीचं—मीचे, धन्द करे ।
 मिलहरद—मिलाने की क्रिया ।
 मिजगाँ—भौंह ।
 मिसि—उठा ।
 मिस्ल—समान, तुल्य, बराबर ।
 मीनवेत—कामदेव ।
 मीन-मजीठ परी — मजीठ

अर्थात् लालरंग में पड़ी
मछली ।

मीनसपच्छ—पक्ष (पख) युक्त
मछली ।

मीढ—तुलना में ।

मुप—एक प्रकार की प्यार युक्त
गाली ।

मुँह-जोर—तेज, उद्दह, शीघ्र
बरा में न आनेवाले ।

मुरीद—अनुगामी, अनुयायी,
आशिक ।

मुदै-भरि—प्रसन्नतायुक्त ।

मुख्यत—शील, लिहाज ।

मुद्दर्द—वह मनुष्य जो किसी
पर दावा दायर करे ।

मुद्दालेह—वह मनुष्य जिसके
ऊपर दावा किया दया
जाय ।

मुँसै—चुरायें ।

मु क—गू गा, चुप रहना ।

मैन—कामदेव ।

मैड—भरियाद ।

मैनधान—काम के बाण ।

मै—शराव ।

मैखाना—शरान खाना ।

मृनाल—कमल की डही ।

मृदुवान—मिठी बोली, प्यारी
बोली ।

मृग-द्यौना—मृग (हिरन) का
बच्चा ।

मृग-सावक—मृग का छोटा
बच्चा ।

मृगम्मद—कस्तूरी ।

घफूर—उमडना ।

घायज—उपदेशक ।

रतनार—सुर्य, लाली से ललित ।

रखैल—रखी हुई, डाली हुई
उप-पत्त्रि ।

रख—मिले ।

रखें—कहें, रटें ।

रसना—जिह्वा, जीभ, जवान ।

रतिनाथ—कामदेव ।

रदे—थाद करे ।

रली—निहरी, क्रिडित ।

रद-द्यद—ओठ पर दन्त छद,
काटने का निसान ।

रचन—थोड़ा, अल्प, तनिक ।

रच—थोड़ा, तनिक ।

रजन—प्रसन्न करना ।
 रफ—भिखारी, गरीब, कगाल ।
 राते—रग में रँगो, लाल, सुर्य ।
 राहत—आराम, चैन, सुख ।
 राजीब—नील पद्म, नील कमल ।
 रावरे—आपके, प्रिय सम्बोधन ।
 रिसि—गुस्ता, क्रोध ।
 रिन्देशरावी ने—शराब पीने-
 वाले मस्त फकीर ने ।
 रूख—कपोल, गाल, मुख,
 इच्छा ।
 रुसवा—जलील, वदनामी ।
 रूप तुरग—सौन्दर्य रूपी घोडा,
 अश्व ।
 रूप-जलनिधि—सौन्दर्य सागर ।
 रूप-कछार—सौन्दर्य की कछार
 (दे० कछार) ।
 रूढ़े—कुचलना, मर्दित करना
 पददलित करना ।
 ललाम—रमणीय, सुन्दर ।
 लसै—सोभित, सोभा युक्त ।
 ललौहे—सुर्यी मायल, बुद्ध
 लाली लिये ।

ललित—सुन्दर, मनोहर,
 मनचाहा, प्यारा ।
 लट गये हैं—थक गये हैं ।
 ललिके—चाँह करें, ललचाएँ ।
 लचकि—ललचाकर ।
 लफचारे—उल साये हुए ।
 लटपट—अस्त-व्यस्त ।
 लपट—कामी, विपयी ।
 लगर—ढीठ, शरारती ।
 लाज के आँदू—लाज रूपी बेड़ा
 से बधै ।
 लाल—प्रिय सम्बोधन, प्यारा,
 मनचाहा ।
 लुकि—छिप ।
 लुत्फ—मजा, खूनी ।
 लुनाई—लावण्य, सुन्दरता,
 सलोनापन, खूबसूरती ।
 लुधो—मोहित हुई, लुभाई ।
 लुकानी—छिपी ।
 लुरै—हिलती डोलती हुई लट
 कना ।
 लोचन—आँसु ।
 लोफ-लाज सीकर—लोक-लज्जा
 रूपी सीकर, जजीर ।

लोल—चचल ।
 लोचति रहति—छोडती-रहती,
 वर्षाती रहती ।
 लाने—लुनाई युक्त, सुन्दर ।
 सरस—रसयुक्त, मनोहर,
 सुन्दर ।
 मलिल—जल, पानी ।
 सफरु—लालिमा ।
 सत्रांडा—लज्जायुक्त, शर्मीली ।
 सफरी—मधुरी ।
 सजाति—अपनी जातिवाले,
 अपने कुलके ।
 सरसी—छोटा ताल, सरोवर,
 तलैया, पुष्करणी, घावली ।
 सरोज—कमल ।
 सरशार—मग्न, डूबा हुआ ।
 चूर, मदस्त ।
 सपुट—डिब्बीया, डिब्बा ।
 स्रगन—कान, कर्णेन्द्रिय ।
 सक्ती—शराव पिलानेवाला,
 माशूक ।
 सागर—शराव ।
 साहक—माण, तीर, सर, सड्ग
 सायक—बधा, धौना, ।

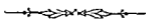
सारद—सरस्वती, शारदा ।
 साँन—शान, तडक भडक,
 ठाट बाट, सजावट ।
 सिसुता—लडकपन ।
 सितम—गजब, अनर्थ, आफत,
 अनीति, जुल्म, आत्याचार
 सिताव—जल्दी, शाघ्र ।
 सितासिति—सकैद काला ।
 सिलीमुख—भ्रमर, भौरा ।
 सिन्धुजा—लक्ष्मी ।
 सिकरा—पत्नी विशेष ।
 सुभाड—स्वभाव ।
 सुधा—अमृत ।
 सुभाइन—स्वभाव युक्त, अन्धे
 स्वभाव से मयुक्त ।
 सुधाकर—चन्द्रमा ।
 सुरनाइक—सुरों (देवताओं)
 का नायक, राजा-इन्द्र ।
 सुखमो—शोभा, छत्रि ।
 सुचिता—स्वच्छता, धवलता,
 सफाई ।
 सुठि—सुन्दर, नडिया, अन्धा ।
 सेह—जादू ।
 स्वेद—पसीना ।

सैफन—तलवार ।
 सोडसी—सोलह वरस की ।
 खान—कान ।
 शर्मआलद्दह—शर्मसे भींगी,
 गीली ।
 शरर—चिनगारी ।
 शवनम—ओस ।
 शिक्वेच—सिकुडन, बल पडना ।
 शीशागर—काचकी चीजें व-
 नाने वाले ।
 शोख—ढीठ, धृष्ट, प्रगल्भ,
 शरीर, नटखट ।
 हस्ति—खासियत ।
 हलाहल—जहर, विष ।
 हनत—मारत ।
 हनि फोरे—पटक कर फोडे ।
 हल्कारे—चिट्ठी पत्री ले जाने
 वाला मनुष्य, चिट्ठीरसा,
 डाकिया ।
 हरीना—हरने वाले ।
 हरीफ—दुस्मन, शत्रु, प्रतिद्वन्दी ।
 हम्दिगर—साथी, प्यारा ।

हथ्र—प्रलय ।
 हरगोशेमै—जगह व जगह ।
 हटि—अडना, हठीला ।
 हयामरे—लज्जायुक्त, शर्मसे भरे
 लाज से भरे ।
 हर—महादेव ।
 हाती—आतङ्कित करना ।
 हिलग—लगाव, सबन्ध, लगन
 प्रेम ।
 हिजाघ—पदाँ, शर्म, हया, लज्ज
 हिज्र—जुदाई, वियोग ।
 हुद्दार—ओहदेदार, विशेषपुर
 हेम—सोना, स्वर्ण, कचन ।
 हैफ—खेद, अफसोस ।
 होशेरुजाशाकी—मदमस्त शराव
 शराव पिलाने वाला
 प्रासै—डरायें, भयभात करे
 कष्ट दें ।
 त्रिभुवन—तीन-भुवन, तीनलोक
 त्रिविधि—तीन प्रकार, ती
 त्रिवेद—ऋग्वेद, यजुर्वेद, संहिता, विष्णु, महेश

साहित्य-सेवा-सदन, काशी

स्थायी ग्राहकों के लिये नियम—



(१) प्रवेश-शुल्क बारह आना मात्र देना पडता है।

(२) स्थायी ग्राहकों को इस कार्यालय के समस्त पूर्ण प्रकाशित तथा आगे प्रकाशित होने वाले ग्रन्थों की एक एक प्रति पौने मूल्या में दी जायगी।

(३) किसी भी पुस्तक का लेना अथवा न लेना ग्राहकों की इच्छा पर निर्भर है। इसके लिये कोई ग्रन्थन नहीं है। किन्तु वर्ष भर में कम से कम ५) पांच रुपये (पूरे मूल्य) की पुस्तकें लेनी पडती हैं।

(४) पुस्तक प्रकाशित होते ही उसके मूल्यादिकी सूचना भेजी जाती है। ग्राहको को उचित है कि सूचना पाने के एक सप्ताह के भीतर अपनी स्वीकृति या अस्वीकृति की सूचना देने की कृपा अवश्य करें। यदि पी लोटाने से डाक-व्यय उन्हीं को देना पडेगा अन्यथा उनका नाम स्थायी ग्राहकों की श्रेणी से वृत्त कर दिया जायगा।

(५) ग्राहको के इच्छानुसार डाक-व्यय के वचाव के लिए ३४ पुस्तकें एक साथ भी भेजी जा सकती हैं।

(६) स्थायी ग्राहकों को अन्य पुस्तको पर भी पर्याप्त कमीशन दिया जाता है और साहित्य-संसार में नवीन प्रकाशित पुस्तकों की सूचना भी समय समय पर दी जाती है।

(७) ग्राहकों को प्रत्येक पत्र में अपना ग्राहक नम्बर, पता इत्यादि स्पष्ट लिखना चाहिये।

२ पुस्तकें मिलनेका पता—साहित्य-सेवा-सदन, बनारस सिटी।

‘साहित्य-सेवा-सदन’ द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

(पत्रिका, १९३२ तक)

विहारी-सतसई सटीक

(७०० सातो सौ दोहोकी पूरी टीका)

(टीका—लाला भगवानदीन)

हिन्दी-संसारमें शृङ्गाररसकी इन्के जोड़की कोई भी दूसरी पुस्तक नहीं है। यह अनुपम और अद्वितीय ग्रंथ है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है, कि आज २५० वर्षोंमें ही इस ग्रन्थपर ४०५० टीकाएँ बन चुकी हैं। किन्तु उनमें प्रायः सभी प्राचीन ढंगकी हैं जो समझमें जरा कम आती हैं। इसी कठिनाईको दूर करनेके लिए कविपर लाला भगवानदीनजी, प्रो० हिन्दू विश्व विद्यालय, काशी ने अर्वाचीन ढंगकी नयीन टीका तैयार की है। टीका कैसी होगी, इसका अनुमान पाठक टीकाकारके नामसे ही करलें। इसमें विहारीके प्रत्येक दोहेके नीचे उसके शब्दार्थ, भाग्य, विशेषार्थ, वचननिरूपण, अलंकार आदि सभी ज्ञातव्य बातोंका समावेश किया गया है। जगह-जगहपर सूचनाएँ दी गयी हैं। मतलब यह है कि सभी जरूरी बातें इस टीकामें आ गयी हैं। तीसरा परिशिष्टित तथा सशोधित सचित्र संस्करणका मूल्य १।।।।)

‘सरस्वती’, ‘सौरभ’, ‘शारदा’, ‘विद्यार्थी’ आदि पत्रिकामें तथा बड़े बड़े विद्वानोंने इस पुस्तककी मुक्तकडसे प्रशंसा की है।

This book is sanctioned as a reference book for Hindi Teachers in High Schools of Central Provinces and Berar

—Vide Order No 6801, Dated 28-9-26

श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव

(लेखक—श्रीयुत देवीप्रसाद 'प्रीतम')

इस पुस्तकके परिचयमें हम केवल इतना ही कह देना चाहते हैं कि यह ग्रंथ भगवान् श्रीकृष्णकी जन्म सम्बन्धिनी पौराणिक कथाओं का एक खासा दर्पण है। घटनाक्रम, घर्णन शैली तथा विषय प्रतिपादनमें लेखकने कमाल किया है। तिसपर भी विशेष पता यह है कि कविताकी भाषा इतनी सरल है कि एकबार आद्योपान्त पढ़नेसे सभी घटनाएँ हृदय पटलपर अङ्कित हो जाती हैं। साहित्य मर्मज्ञोंके लिये स्थान स्थान पर अलङ्कारोंकी छुटाकी भी कमी नहीं है। मूल्य षडल।—) ऐरिटिक कागजके सचित्र सस्करण का ॥३॥

महात्मा नन्ददासजी कृत

भ्रमर-गीत

(स०—श्रीबू. मजरबदास)

अष्टछापके कवियोंमें महात्मा सुरदास तथा नन्ददासजीका बड़ा नाम है। इन दोनोंकी ही कविताएँ भक्ति ज्ञानकी भण्डार हैं, प्रेम रसकी सजीव प्रतिमा हैं। इस पुस्तिकामें कृष्णके अपने सखा उद्धव द्वारा गोपियोंके पास भेजे हुए सदेशका तथा गोपियों द्वारा उद्धवसे कहे गये कृष्ण-प्रति उपासनाका सजीव घर्णन है। निर्गुण श्रीर सगुण ब्रह्मकी उपासनामें भेद, विशिष्टाद्वैतकी पुष्टि आदि वेदान्तिक बातोंका निरूपण है, गोपियोंकी प्रेम पराकाष्ठाका दिग्दर्शन है। इसका पाठ कितनी ही हस्तलिखित प्रतियोंसे मिलाकर सशोधित किया गया है। फुटनोटमें कठिन शब्दोंके सरलार्थ दिये गये हैं। हिन्दू विश्वविद्यालयकी 'इन्टरमीडिएट' परीक्षामें पाठ्य-ग्रन्थ भी था। द्वितीयावृत्ति। मूल्य ३।

४ पुस्तकें मिलनेका पता—साहित्य-सेवा-सदन, बनारस सिटी ।

केशव-कौमुदी

(रामचन्द्रिका सटीक)

हिंदीके महाकवि आचार्य केशवकी सर्वश्रेष्ठ पुस्तक रामचन्द्रिकाके नामसे शायद ही कोई हिन्दी प्रेमी अपरिचित हो। केशवकी यह पुस्तक जितनी ही उत्तम तथा उपयोगी है, उतनी ही कठिन भी है। अर्थ कठिनतामें केशवकी काव्य प्रतिभा उसी प्रकार छिपी पड़ी हुई है, जिस प्रकार खड़ेके ढेरमें हीरेकी नाति। केशवकी इसी काव्य प्रतिभाको प्रकाशमें लानेके लिए यह सम्मेलनादिमें पाठ्य पुस्तक नियत की गयी है। पर पुस्तककी कठिनताके आगे परीक्षार्थियोंका कोई यश नहीं चलता। उन्हें लज्जा होकर हिन्दीके धुरधरोंके पास दौटना पड़ता है। किन्तु वहाँसे भी 'भाई हम इसका अर्थ पतानेमें असमर्थ हैं' का उत्तर पाकर बैरग लौटना पड़ता है। इसी कठिनाईको दूर करनेके लिए यह पुस्तक प्रकाशित की गयी है। इस पुस्तकमें रामचन्द्रिकाके मूल छन्दोंके नीचे उनके शब्दार्थ, भावार्थ, विशेषार्थ, नोट, अलंकारादि दिये गये हैं। यथास्थान कविने चमत्कार निदर्शनके साथ ही साथ काव्य गुण-दोषोंकी पूर्ण रूपसे विवेचना भी की गयी है। छन्दोंके नाम तथा अप्रचलित छन्दोंके लक्षण भी दिये गये हैं। पाठ भी कई हस्तलिखित प्रतियोंसे मिलाकर सशोधित किया गया है। इसके टीकाकार हिन्दीके सुप्रसिद्ध विद्वान् तथा हिंदू विश्व विद्यालयके प्रोफेसर लाला भगवानदीनजी हैं। यह पुस्तक दो भागोंमें समाप्त हुई है। सशोधित नया संस्करण छप रहा है। मूल्य २)।

This book is sanctioned as a reference book for Hindi Teachers in High Schools of Central Provinces and Berar *Vide Order No 6801, Dated 28-9-26*

रहीम-रत्नावली

यों तो रहीमकी कविताओंके संग्रह कई स्थानोंसे प्रकाशित हो चुके हैं, किन्तु इतना बड़ा और इतना अच्छा संस्करण कहींसे भी प्रकाशित नहीं हुआ है। इस संस्करणमें कई विशेषताएँ हैं, इन विशेषताओंके कारण इसका महत्त्व अत्यधिक बढ़ गया है। मेरा अनुरोध है कि एक बार इसे आप अवश्य देखें। इस संस्करणकी विशेषताएँ —

- (१) इसमें संग्रहित दोहोंकी संख्या लगभग ३०० के है।
- (२) नगर-शोभा नामक १४४ दोहोंका नया ग्रन्थ खोजमें मिला।
- (३) नायिकाभेदके ढरचे तथा नये मिले हुए सजा सौ ढरचे दोनों ही इसमें हैं।
- (४) मदनाटकके सम्बन्धमें भी बड़ी छान-बीन की गयी है।
- (५) शृंगार मोरठ, रहीम-काव्यके श्लोक तथा अन्य फुटकर प्राप्तपदोंका भी संग्रह इसमें है।
- (६) अनेक हस्तलिखित प्रतियोंसे मिलाकर इसका पाठ शुद्ध किया गया है। पाठान्तर भी दिये गये हैं।
- (७) समान आशुबगाले (Parallel Quotations) अन्य कवियोंके छन्द भी टिप्पणियोंके साथ दिये गये हैं।
- (८) एक रहीमका तथा एक और—दो चित्र भी दिये गये हैं।
- (९) इन सबके अतिरिक्त प्रारम्भमें गवेपणापूर्ण बृहद्काय भूमिका भी इसमें जोड़ दी गयी है, जिसमें रहीमके काव्यकी आलोचनाके साथ ही साथ उनके सम्बन्धकी किंवदंतियाँ, जीवनी आदि दी गयी हैं। इसके कारण पुस्तकका महत्त्व अत्यधिक बढ़ गया है।
- (१०) पुस्तकान्तमें टिप्पणियाँ भी भरपूर दे दी गयी हैं। सुपरिचित साहित्य-सेवी प० मयाशंकरजी याज्ञिकने इस संस्करण का सम्पादन किया है। पृष्ठ-संख्या २५० के ऊपर, मूल्य १)।

६ पुस्तकें मिलनेका पता—साहित्य सेवा-सदन, धनारस सिटी।

गो० तुलसीदासजी कृत विनय-पत्रिका

टीकाकार—श्रीविद्योगीहरि)

सर्वमान्य 'रामायण' के प्रणेता महात्मा तुलसीदासजीका नाम भला कौन नहीं जानता ? गोस्वामीजीकी सर्वश्रेष्ठ रचना यही विनय पत्रिका है। इसमें शिव, हनुमान, भरत लक्ष्मण आदि पार्षदों-सहित जगदीश श्रीरामचन्द्रकी स्तुतिके घहाने वेदान्तक गूढ तरजोका समावेश किया गया है। घेद, पुराण, उपनिषद, गीतादिमें वर्णित ज्ञानकी सभी घातें इसमें गागरमें सागरका भाँति भर दी गयी हैं। इसकी टीका सम्मेलन पत्रिकाके सम्पादक तथा साहित्य विहार, भावना अन्तर्नाद, ब्रजमाधुरीसार, सक्षित सू-सागर आदि ग्रन्थोंके लेखक तथा सःकलनकर्ता लब्ध प्रतिष्ठ विद्योगी हरिजीने की है। इस टीकामें शब्दार्थ, भावार्थ, विशेषार्थ, प्रसंग, पदच्छेद आदि सब नी कुड़ दिये गये हैं। भावार्थक नीचे टिप्पणीमें अन्तरक्यापँ, अलंकार शकासमाधान आदिके साथ ही-न्माथ समानार्थी हिन्दी तथा सस्कृत कवियोंके अवतरण भी दिये गये हैं। अर्थ तथा प्रसंगपुष्टिके लिए गीता, घाटमीकि रामायण तथा भागवत आदि पुराणोंने श्लोक भी उद्धृत किये गये हैं। दार्शनिक भाव तो खूर ही समझाये गये ह। इन सब घातोंके कारण टीका अद्वितीय हुई है। पृष्ठ सख्या लगभग ७००। मूल्य २।। सजिल्द २।।।), घढ़िया कपडेकी जिल्द ३।।

This book is sanctioned as a reference book for Hindi Teachers in High Schools of Central Provinces and Berar—*Vide Order No 6801 Dated 28 9 26*

‘विहारी-सतसई’ की उर्दू शेरोंमे टीका गुलदस्तए विहारी

(लेखक—देवीप्रसाद ‘प्रीतम’)

विहारी-सतसईका परिचय देनेकी कोई आवश्यकता नहीं, सभी साहित्य प्रेमी उसके नामसे परिचित हैं। यह ‘गुलदस्तए विहारी’ उसी विहारी सतसईके दोहोंपर रचे हुए उर्दू शेरों का संग्रह है, अथवा यों कहिए कि विहारी सतसईकी उर्दू पद्यमय टीका है। विहारी-सतसईकी उर्दू शेरोंमें यह पहिली ही टीका है। ये शेर सुननेमें बड़े ही मधुर और चित्ताकर्षक ह, इनमें, दोहोंके अनुवादमें, मूलके एकभी भाग छूटने नहीं पाये हैं, बल्कि कहीं-कहीं उनसे अधिक भाव इनमें आ गये हैं। इन शेरोंकी ५० महा धीरप्रसाद द्विवेदी, ५० पद्मसिंह शर्मा मिश्रयन्त्रु, लाला भगवान दीन, धियोगीहरि आदि उद्भट विद्वानोंने मुक्तकठसे प्रशंसा की है। दो तिरंगे भावपूर्ण चित्रों से युक्त पुस्तक का मूल्य १॥॥।

दो एक नमूना देखिए

जो न जुगति पिय मिलन की, धीर मुकुति मुख दीन ।
जो लहिये सँग सजन तौ, धरक मरक ह की न ॥
नहिं गर यार जिघत में तो घो नारे जहन्नुम है ।
अगर दोजख में है प्यारा तो घो जिघत से क्या कम है ॥

अपने तन के जानिके, जोधन-नृपति प्रथीन ।
स्तन मन नैन नितम्ब की, बहो इजाफा कीन ॥
तनी अपना समझ कर शाह जोधन ने अपनाया ।
इजाफा चक्ष्म पिस्तानों, सुरीनो दिल का फरमाया ॥

महात्मा सूरदासजी प्रणीत भ्रमरगीत-सार

(संपादक—प० रामचन्द्र शुक्ल)

सन्त शिरोमणि, साहित्याकाश प्रभाकर महात्मा सूरदासजी से बिरले ही हिन्दी प्रेमी अपरिचित होंगे। सूरदासजी हिन्दी साहित्यकी विभूति हैं, जीवन सर्वस्व हैं। कहा भी है 'सूर सूर तुलसी ससि, उडुगण केसवदास'। यथार्थमें हिन्दीमें इनका सर्वोच्च स्थान है। इन्हा महात्माके उत्कृष्ट पदोंका यह संग्रह है, सागरका सार अमृत है। सूरसागरका सर्वोत्कृष्ट अंश 'भ्रमर-गीत' माना जाता है। इसमें ब्रज-गोपियों कृष्णको उपासना देती हैं, भ्रमरको संबोधित करके व्यङ्ग्यके रूपमें। हिन्दी साहित्यमें व्यङ्ग्य काव्यरा इतना सुन्दर दूसरा गन्ध नहीं है। इसमें छैत-ग्रद्धेत, साकार निराकार आदिकी बहुत ही अन्धी विवेचना की गयी है। उसी भ्रमरगीतके चुने हुए पदोंका यह संग्रह है। इसमें चार सौसे भी ऊपर पद आ गये हैं। इसका संपादन हिन्दी-साहित्य समाजके विरपरिचित पत्र दिग्गज विद्वान् प० रामचन्द्र शुक्ल प्रो० हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी, ने किया है। एक तो सूरदासकी कविता, दूसरे हिन्दीके प्रशिः विद्वान् द्वारा उसका संपादन 'सोनेमें सुगन्ध' हो गया है। संपादकजीकी ८० अस्सी पृष्ठकी आलोचनात्मक दीर्घकाय भूमिका ही पुस्तककी महत्ताको दुगुनी कर रही है। पदोंमें आये हुए कठिन शब्दोंके सरलार्थ भी पादटिप्पणमें दिये गये हैं। यह पुस्तक बनारस इलाहाबाद, कलकत्ता, प्राण्य आदि यूनिवर्सिटियों, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन आदिकी उच्चतम यज्ञाओंमें पढ़ाई जाती है। द्वितीय संशोधित संस्करण। पृष्ठ संख्या लगभग २५०। मूल्य १)

गोस्वामी तुलसीदासजीके समस्त ग्रन्थोंका निचोड

तुलसी-सूक्ति-सुधा

(सपा०—श्रीवियोगीहरिजी)

गोस्वामी तुलसीदासजीने आजतक न जाने कितनोंको डूब-नेसे बचाया, कितनेही पापियोंको पुण्यकर्मा बनाया, कितनोंहीके निराशामय जीवनको आशामय बनाया। उनके ग्रन्थोंने वह काम किया जो ससारके अच्छे-सै-अच्छे उपदेशकसे न हो सकता था। आज भारतके अमीर-गरीब, छोटे बड़े सभीके घरोंमें घात-घातमें प्रमाणके लिए तुलसीदासजीकी उक्तियाँ कही जाती हैं और सुन-नेवालेके ऊपर उसका प्रभाव भी जादूका सा पडता है। महात्माओंको अपने उपदेशमें, सपादकोंको अपनी टिप्पणीमें, लेखकोंको अपने लेखमें, शिक्षकोंको पढ़ानेमें, कथा वाचकोंको कथा कहनेमें, जगह जगह तुलसीदासकी उक्तियोंकी प्रसंगपुष्टिके लिए जरूरत पड-ती है। इस पुस्तक में प्रत्येकप्रसंगकी उक्तियाँ इन ग्यारह अध्यायों में सकलित की गई हैं—१ चरित विन्दु, २ ध्यान विन्दु, ३ विनय-विन्दु, ४ तीर्थ विन्दु, ५ अध्यात्म विन्दु, ६ साधन विन्दु, ७ पुरुष परीक्षा विन्दु, ८ उद्बोध विन्दु, ९ व्यवहार विन्दु, १० निज-निवेदन विन्दु, ११ विविध-सूक्ति-विन्दु। इसमें आपको राजनीति, समाजनीति, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदि सभी विषयोंपर अच्छी से अच्छी उक्तियाँ बिना प्रयास एक ही जगह मिल जायेंगी। साहित्यके अध्येता तथा जनसाधारण दोनों ही इसके पाठसे लाभ उठा सकते हैं। इसमें प्रारम्भमें आलोचनात्मक विशद भूमिका भी सपादकजीने पाठकोंके सुभीतेके लिए जोड दी है। पाद टिप्पणीमें कठिन स्थलोंकी पूर्णरूपसे व्याख्या भी कर दी गयी है। पृष्ठ संख्या ५०० के ऊपर। मूल्य २)।

अनुराग-वाटिका

(प्रणेता—श्रीविद्योगीहरिजी)

वियोगीहरिजीसे हिन्दी साहित्य प्रेमोगण भलीभाँति परिवित हैं। प्रेमयोग, तुलसी सूक्ति-सुधा, साहित्य विहार, अन्तर्नाद, वज्रमाधुरीसार, कविकीर्तन, भावना आदि ग्रन्थोंके देखनेसे उनकी असाधारण प्रतिभाका परिचय मिल जाता है। इस पुस्तिकामें उन्होंने वियोगीहरिजी प्रणीत प्रजभाषाकी कविताओंका संग्रह है। कविताके पर-परु शब्द अमृत्य रत्न हैं, कवि प्रतिभाके द्योतक हैं। अनुरागवाटिकाका कुछ अग्र सम्मेलन सरस्वती आदि पत्रिकाओंमें निकल चुका है और साहित्य रसिकों द्वारा सम्मानित भी हो चुका है। छपाई सफाई सुंदर। मूल्य १-)

भरना

(प्रणेता जयशङ्करप्रसाद)

हिन्दीके कृतविद्य लेखकोंमें वानू 'जयशङ्करप्रसादजी' का आसन बहुत ऊँचा है। वर्तमान समयमें उच्चकोटि का साहित्यिक नाटक लिखनेमें पर नयीन शैलीकी चुहचुहाती भावपूर्ण कविताएँ करनेमें आप अपना सानो नहीं रखते। इन दोनों ही बातोंसे आप आश्रय माने जाते हैं। आपकी पुस्तकें आधुनिक समाजमें काफी रचाति प्राप्त कर चुकी हैं और विश्वविद्यालयोंमें पाठ्यग्रन्थोंमें स्वीकृत हो चुकी हैं। प्रस्तुत पुस्तक आपहीकी रचा हुई छायावादी कविताओंका संग्रह है। कविता बड़ी ही सरल और भावपूर्ण है। इसकी पर-परु लाइन हृदयग्राही है। जिन लोगोंका कहना है कि छायावादी कविताएँ बड़ी नीरस होती हैं, उनके सिर पैरका कहीं पता ही नहीं चलता, इसलिये वे त्याग्य हैं, उनसे मेरा अनुरोध है कि छु आने पैनेमें इस पुस्तकको खरीदकर अपना नम मिटाडालें। मूल्य १=)

भावना

(प्रणेता—त्रियोगीहरिजी)

यह एक आध्यात्मिक गद्य काव्य है। इसकी रचना साहित्य मर्मज्ञ काव्य-कला-कुशल एवं मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त त्रियोगीहरिजीने की है। इसमें मानव हृदयमें नित्य उठनेवाली नाना प्रकारकी भावनाओंका सर्वांग चित्रण है। विश्वप्रेमका विमल श्रोत है। जिस प्रकार कमीर और सूरने समस्त ससारको प्रेममय देखा, उन्हें उसीमें परमात्माकी झलक दिखाई दी उसीको उन्होंने मुक्तिका मार्ग समझा उसी प्रकार हरिजीने मनुष्यकी प्रत्येक दैनिक क्रियाको विश्वप्रेमका रूप दिया है। सबमुचमें यह काव्य बड़ा सुन्दर हुआ है। इसकी भाषा इतनी परिमार्जित ललित और भावपूर्ण है कि देखते ही बनता है। जिस समय सांसारिक झुझटोंसे आपका मन ऊर जाय, आपको सारा ससार नीरस दिखाई पड़े, आप इस पुस्तकको उठा लीजिए, फिर देखिए आपमें एक नई स्फूर्ति आजायगी, मुरझाया हुआ चेहरा खिल उठेगा। इसमें मंत्र मिलाकर ५० निगन्ध हैं। प्रत्येक निगन्ध में मुद्देको जिलाने के लिए अमृत है। भगवद्भक्तोंके लिए बहुत काफी मसाला है। छपाई, सफाई भी पुस्तककी दर्शनीय है। मूल्य ॥=)

आँख और कविगण

यह पुस्तक आपके हाथमें है।

दानलीला

(लेखक० हरिरायजी उपनाम रसिक जी)

सम्पादक—जवाहरलाल चतुर्वेदी । मूल्य ॥=)

कुसुम-संग्रह

सम्पादक प० रामचन्द्र शुक्ल, प्रो० हिन्दू विद्यापीठविद्यालय तथा लेखिका हिन्दी-संसारकी चिरपरिचित श्रीमती धम्ममहिला। सयुक्तप्रान्तकी तथा मध्यप्रदेशकी (Vide Order No 9704 dated 12 12 26) गवर्नमेंटने पुरस्कार पुस्तकों तथा पुस्तकालयों (Prize-Books and Libraries) के लिए स्वीकृत किया है। सातरग विरगे चित्रोंमें विभूषित पुस्तकका मूल्य १।।)

मुद्राराक्षस

(सम्पादक ब्रजरत्नदास धी० प० पल-पल० धी०)

भारत भूषण भारतेन्दु या० हरिश्चन्द्रजी वर्तमान हिन्दी साहित्यके जन्मदाता माने जाते हैं। आपने ही महाकावि विशाल दत्तने संस्कृत नाटक मुद्राराक्षसका अनुवाद गद्य पद्यमय हिन्दी भाषामें किया है। यह नाटक इतना लोकप्रिय हुआ है कि भारत की प्रायः सभी यूनिवर्सिटियों तथा साहित्य विद्यालयोंमें पाठ्य ग्रन्थ रखा गया है। हमने विद्यार्थियोंके लाभार्थ इस पुस्तकका शुद्ध तथा उपयोगी संस्करण निकाला है। इस संस्करणमें अध्येताओंके लिये २० पृष्ठकी आलोचनात्मक भूमिका भी प्रारम्भ में दे दी गयी है, जिसमें कवि प्रतिभा, नाट्यरुका इतिहास, लेखन शैली आदिपर गवेषणापूर्ण आलोचना की गयी है। अन्तमें करीब १५० डेढ़ सौ पृष्ठोंमें भरपूर टिप्पणी भी दी गयी है जिसमें नाटकमें आये हुए पद्यांशोंकी पूरी टीका तथा गद्यांशोंके कठिन शब्दोंके अर्थ दिये गये हैं। पृष्ठ-संख्या लगभग ३५० मूल्य १) मात्र।

This book is recommended for (1) Vernacular Middle School Libraries for boys and for (2) Libraries in Intermediate Colleges by the Director of Public Instructions United Provinces

Vide Order Dated the 25th April 1931

